# हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबंध

लेखक

डा० उदयभानुसिंह

अनुसंधान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, के निमित्त

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,

द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण
अक्तूबर · १९५९

मूल्य
१०·००

मुद्रक
बालकृष्ण, एम० ए०
युगान्तर प्रेस, डफरिन पुल, दिल्ली

# हमारी योजना

'हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबन्ध' हिन्दी अनुसन्धान परिषद् ग्रन्थमाला का अठारहवां ग्रन्थ है। हिन्दी अनुसन्धान परिषद्, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की संस्था है, जिसकी स्थापना अक्तूबर सन् १९५२ मे हुई थी। परिषद् के मुख्यत दो उद्देश्य हैं हिंदी-वाङ्मय-विषयक गवेषणात्मक अनुशीलन तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

अब तक परिषद् की ओर से अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं—एक तो वे जिनमे प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का हिन्दी-रूपातर विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओ के साथ प्रस्तुत किया गया है, दूसरे वे जिन पर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ हैं—(१) हिन्दी काव्यालकारसूत्र, (२) हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, (३) अरस्तू का काव्यशास्त्र, (४) हिन्दी काव्यादर्श, (५) अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग (हिन्दी अनुवाद), तथा (६) पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा। द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रथ हैं—(१) मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रिया, (२) हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, (३) सूफीमत और हिन्दी साहित्य, (४) अपभ्रंश साहित्य, (५) राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, (६) सूर की काव्यकला, (७) हिन्दी मे भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा, (८) मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता तथा (९) हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य। तीसरे वर्ग का अनुसन्धान के साथ—उसके सिद्धान्त और व्यवहार दोनो पक्षो के साथ प्रत्यक्ष-सम्बन्ध है। इस माला का पहला ग्रथ है 'अनुसन्धान का स्वरूप' जिसमे अनुसन्धान के स्वरूप और विषय-क्षेत्र आदि का अधिकारी विद्वानो द्वारा सैद्धातिक विवेचन किया गया है। तीसरा ग्रथ प्रकाशन के लिए तैयार है। इसके अन्तर्गत दिल्ली विश्वविद्यालय की हिन्दी-अनुसन्धान-गोष्ठी (मई, १९५९) के तत्वाधान मे आयोजित अभिभाषणो का सकलन है। इन अभिभाषणो मे भी सिद्धात-पक्ष अर्थात् अनुसधान के विविध प्रकार-

भेद, प्रविधि, प्रगति आदि का ही तात्त्विक विवेचन किया गया है। इसी वर्ग का यह दूसरा ग्रथ आपके सामने है—जो अनुसधान के व्यवहार-पक्ष को लेकर लिखा गया है। हिंदी के अद्यावधि स्वीकृत शोध-प्रबधो का काल-क्रमानुसार व्यवस्थित विवरण उपस्थित करना इसका मूल उद्देश्य है। आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व हिन्दी-विभाग की ओर से यह कार्य डा० उदयभानुसिंह को सौंपा गया था। हमे सन्तोष है कि उन्होने बडे मनोयोग और अध्यवसाय के साथ विभिन्न विश्व-विद्यालयो से प्रत्यक्ष एव परोक्ष सम्पर्क स्थापित कर इसे पूर्ण कर लिया है। इस प्रकार के आकलन मे अनेक प्रकार की बाधाए और कठिनाइया सामने आती हैं जिनमे दो अत्यन्त स्पष्ट हैं—एक, अमुद्रित शोध-प्रबन्धो की उपलब्धि और दूसरे, सर्वथा तटस्थ दृष्टिकोण का निर्वाह। प्रस्तुत ग्रथ मे लेखक ने उपर्युक्त दोनो कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का सफल प्रयत्न किया है। एक ओर जहा वे अधिकाश प्रबन्धो को प्राप्त कर उनके विषयो की स्वच्छ रूपरेखा प्रस्तुत करने मे कृतकार्य हुए हैं, वहा दूसरी ओर उनका दृष्टिकोण भी सर्वथा शुद्ध एव निस्सग रहा है। इस उपयोगी अनुष्ठान मे, हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर, विभिन्न विश्वविद्यालयो और शोध-सस्थानो के अधिकारियो, सहयोगी हिन्दी प्राध्यापको और अनुसन्धाताओ ने जिस तत्परता के साथ सहयोग प्रदान किया है उसके लिए अपने विभाग की ओर से हम हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। हमे विश्वास है कि हिन्दी के उदीयमान अनुसन्धाता परिषद् के इस नवीन प्रयास से उचित लाभ उठा सकेंगे।

परिषद् की प्रकाशन-योजना को कार्यान्वित करने मे हमे हिन्दी की अनेक प्रसिद्ध प्रकाशन-सस्थाओ का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। उन सभी के प्रति हम परिषद् की ओर से कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं।

हिन्दी विभाग,<br>
दिल्ली विश्वविद्यालय,<br>
दिल्ली।

—नगेन्द्र

# निवेदन

सन् १९१८ ई० मे आरोपित उपाधिपरक हिन्दी-अनुसन्धान के वट-बीज ने अब विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लिया है। सर्वप्रथम प्रबन्ध 'तुलसीदास का धर्मदर्शन' (थियॉलॉजी ऑफ तुलसीदास) सन् १९१८ ई० मे स्वीकृत हुआ था। इस पर श्री जे० एन० कारपेन्टर को लन्दन विश्वविद्यालय से डी० डी० (डॉक्टर ऑफ डिविनिटी) की उपाधि प्रदान की गयी थी। दूसरा प्रबन्ध 'हिन्दुस्तानी ध्वनि विज्ञान' (हिन्दुस्तानी फॉनेटिक्स) भी लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा ही सन् १९३० ई० मे स्वीकृत हुआ था। इस पर श्री मोहिउद्दीन कादरी को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। यह उपाधि उन्हें उर्दू मे मिली थी। तीसरा प्रबन्ध 'अवधी का विकास' (एव्होल्यूशन ऑफ अवधी) सन् १९३१ ई० मे स्वीकृत हुआ। इस पर श्री बाबूराम सक्सेना को प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० लिट० की उपाधि प्राप्त हुई थी। किसी भारतीय विश्वविद्यालय से हिन्दी-सम्बन्धी विषय पर प्रस्तुत किया गया यह पहला उपाधिपरक शोधप्रबन्ध था। यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त तीनो ही उपाधिया हिन्दी-साहित्य की नही हैं। परन्तु उनके विषय हिन्दी से सम्बद्ध हैं। अतएव सन् १९१८ से १९३१ ई० तक का समय उपाधिकारक हिन्दी-अनुसन्धान का प्रस्तावना-काल है।

हिन्दी-अनुसन्धान का वास्तविक आरम्भ सन् १९३४ ई० से मानना चाहिए। हिन्दी-साहित्य का पहला प्रबन्ध 'हिन्दी-काव्य मे निर्गुण-सम्प्रदाय' (दि निर्गुण स्कूल ऑफ़ हिन्दी पोइट्री) सन् १९३४ ई० मे स्वीकृत हुआ। हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, ने (स्व०) प० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल को इस प्रबन्ध पर डी० लिट० की उपाधि प्रदान की। प० रामशकर शुक्ल 'रसाल' का प्रबन्ध 'हिन्दी-काव्यशास्त्र का विकास' सन् १९३७ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा

डी० लिट० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। सन् १६३४ से १६३७ ई० तक का समय हिन्दी-अनुसधान का प्रारम्भ-काल है। इस काल मे हमारे यहा केवल काशी और प्रयाग विश्वविद्यालयो मे ही हिन्दी-सम्बन्धी विषयो पर शोध-कार्य हुआ। प्रबन्धों की सख्या भी कुल मिलाकर चार ही रही। उनमे भी दो प्रबन्ध विदेशी विश्वविद्यालयो द्वारा स्वीकृत हुए।

सन् १६३८ से १६५०ई० तक का समय हिन्दी-अनुसधान का विकास-काल है। १६३८ ई० मे नागपुर और पजाब ने, १६३६ ई० में आगरा ने, १६४३ ई० मे कलकत्ता ने, १६४४ ई० मे पटना ने, १६४६ ई० मे लखनऊ ने और १६४६ ई० मे राजस्थान विश्वविद्यालय ने भी हिन्दी-विषयक शोध-प्रबन्ध स्वीकृत किये। किन्तु शोध-प्रबन्धो की सख्या बहुत अधिक नही रही।

सन् १६५१ ई० से अब तक का समय हिन्दी-अनुसधान का विस्तार-काल है। इन दिनो बीस विश्व-विद्यालयो मे हिन्दी का शोध-कार्य हो रहा है। स्वीकृत शोध-प्रबन्धों की सख्या बडे वेग से बढ रही है। पौने तीन सौ से अधिक प्रबन्ध विभिन्न विश्वविद्यालयो द्वारा स्वीकृत हो चुके है और छ सौ से अधिक अनुसधाता विविध उपाधियो के लिए प्रयत्नशील है।

ऐसी दशा मे अनुसधित्सुओ, अनुसधाताओ तथा पर्यवेक्षको और परीक्षको की जानकारी के लिए हिन्दी-विषयक सम्पन्न एव सम्पद्यमान शोध-कार्य का लेखा समय-समय पर प्रकाशित करते रहना हिन्दी-अनुसन्धान की बहुत बडी आवश्यकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी आवश्यकता की पूर्ति का लघुप्रयास है। इस बात की भी आवश्यकता है कि इन प्रबन्धो की नीर-क्षीर-विवेकी समीक्षा की जाए। लेकिन इस पुस्तक का उद्देश्य आलोचना करना नही है। इसका लक्ष्य केवल सूचना और परिचय की दृष्टि से ही प्रबन्धो के विवरणमात्र प्रस्तुत करना है। अनुसन्धान का शास्त्रीय विवेचन हम अपनी आगामी कृति 'अनुसन्धान का व्याकरण' में करेंगे।

प्रबन्धो के विवरण मे प्रामाणिकता की रक्षा का यथासम्भव प्रयास किया गया है। अनेक स्थलो पर विभिन्न सूत्रों से परस्परविरोधी सूचना उपलब्ध होने पर अपेक्षाकृत अधिक अधिकारी व्यक्तियो के कथन को ही प्राथमिकता दी गयी है। परिचय मे आये हुए 'अनुसधान', 'अनुशीलन', 'अध्ययन', 'विवेचन', 'विश्लेषण', 'वर्णन' आदि शब्दो का व्यवहार साभिप्राय नही है। किसी भी अनुसधाता का मडन या खडन हमारा लक्ष्य नही रहा है। जिन प्रबन्धो के प्रतिपाद्य विषयो की जानकारी हमे प्राप्त न हो सकी उनका उल्लेखमात्र करके सतोष कर लिया गया है।

इस दुस्साध्य कार्य के सम्पादन मे अनेक विद्वानो और मित्रो ने हमारी सहायता की है। हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इस सम्बन्ध में विविध प्रकार की कठिनाइयो की चर्चा करना व्यक्तिगत आक्षेपो से खाली न होगा, अतएव मौन रहना ही श्रेयस्कर है।

इस ग्रन्थ मे २७८ शोध प्रबन्धो का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन दिनो भी विभिन्न विश्वविद्यालयो द्वारा अनेक शोधप्रबन्ध पी-एच० डी०, डी० फिल० और डी० लिट० उपाधियो के स्वीकृत हुए है और हो रहे हैं उनका विवरण प्राप्त न हो सका। आगामी पुस्तक मे उनकी सूचना भी दी जायगी।

हिन्दी-विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
१५ ८. १९५९ ई०

—उदयभानुसिह

# शोधप्रबन्ध-सूची

१८८ आन्ध्र-हिन्दी-रूपक (हिन्दी औ
तुलनात्मक अध्ययन)
१८६ भारतीय आर्यभाषा-परिवार
गढी, हलवी, भतरी
१६० प्रेमचन्द एक अध्ययन (
१६१ समस्यामूलक उपन्यासका
१६२ हिन्दी-काव्य मे कल्पना-
१६३ निमाडी और उसका
१६४ केशवदास—उनके री
१६५ अवध के प्रमुख हिंदी
१६६ सूरदास की भाषा
१६७ मैथिली के कृष्णाभ
१६८ भारतेन्दुयुगीन क
१६६ हिन्दी भाषा औ
२०० हिन्दी-महाकाव
२०१ तुलसीदास
२०२. हिन्दी एकाव
२०३ जयशकर प्र
२०४ मैथिलीशर
२०५. आचार्य
२०६ गुप्त जी
२०७ भारतेन्द
२०८ हिन्दी
तुलन
२०६ राम
२१० आन्
२११. हि
२१२ आ
स
२१३ रं
(
२१४.
२१५
२१६.

# १. तुलसीदास का धर्मदर्शन (थियॉलॉजी ऑव् तुलसीदास)

[१९१८ ई०]

हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी सर्वप्रथम उपाधिपरक प्रवन्ध 'थियॉलॉजी ऑव् तुलसीदास' है। १९१८ ई० मे इस प्रवन्ध पर लन्दन विश्वविद्यालय ने श्री जे० एन० कारपेन्टर को 'डॉक्टर ऑव् डिविनिटी' की उपाधि प्रदान की थी। उसी वर्ष 'दि क्रिश्चियन सोसायटी फॉर इन्डिया' (मद्रास, इलाहाबाद, कलकत्ता, रगून, कोलम्वो) ने अगरेजी भाषा मे ही इसका प्रकाशन किया था। इस समय यह पुस्तक अप्राप्य है।

इस प्रवन्ध मे दो खड हैं। पहला खड पाच अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे तुलसीदास के धर्मदर्शन की भूमिका के रूप मे हिन्दू धर्म का सामान्य विवेचन है। उसकी सश्लिष्टता, उसके इतिहास तथा उसके आधारभूत वाङ्मय वेदों, ब्राह्मणो, उपनिषदो एव षड्दर्शनो की विचारधारा का सक्षिप्त निरूपण है। दूसरे अध्याय मे अवतार और भक्ति, तीसरे मे रामपूजा तथा चौथे मे तुलसीदास का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। पाचवें अध्याय मे 'रामायण' प्रतिपादित विषयो का विश्लेषण है।

दूसरे खड मे आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे सच्चिदानन्द भगवान् स्वरूप और उसके गुणो का निरूपण है। दूसरे अध्याय मे हिन्दुओ के त्रि(ब्र)ह्मा, विष्णु और महादेव) तथा अन्य देवताओ की विशेषताओ का (करके) इन्द्रपूजा के पतन एव धार्मिक सुधार की चर्चा की गयी है। चौथे (मे) राम का निरूपण है। उसके प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार हैं परम (ब्रह्म) अवतार राम, राम और त्रिदेव, कर्मरूप (कर्म, विधि, भाग्य) राम, (...) तथा स्वभाव, माया, रामनाम और साख्यानुसार राम का चित्रण (...) अध्याय का विषय अवतार है। अवतार-सम्बन्धी सामान्य धारणा (...) पूर्ववर्ती अवतारो की चर्चा करके रामावतार के प्रयोजनो का उल्लेख

है। तदनन्तर अवतार के इच्छामय तथा अंशो सहित रूप की विशेषता बताकर अवतार के रहस्य का विवेचन किया गया है। छठे अध्याय मे भक्ति आदि की मीमासा है। 'भक्ति' के अर्थ, उस पर ईसाई प्रभाव, शिव, भरत आदि मुख्य भक्तो, भक्ति की श्रेष्ठता, नवधा भक्ति, भक्ति और ज्ञान की तुलना आदि पर विचार किया गया है। सातवें अध्याय में माया की परिभाषा, मायावाद और परिणामवाद, राम और माया, माया और सृष्टि तथा माया के स्वरूप आदि की व्याख्या है। अन्तिम अध्याय का विषय है—पाप और मोक्ष। इस प्रकरण मे यह बतलाया गया है कि ससार पाप का ही अनिवार्य परिणाम है और राम ही मोक्षदाता हैं।

इस पुस्तक की एक अवेक्षणीय विशेषता यह भी है कि तुलसीदास के उद्धरण देवनागरी लिपि मे ही दिये गये हैं।

## २. हिन्दुस्तानी ध्वनि-विज्ञान (हिन्दुस्तानी फॉनेटिक्स)

[१६३० ई०]

श्री मोहिउद्दीन कादरी का प्रबन्ध 'हिन्दुस्तानी ध्वनि-विज्ञान' सन् १६३० ई० मे लन्दन विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह उपाधि उर्दू की थी। इसका प्रकाशन सन् १६३० ई० मे हुआ।

पुस्तक के आरम्भ मे डा० जूल ब्लाख की प्रस्तावना है। अपने प्राक्कथन मे लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि यह प्रबन्ध हिन्दुस्तानी अथवा उर्दू पर लिखा गया है जो भारत के दस करोड से अधिक व्यक्तियो द्वारा बोली और देश के प्राय सभी बडे नगरो मे समझी जाती है।

इस प्रबन्ध में चार अध्याय हैं। पहला अध्याय प्रास्ताविक है। इसमे हिन्दुस्तानी के ऐतिहासिक विकास, उत्तरी और दक्षिणी उर्दू के अन्तर, उनके उच्चारण-भेद और उनकी रूपरचना के भेद एव महत्व का विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय मे ध्वनियो का अध्ययन है। इसमे स्वरो, सयुक्त स्वरो तथा अनुनासिक स्वरो की विवेचना है। तीसरे अध्याय मे व्यजनो तथा व्यजनानुरूपता का अनुशीलन है। चौथे अध्याय मे हिन्दुस्तानी बलाघात और सुरो पर प्रकाश डाला गया है।

## ३. अवधी का विकास (एवोल्यूशन ऑफ़ अवधी)

[ १९३१ ई० ]

श्री बाबूराम सक्सेना का अंग्रेजी मे लिखित प्रबन्ध 'अवधी का विकास' (एवोल्यूशन ऑफ अवधी ) सन् १९३१ मे प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, ने १९३७ ई० मे इस प्रबन्ध को अंग्रेजी मे ही प्रकाशित किया।

प्रबन्ध के दो भाग है। पहले भाग मे विषय-प्रवेश के अतिरिक्त नौ अध्याय हैं। विषय-प्रवेश मे नाम, क्षेत्र, मुख्य विशेषताए, उत्पत्ति का महत्व, अध्ययन की आधार-सामग्री, उपबोलियाँ, शब्दसमूह तथा लिपि—इनकी दृष्टि से अवधी पर विचार किया गया है। पहले अध्याय मे पुरानी तथा आधुनिक अवधी मे प्रयुक्त ध्वनियो की उत्पत्ति और विकास पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय का विषय स्वर-सयोग है। इनमे प्राचीन तथा आधुनिक अवधी मे इनके प्रयोग तथा उत्पत्ति का अध्ययन है। तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें तथा नवें अध्याय अपेक्षाकृत छोटे-छोटे हैं और इनमे क्रम से अवधी के अक्षर, शब्द, स्वराघात, समीकरण, वाक्य, सुर तथा उसकी ध्वनि-विषयक अन्य विशेषताओ पर विचार किया गया है। अवधी की ध्वनियो के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए लेखक ने इग्लैन्ड मे कायमोग्राफ तथा पैलेटोग्राफ का उपयोग किया था। इस भाग के अन्त मे इनके प्रयोग द्वारा प्राप्त चित्र तथा चार्ट आदि दिये गये है।

प्रबन्ध के दूसरे भाग मे दस अध्याय है। पहले अध्याय मे अवधी सज्ञाओ का (कारक रूप, लिंग तथा वचन आदि की दृष्टि से) अध्ययन है। साथ ही अवधी-प्रातिपदिक, लिंग, वचन, कारक तथा उनकी व्युत्पत्ति और उनका विकास भी दिया गया है। दूसरे अध्याय मे अवधी विशेषणो का (उत्पत्ति, भेद, लिंग तथा वचन की दृष्टि से) विवेचन है। तीसरा अध्याय विशेषण के ही एक भेद सख्यावाचक विशेषण से सबद्ध है। इसमे पूर्ण, क्रम, गुणनात्मक तथा अपूर्ण सख्यावाचक विशेषणो पर उनकी उत्पत्ति देते हुए प्रकाश डाला गया है। चौथा अध्याय सर्वनामो का है। इसमे प्राचीन तथा आधुनिक अवधी मे प्रयुक्त सभी प्रकार के सर्वनामो का विवेचन है। साथ ही इनकी व्युत्पत्ति भी दी गयी है। पाचवें अध्याय मे अवधी मे प्रयुक्त परसर्गो का व्युत्पत्ति के साथ

निरूपण है। छठा अध्याय अवधी क्रियाओ का (मूल्य, सहायक क्रिया, काल, वाच्य, पुरुष, वचन तथा साधारण सयुक्त क्रिया आदि दृष्टियो से) विवेचन प्रस्तुत करता है। साथ ही इनकी व्युत्पत्ति भी दी गयी है। सातवे अध्याय मे अवधी के क्रिया-विशेषण व्युत्पत्ति के साथ दिये गये हैं। आठवा अध्याय समुच्चय-बोधक अव्ययो का है। नवें अध्याय मे अवधी मे बलार्थक प्रयुक्त रूपो का विवेचन है। अन्तिम अध्याय प्राचीन तथा आधुनिक अवधी की वाक्य-गठन मे शब्द-क्रम पर प्रकाश डालता है।

प्रबन्ध के अन्त मे दो परिशिष्ट हैं। पहले परिशिष्ट मे पुरानी अवधी के कुछ अप्रकाशित उदाहरण दिये गये हैं। दूसरे मे आधुनिक अवधी के उदाहरण हैं। दोनो के ही साथ पाठको की सुविधा के लिए उनका अग्रेजी अनुवाद भी दे दिया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध अपने विषय पर लिखा गया प्रथम और एकमात्र निबध है।

## ४. कबीर तथा उनके अनुयायी

[१९३१ ई०]

श्री एफ्० ई० के को उनके प्रबन्ध 'कबीर तथा उनके अनुयायी' (कबीर एंड हिज फॉलोअर्स) पर सन् १९३१ ई० मे लन्दन विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि मिली थी। यह प्रबन्ध ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, से सन् १९३१ ई० मे प्रकाशित हुआ था। इस समय अप्राप्य है।

## ५. हिन्दी-काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय ( दि निर्गुण स्कूल ऑव् हिन्दी पोएट्री)

[सवत् १९९०, सन् ९१३४ ई०]

भारतीय विश्वविद्यालय की डॉक्टरेट उपाधि के लिए हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी विषय पर सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया प्रबन्ध "दि निर्गुण स्कूल ऑव् हिन्दी पोएट्री' है। इस प्रबन्ध पर हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, ने (स्व०) श्री

पीताम्बर दत्त बडथ्वाल को स० १९९० मे डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की थी। मूल प्रबन्ध अंग्रेजी मे लिखा गया था। उसके प्रथम, द्वितीय और षष्ठ अध्यायो का अनुवाद स्वय बडथ्वाल जी ने 'हिन्दी-काव्य मे निर्गुण-सम्प्रदाय' नाम से किया था। उनके स्वर्गवास के कुछ समय पश्चात् पूरा प्रबन्ध प० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा अनूदित एव डा० भगीरथ मिश्र द्वारा सपादित होकर स० २००७ मे अवध पब्लिशिंग हाउस, पानदरीबा, लखनऊ, से प्रकाशित हुआ।

इस ग्रन्थ मे छ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे तत्कालीन परिस्थितियो का पर्यालोचन है। मुस्लिम आक्रमण, वर्ण-व्यवस्था की विषमता, राजनैतिक अव्य-वस्था, धार्मिक प्रचारको की भगवच्छरणागति, हिन्दू मुसलमानो के सम्मिलन के आयोजन, सूफी विचारधारा और शूद्रोद्धार की भावना पर विचार करके निर्गुण सम्प्रदाय के आविर्भाव का निरूपण है। दूसरे अध्याय मे निर्गुण-सन्त-सम्प्रदाय के प्रसारको (जयदेव, नामदेव, त्रिलोचन, रामानन्द, कबीर, नानक, दादू, प्राणनाथ, बाबालाल, मलूकदास आदि) का जीवनीमूलक गवेषणात्मक अध्ययन है। तीसरे अध्याय मे सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तो (एकेश्वरवाद, पूर्णब्रह्म-भावना, परात्पर-भावना, ईश्वर-जीव-जगत्, सहज ज्ञान, दार्शनिक स्रोत, निरजन-कल्पना, और अवतार-विरोध) का विश्लेषण है। चौथे अध्याय मे निर्गुण-पन्थ की विशेषताओ, उसके आध्यात्मिक वातावरण, गुरुमहिमा, नाम-सुमिरन-प्रार्थना, शब्दयोग, अन्तर्दृष्टि, 'परचा' आदि का अनुशीलन किया गया है। पाचवें अध्याय मे निर्गुण-पन्थ की मिश्रित विचारधारा और उसकी साम्प्रदा-यिकता की छानबीन करके उसका स्वरूप निर्धारित किया गया है। छठे अध्याय मे निर्गुण-सम्प्रदाय की काव्यसमीक्षा है। इन सन्तो की बानियो के कवित्व, प्रेम के रूपको, उलटबासियो आदि की सहृदयतापूर्वक समालोचना की गयी है। परिशिष्ट मे दी गयी पारिभाषिक शब्दावली, निर्गुण-सम्प्रदाय-सम्बन्धी पुस्तको के विवरण तथा 'विशेष बातें' विषय के सम्यक् अवधारणा के लिए विशेष उपयोगी हैं।

बडथ्वाल जी का यह प्रबन्ध निर्गुण-सन्त-सम्प्रदाय के गवेषणात्मक अध्ययन का प्रथम प्रयास है। इसमे सामग्री की व्यापक शोध के साथ ही निर्गुण कवियो की तत्वचिन्तन-धारा एव काव्य-वैभव का अनुसन्धान किया गया है। ज्ञात और अज्ञात सन्तो की परम्परा को एक सूत्र मे ग्रथित करके, वर्ग-विशेष के अन्तर्गत उनका सामूहिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

## ६. सूरदास का धार्मिक काव्य

[१९३४ ई०]

श्रीजनार्दन मिश्र को उनके प्रबन्ध 'सूरदास का धार्मिक काव्य' पर सम्भवत' कोनिग्सवर्ग से सन् १९३४ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी।

## ७. ब्रजभाषा (ल लांग ब्रज)

[१९३५ ई०]

श्री धीरेन्द्र वर्मा का प्रबन्ध 'ब्रजभाषा' (ल लाग ब्रज) सन् १९३५ ई० मे पेरिस विश्वविद्यालय की डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। इसके हिन्दी-रूपान्तर का प्रकाशन हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने सन् १९५४ मे किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध बारह अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे मध्यदेश और ब्रजप्रदेश का (पृष्ठभूमि के रूप मे) भौगोलिक परिचय है। दूसरे अध्याय का सबध ब्रजवासी जनता से है। इसमे उनकी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियो का परिचय दिया गया है। तीसरे अध्याय का शीर्षक है 'ब्रजभाषा साहित्य।' इसमे 'ब्रजभाषा' नाम की व्युत्पत्ति और सक्षिप्त इतिहास देते हुए लेखक ने ब्रज-साहित्य और ब्रजभाषा पर ऐतिहासिक दृष्टि डालने के लिए इसके इतिहास को प्राचीन (१४०० ई० के पूर्व), मध्य (१४०० से १८०० ई० ) तथा आधुनिक (१९०० ई० के बाद) इन तीन कालो मे विभक्त किया है, और इन पर प्रकाश भी डाला है। लेखक ने इस अध्याय के अन्त मे प्रस्तुत किये गये अध्ययन मे सामग्री के उपयोग की शैली तथा ब्रजभाषा की हस्तलिपियो मे प्रयुक्त लिपि की विशेषताओ का उल्लेख किया है। चौथे अध्याय का शीर्षक है 'आधुनिक ब्रजभाषा।' इसमे वर्तमान काल मे ब्रजभाषा के भौगोलिक विस्तार और उसकी सीमाओ का निर्धारण करते हुए कन्नौजी की (बोली रूप में) स्वतन्त्र सत्ता पर भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है। लेखक यहाँ इस निर्णय पर पहुँचा है कि कन्नौजी को स्वतन्त्र बोली न मानकर ब्रजभाषा का एक उपरूप ही मानना उचित है। इसी अध्याय मे वर्तमान

ब्रजभाषा के उपरूपो का भी निर्धारण किया गया है। अन्त मे गाव, कस्बा और नगर की बोली के भेदो का उल्लेख करते हुए लेखक ने ब्रजभाषा के शब्द-समूह का सक्षिप्त विवरण दिया है।

पाचवें अध्याय का सम्बन्ध ध्वनि से है। इसमे स्वर, व्यजन, मूलस्वर, अनुनासिक स्वर, स्वरसयोग, स्पर्श, पार्श्विक, लुठित, उत्क्षिप्त, सघर्षी तथा अर्द्ध स्वर, इन नौ उपशीर्षको के अन्तर्गत ब्रजभाषा मे पायी जाने वाली ध्वनियो का वर्णनात्मक अध्ययन एव वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय मे ध्वनि की दृष्टि से शब्दाश, शब्द और शब्द-सार्क पर भी विचार किया गया है। अन्त मे फारसी तथा अग्रेज़ी से ब्रज मे गृहीत शब्दो के ध्वनि-परिवर्तन पर विचार किया गया है।

छठा अध्याय 'सज्ञा' शीर्षक है। इसमे सज्ञा के लिंग, वचन, कारक के मूल और विकृत रूपो मे रचना, इन रूपो का वाक्यो या वाक्याशो मे प्रयोग आदि पर विचार किया गया है। ब्रजभाषा-सज्ञा के कुछ सयोगात्मक रूप भी मिलते हैं। इसी अध्याय मे आगे इनका विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। और अन्त मे विशेषणमूलक रूपो का सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

सातवा अध्याय सर्वनाम पर है। इसमे सर्वनाम के प्रमुख भेदो और उप-भेदो (उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, दूरवर्ती निश्चयवाचक, निकटवर्ती निश्चयवाचक, सम्बन्धवाचक और नित्यसम्बन्धी, प्रश्नवाचक, अनिश्चयवाचक, निजवाचक तथा आदरवाचक) की दृष्टि से ब्रज के सर्वनामो का वर्णनात्मक अध्ययन है। इसी अध्याय के अन्त मे सयुक्त सर्वनाम और सर्वनाम-मूलक विशेषणो का भी परिचय दिया गया है।

आठवा अध्याय परसर्गो पर है। इसमे सामान्य या मूल परसर्ग, सयुक्त परसर्ग और परसर्गो के समान प्रयुक्त अन्य शब्दो पर विचार किया गया है। नवा अध्याय क्रिया पर है। आरम्भ मे ब्रज की मूल और प्रेरणार्थक धातुओ पर विचार किया गया है, फिर वाच्य, भूतकाल तथा कृदन्ती रूपो, सहायक क्रिया तथा सयुक्त क्रिया की दृष्टि से ब्रजभाषा की क्रियाओं का अध्ययन है।

दसवे अध्याय का शीर्षक है अव्यय। इसमे ब्रज के अव्ययो का (काल, स्थान, रीति, निषेध, कारण, परिणाम, काल तथा स्थानवाचक क्रिया-विशेषण, विभाजक, विरोध, निमित्त, उद्देश्य, सकेत, व्याख्या और विषय-वाचक, समुच्च-बोधक तथा निश्चयबोधक उपशीर्षको के अन्तर्गत) अध्ययन किया गया है। इस अध्याय का एक परिशिष्ट भी है जिसमे सख्यावाचक शब्दो का अध्ययन है।

ग्यारहवें अध्याय मे व्रजभाषा की वाक्य-गठन पर शब्द-क्रम तथा अन्वय की ष्टि से विचार किया गया है। बारहवा अध्याय 'उपसहार' है जिसमे व्रजभाषा मुख्य लक्षरण दिये गये हैं। साथ ही प्राचीन और आधुनिक व्रजभाषा के अन्तर ौर व्रज पर खडी बोली के प्रभाव एव आधुनिक आर्यभाषाओ मे व्रजभाषा के थान आदि पर विचार किया गया है।

परिशिष्ट मे आधुनिक व्रजभाषा-क्षेत्र तथा सीमान्त प्रदेशो (अलवर, अलीगढ, ागरा, इटावा, एटा, करौली, गुडगाव, ग्वालियर, जयपुर, पीलीभीत, फर्रुखाबाद, बदायू, बरेली, बुलन्दशहर, भरतपुर, मथुरा, मैनपुरी और ाहजहापुर) की बोलियो के उदाहरण दिये गये हैं।

## ८. हिन्दी-काव्य-शास्त्र का विकास
[१९३७ ई०]

श्री रामशकर शुक्ल 'रसाल' को उनके शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी-काव्य-शास्त्र का विकास' पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् १९३७ ई० मे डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबन्ध काव्यशास्त्र की विकास रेखाओ को स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है। यह ग्रन्थ हिन्दी काव्यशास्त्र का विकास प्रदर्शित करने वाला पहला प्रबन्ध है। इसमे काव्यशास्त्र के विकास को चार कालो मे विभक्त किया गया है—चारण-काल, धार्मिक काल, कला-काल (रीति-काल) और गद्य-काल (आधुनिक काल)। इसकी पृष्ठभूमि मे अलकारशास्त्र के विकास का सामान्य परिचय दिया गया है।

दूसरे अध्याय 'कला-काल' मे रीति-साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियो का विवेचन विभिन्न उपशीर्षको जैसे कला-काल मे दरबारी प्रभाव व राजपूत-दरबार का प्रभाव आदि के रूप मे किया गया है।

तीसरे अध्याय मे हिन्दी के काव्य-शास्त्रकारो और उनकी रचनाओ का वर्गीकरण किया गया है तथा उनका विस्तृत विवेचन भी इस अध्याय मे सम्पन्न हुआ है।

चौथे अध्याय मे अलकार की परिभाषा तथा काव्य मे उसका स्थान विवेचित

है। साथ ही रीतिकालीन कवियो की पृष्ठभूमि मे विभिन्न अलकारो का विशिष्ट प्रयोग भी निर्दिष्ट किया गया है।

पाचवें अध्याय मे हिन्दी के अलकारो का वर्गीकरण विवेचित है। प्रस्तुत प्रकरण मे इस तथ्य का उपस्थापन किया गया है कि हिन्दी आलकारिको ने अलकारो का सक्षिप्तत नौ प्रकारो मे प्रयोग किया है। इसी आधार पर अर्थालकार, शब्दालकार आदि के अनेक प्रकारो का सोदाहरण और विस्तृत व्याख्यात्मक निरूपण किया गया है।

छठे अध्याय मे अलकार के सम्बन्ध मे विभिन्न शास्त्रीय मतो का उपस्थापन किया गया है तथा रीतिकालीन कवियो की अलकार-विषयक विविधता का विस्तृत प्रतिपादन किया गया है। इस अध्याय मे रीतिकाल के प्रमुख लक्षण और स्वतन्त्र रचनाकारो के माध्यम से उनकी रचनाओ मे उपलब्ध विविध प्रकार के अलकारो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सातवें अध्याय मे हिन्दी लेखको की 'काव्यशास्त्र' को देन का विवेचन है। सस्कृत-काव्यशास्त्र के साथ हिन्दी-काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए रीतिकालीन विभिन्न कवियो—केशव, देव, भिखारीदास, जसवन्त, पद्माकर, भूषण आदि—की काव्यशास्त्र-विषयक बहुत सी नवीनताओ की उपयोगिता का मूल्याकन भी किया गया है।

आठवें अध्याय मे आलकारिको के अतिरिक्त कुछ अपने स्वतन्त्र मन्तव्य भी (काव्यशास्त्र-विषयक) उपस्थित किये गये है। इसके अतिरिक्त अन्तिम अध्याय मे काव्यशास्त्र के अन्य विभागो पर भी एक सामान्य और सक्षिप्त विवेचन उपस्थित किया गया है। काव्यशास्त्र के अन्य अगो की अपेक्षा अलकारशास्त्र का विस्तृत विवरण इस प्रबन्ध मे प्रतिपादित है।

## ६. तुलसी-दर्शन

[१९३८ ई०]

श्री बलदेव प्रसाद मिश्र को उनके प्रबन्ध 'तुलसी-दर्शन' पर नागपुर विश्वविद्यालय ने सन् १९३८ ई० मे डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध इसी नाम से स० २००५ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, ने प्रकाशित किया।

जीवन का ध्येय समझता है जो भारतीय चिन्तन के विरुद्ध है। इस प्रवृत्ति के प्रमुख कवियो मे रामेश्वरी देवी 'चकोरी', तारा पाडेय, महादेवी वर्मा और 'हृदयेश' की गणना की गयी है। छठे अध्याय मे उन नवीन प्रयोगों का अध्ययन किया गया है जो पद्य के क्षेत्र मे या तो अभिनव हैं अथवा प्राचीन रूप के परिष्कार हैं।

दूसरा खड नाटक-विषयक है। इसमे पाच अध्याय है। पहले अध्याय मे रोमानी प्रवृत्तियो का अध्ययन किया गया है। अतीत के प्रति आग्रह, पाश्चात्य सभ्यता के एकाधिपत्य के विरोध तथा तात्कालिक प्रत्यक्ष जीवन से पलायन की इच्छा के फलस्वरूप इस प्रवृत्ति का उद्भव हुआ। दूसरे और तीसरे अध्यायो मे आदर्शवादी प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति पर विचार किया गया है। लेखक का मत है कि इन नाटकों के पहले उत्थान मे पाश्चात्य सभ्यता के प्रति विद्रूप व्यग्य और दूसरे उत्थान मे इतिहास से जीवन के प्रति एक नूतन दृष्टिकोण ग्रहण करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। किन्तु इतिहास के चित्रण अथवा पुनर्व्याख्यान मात्र से मनुष्य सन्तुष्ट नही हो सकता था। जीवन के प्रति शनै-शनै एक आलोचनात्मक एव अन्वेषणात्मक दृष्टिकोण जन्म ले रहा था। जो यथार्थवादी नाटको का निमित्त था। चौथे अध्याय मे इन यथार्थवादी नाटको का अध्ययन है। पाचवें अध्याय मे नाटक की आधुनिक शिल्पविधि का विवेचन किया गया है।

अनुसन्धाता ने साहित्य के रूप मे उपन्यास को प्राय पूर्णत एक विदेशी देन माना है। तीसरे खड के चार अध्यायो मे उपन्यास-साहित्य का अनुशीलन है। पहले अध्याय मे देवकीनन्दन खत्री आदि के रोमानी उपन्यासो का अध्ययन किया गया है। दूसरे अध्याय मे वृन्दावनलाल वर्मा आदि के ऐतिहासिक उपन्यासो का विवेचन है। तीसरे और चौथे अध्यायो मे उपन्यासगत यथार्थ-वादी प्रवृत्ति का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। प्रेमचन्द तथा उनके स्कूल के उपन्यासकारो के कृतित्व का शास्त्रीय एव व्यावहारिक विवेचन पर्याप्त विस्तार से किया गया है।

चौथे खड मे केवल एक अध्याय है जिसमे 'लघुकथा' का विवेचन किया गया है। अध्येता ने बतलाया है कि कहानी मे यथार्थवादी प्रवृत्तियो का ही प्राधान्य है। गद्य की यह विधा खूब लोकप्रिय हुई है और इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

# ११. रामचरितमानस में तुलसी की शिल्पकला—एक विश्लेषण

[१९३९ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी के सर्वप्रथम डॉक्टर श्री हरिहर नाथ हुक्कू हैं। उनका प्रबन्ध 'रामचरितमानस मे तुलसी की शिल्पकला—एक विश्लेषण' सन् १९३९ ई० मे डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध अगरेजी मे लिखा गया था। अभी तक अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रबन्ध तीन खडो मे विभाजित किया गया है। पहले खड मे 'रामचरितमानस' की रचना के प्रयोजन, तुलसी द्वारा राम-कथा के चुनाव और उनकी समन्वयवादी भावना पर विचार किया गया है।

दूसरे खड मे 'रामचरितमानस' की वस्तु-योजना का अध्ययन है। विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण को मागना, अहल्या-उद्धार, स्वयवर और परशुराम का आगमन, दशरथ से केकैयी का वर मागना तथा सीताहरण की मुख्य घटनाओ की विस्तारपूर्वक विचार-चर्चा की गयी है। राम-कथा मे इन घटनाओ का क्या महत्व और अभिप्राय है, उसके ग्रहण मे विभिन्न कवियो एव नाटककारो को कहा तक सफलता मिली है, उसकी नाटकीयता का उन्होंने कहा तक उपयोग किया है, तुलसीदास ने उसका कहा तक निर्वाह किया, उनका गौरव कहा है—इन दृष्टियो से कवि की शिल्पकला का अनुशीलन किया गया है।

तीसरे खड मे 'रामचरितमानस' के पात्रो के चरित्राकन का विश्लेषण है। राम, सीता, रावण, कैकेयी तथा अन्य पात्रो के चरित्र-चित्रण की निम्नाकित दृष्टियो से विवेचना की गयी है—तुलसी ने वाल्मीकि आदि पूर्ववर्ती रामकवियो से इन पात्रो के विषय मे कौन से विचार प्राप्त किये, तुलसी के परवर्ती कवियो ने परम्परा का कहा तक पालन किया, तुलसी ने किस ढग से पात्रो का चरित्र-विकास किया, उनकी सफलता किन बातो मे है और उन्होंने किस प्रकार राम-कथा को उच्चतर भूमि पर प्रतिष्ठित किया।

ो काम लिया जाता है। वस्तुत इसका केवल ऐतिहासिक महत्त्व है। भाषा ग्रौर शैली की दृष्टि से भी इस साहित्य का विवेचन किया गया है।

पाँचवें अध्याय 'उपन्यास' मे हिन्दी मे उपन्यास-रचना के प्रेरक तत्त्वो का निर्देश किया गया है। सन् १८५७ के बाद उनकी वृद्धि के कारणो का भी उल्लेख है। तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासो की विवेचना करने के अनन्तर अन्य हिन्दी-उपन्यासो की विशेषताओ का भी कथन किया गया है। उनकी नैतिक पीठिका, रचना-विधि तथा भाषा पर विचार किया गया है। बगला, सस्कृत, अग्रेजी आदि भाषाओ से अनूदित उपन्यासो पर भी दृष्टि डाली गयी है।

छठा अध्याय 'नाटक' है। पहले भारत मे नाटको की उत्पत्ति, विकास और ह्रास दिखाया गया है। अध्येता हिन्दी-नाटको की उत्पत्ति रासलीला और स्वाग से नही मानता। उसका विचार है कि सन् १८५० ई० से पहले हिन्दी मे प्राप्त नाटक, नाटक कहलाने योग्य नही हैं। तदनन्तर भारतेन्दु तथा कुछ अन्य प्रमुख नाटककारो की रचनाओ का अनुशीलन किया गया है। नाट्य-साहित्य का शीघ्र ही पतन हुआ। इसका एक कारण जहा पारसी ढग के नाटकों का जनता मे अत्यधिक प्रचार था वही और भी अनेक कारण थे, उनका उल्लेख किया गया है। यहाँ प्रहसन-साहित्य पर भी दृष्टि डाली गयी है। तदुपरात पारसी ढग के नाटको का विवेचन किया गया है। साथ ही सस्कृत, अग्रेजी, बगला, उर्दू आदि भाषाओ से अनूदित नाट्य-साहित्य की समीक्षा भी की गयी है।

सातवें अध्याय 'कविता' मे सर्वप्रथम प्राचीन साहित्यिक सम्पत्ति पर विचार किया गया है। इसके बाद कविता की नयी धारा के जन्म, स्वरूप और विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। इस कविता पर नवयुग के नवीन आन्दोलनो के अमित प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। नयी कविता की वर्णनात्मक शक्ति एव सजीवता का वर्णन किया गया है। किन्तु ये नये विचार भी प्राचीन रूपो मे ही प्रस्तुत किये गये। लेखक ने नयी रचना-विधि के अभाव के कारणो का भी उल्लेख किया है।

अन्त मे उपसहार के रूप मे आलोच्य-काल का सक्षिप्त परिचय देते हुए उसे प्राचीनता का त्यागी बतलाया गया है। काव्य-प्रवृत्तियों के विवेचन के साथ भविष्य की ओर भी सकेत है।

परिशिष्ट मे कविता की पुरानी धारा का विवेचन है।

# १४. आधुनिक काव्यधारा

## [१९४० ई०]

पंडित केसरी नारायण शुक्ल का गवेषणात्मक प्रबन्ध 'आधुनिक काव्य-धारा' सन् १९४० ई० मे हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, द्वारा डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन सन् १९४३ ई० मे (सरस्वती मंदिर, जतनबर बनारस, से) हुआ। अब तक इसकी तीन आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। मूल प्रबन्ध अंग्रेज़ी मे प्रस्तुत किया गया था। प्रकाशित ग्रन्थ उसी का रूपान्तर है।

यह ग्रन्थ तीन खंडो मे विभाजित है—प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान और तृतीय उत्थान। आरम्भ मे उपक्रम और अन्त मे उपसंहार की योजना की गयी है। उपक्रम मे शुक्ल जी ने आधुनिक काव्य की वृद्धिमती व्यापकता, उसकी महत्ता और उसके सांस्कृतिक अध्ययन की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। उसके उत्तर भाग मे आधुनिक काव्य की भूमिका के रूप मे रीतिकालीन काव्यधारा की प्रवृत्तियो का दिग्दर्शन है।

ग्रन्थ के प्रथम खंड मे भारतेन्दु-युग का अनुशीलन है। तत्कालीन राज-नैतिक चेतना, आर्थिक स्थिति, देशभक्ति की भावना, सामाजिक परिस्थिति और धार्मिक अवस्था का निरूपण करके विषय, भाषा-शैली, छन्द आदि की दृष्टि से भारतेन्दु की कविता का अध्ययन किया गया है। द्वितीय खंड मे आधु-निक हिन्दी कविता के द्वितीय उत्थान (द्विवेदी-युग) की समीक्षा है। इस खंड मे तत्कालीन भाषा, छन्द, पदावली आदि की समस्याओ और आवश्यकताओ पर विचार करके उस युग की सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय और प्राकृतिक कविता की विस्तृत विवेचना की गयी है। तृतीय खंड मे द्विवेदी-उत्तर युग की हिन्दी-कविता का अनुशीलन है। आरम्भ मे वर्तमान काव्य की स्वच्छन्दता-वादी, यथार्थवादी और अभिव्यंजनावादी प्रवृत्तियो तथा कवियो की काव्य-प्रक्रिया-सम्बन्धी विशेषताओ का संक्षिप्त विश्लेषण करके इस युग की रहस्यवादी, राष्ट्रीय, प्रेम-विषयक एवं प्रकृति-निरूपक कविताओ की व्यापक समालोचना की गयी है। उपसंहार मे विषय, भाषा, छन्द, काव्यरूप और सौन्दर्य की दृष्टियो से आधुनिक हिन्दी-कविता का मूल्यांकन किया गया है।

शुक्ल जी का यह ग्रथ आधुनिक हिन्दी-काव्य की प्रवृत्तियों की प्रगति और विकास पर प्रस्तुत किया गया पहला शोध-प्रबन्ध है। इसमे एकान्विति और धारावाहिकता का विशेष ध्यान रखा गया है। जीवन की विभिन्न धाराओ के अनुरूप, सास्कृतिक दृष्टि से, आधुनिक कविता का परिशीलन इस प्रबन्ध की विशेषता है।

## १५. हिन्दी-साहित्य (संवत् ७५०-१७५०) का आलोचनात्मक इतिहास

[ १९४० ई० ]

श्री रामकुमार वर्मा का प्रबन्ध 'हिन्दी-साहित्य ( स० ७५०-१७५० वि० ) का आलोचनात्मक इतिहास' सन् १९४० ई० मे नागपुर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। रामनारायण लाल, इलाहाबाद ने इसका पहला सस्करण १९३८ ई० मे प्रकाशित किया। अब तक इसके तीन सस्करण निकल चुके है। यह प्रबन्ध मुद्रित रूप मे ही उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था।

यह प्रबन्ध सात प्रकरणो मे विभक्त है। आरम्भ मे हिन्दी के विविध इतिहास-ग्रन्थो का परिचय दिया गया है। तदनन्तर हिन्दी-साहित्य की भाषा के विकास का सिंहावलोकन है। पहला प्रकरण 'सन्धि-काल' है, जिसमे सिद्ध और जैन-साहित्य का अनुशीलन किया गया है। सिद्ध-युग के अनेक सिद्ध कवियो का परिचय देते हुए सिद्ध-साहित्य के वर्ण्य विषय का विवेचन किया गया है। तदुपरान्त भाषा, रस और छन्द की दृष्टियो से इस साहित्य की समीक्षा की गयी है। इस साहित्य की विशेषताओ पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार जैन-साहित्य का परिशीलन भी हुआ है। दूसरे प्रकरण 'चारण-काल' मे डिंगल-साहित्य का विवेचन किया गया है। अध्येता ने वर्ण्य विषय, भाषा, रस, छन्द तथा अन्य विशेषताओ का अध्ययन करते हुए डिंगल-साहित्य के ह्रास पर भी विचार किया है।

तीसरा प्रकरण 'भक्तिकाल की अनुक्रमणिका' है। इसमे भक्तिकाल की चारो प्रमुख शाखाओं—सन्त-काव्य, प्रेम-काव्य, राम-काव्य और कृष्ण-काव्य—

का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आगे के चार प्रकरणो में इन्ही का विस्तृत आलोचनात्मक इतिहास लिखा गया है। इस अध्याय मे भक्तिकाल की दार्शनिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करने के लिये विभिन्न दार्शनिको (आचार्यो) एव उनके सिद्धान्तो की चर्चा भी की गयी है।

चौथे प्रकरण का प्रतिपाद्य विषय 'सन्त-काव्य' है। इसमे सन्त-काव्य की अनेक कृतियों और कृतिकारो (विशेष रूप से कवीर) के परिचय के वाद वर्ण्य विषय, भाषा, रस, छन्द, तथा अन्य विशेषताओ की दृष्टि से सन्त-काव्य का सिहावलोकन किया गया है। पाचवें अध्याय 'प्रेम-काव्य' मे पहले सूफी धर्म के चिश्ती, सुहरावर्दी तथा कादरी सम्प्रदायो के प्रारम्भिक इतिहास का दिग्दर्शन कराया गया है। तदुपरान्त प्रेम-काव्य की रचनाओ और कवियो का (विशेष रूप से जायसी का) विवरण देते हुए, प्रेम-काव्य का अध्ययन किया गया है।

छठा प्रकरण 'राम-काव्य' है। इस अध्याय मे किये गये विवेचन का अधिकाश भाग गोस्वामी तुलसीदास से सम्बद्ध है। तुलसी के पूर्ववर्ती रामभक्त कवि भगवत और चन्द से लेकर परवर्ती कवियो मैथिलीशरण गुप्त और वलदेव प्रसाद मिश्र तक की कृतियो का अनुशीलन करते हुए राम-काव्य का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है। सातवें प्रकरण मे अध्येता ने कृष्ण-काव्य का इतिहास लिखा है। इसमे कृष्ण-काव्य के प्रारम्भिक कवि जयदेव से प्रसृत होने वाली कृष्ण-काव्य-धारा के अध्येतव्य कवियो का अनुशीलन किया गया है। अध्याय के अन्त मे कृष्ण-काव्य का सिहावलोकन है। अन्त मे धार्मिक काल के ह्रास पर भी सक्षेप मे विचार किया गया है।

## १६. मलिक मुहम्मद जायसी की अवधी के विशिष्ट सन्दर्भ में सोलहवीं शती की हिन्दी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन

[१६४० ई०]

श्री लक्ष्मीधर को सन् १६४० ई० मे लन्दन विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। उनके शोधकार्य का विषय था 'ए लिंग्विस्टिक स्टडी ऑव् दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी हिन्दी विद् ए स्पेशल रेफरेन्स टु मलिक मुहम्मद जायसी'ज अवधी' (मलिक मुहम्मद जायसी की अवधी के विशिष्ट सदर्भ मे

सोलहवीं शती की हिन्दी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन)। सन् १९४९ मे लन्दन विश्वविद्यालय ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन निम्नाकित नाम से किया

'ए लिग्विस्टिक ऐन्ड कम्पेरेटिव स्टडी ऑव दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी हिन्दी विद् स्पेशल रेफरेन्स टु मलिक मुहम्मद जायसी'ज़ एपिक प्वोयम् पद्मावत'।

## १७. बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण मे हिन्दी-साहित्य के विकास का अध्ययन

[ १९४१ ई० ]

श्री श्रीकृष्णलाल को 'बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे हिन्दी-साहित्य के विकास का अध्ययन' प्रस्तुत करने पर सन् १९४१ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि प्राप्त हुई। मूल प्रबन्ध अगरेज़ी मे लिखा गया था। उसका हिन्दी रूपान्तर (किंचित् परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ) 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास (१९००-१९२५ ई०)' के नाम से हिन्दी-परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, द्वारा सन् १९४२ ई० मे प्रकाशित हुआ। अब तक इसके तीन सस्करण निकल चुके हैं।

इस ग्रन्थ मे सात अध्याय हैं। पहले अध्याय मे आलोच्यकालीन साहित्य की भूमिका के रूप मे उसकी साहित्यिक विशेषताओ, परिवर्तन के कारणो तथा उसकी प्रक्रिया का अध्ययन किया गया है। दूसरे अध्याय मे कविता की समीक्षा है। अध्याय के आरम्भ मे रूढ़िगत परम्परा और उसके सीमित दृष्टिकोण के प्रति स्वच्छन्दवाद के विरोध एव स्वच्छन्दवादी आन्दोलन के दार्शनिक, कलात्मक तथा साहित्यिक पक्षो का उद्घाटन है। तत्पश्चात् विषय और उपादान की दृष्टि से आधुनिक कविता की विवेचना की गयी है—मानव (ईश्वरावतार, देवी, देवता, महावीर और सामान्य मानवता), प्रेम, प्रकृति, राष्ट्र तथा अन्य विषय। अध्याय के उत्तरार्ध मे काव्यरूपो (मुक्तक, प्रबन्ध, गीतिकाव्य, नाटककाव्य तथा गीत), छन्दोविधान, भाषा-शैली आदि की समालोचना है। तीसरे अध्याय मे तत्कालीन हिन्दी-गद्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सक्षिप्त निरूपण करके उसके शब्द-भडार, उसकी जातीय शैली एव गद्यलेखको की व्यक्तिगत शैलियो का विवेचन है। चौथे अध्याय में आधुनिक नाटक की पूर्ववर्ती स्थिति का सिंहाव-

लोकन करके नाटक के कलारूप के विकास, नाटकीय विधानो मे परिवर्तन, कथानक और चरित्र, तथा पाच वर्गो के अन्तर्गत (रोमाचकारी, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामयिक, उपादान-विषयक और प्रतीकवादी) नाटको का अनुशीलन किया गया है। पाचवे अध्याय मे उपन्यासकला का सैद्धान्तिक विवेचन करके उस काल के (कथाप्रधान, चरित्रप्रधान और भावप्रधान) हिन्दी-उपन्यासो की समीक्षा की गयी है। छठे अध्याय मे कहानी के आरम्भ, विकास, वर्गीकरण, शैलियो आदि का अध्ययन है। सातवे अध्याय मे निबन्ध-साहित्य और सैद्धान्तिक, व्यावहारिक तथा गवेषणात्मक समालोचना की समालोचना है। उपसहार मे बीसवी शती के प्रथम पचीस वर्षों मे निर्मित हिन्दी के विविधविषयक साहित्य की इयत्ता और इदत्ता का मूल्याकन है।

श्रीकृष्ण लाल जी का यह प्रबन्ध प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित आधुनिक हिन्दी-साहित्य के विकास के क्रमबद्ध अध्ययन का दूसरा ग्रन्थ है। यही एक गवेषणात्मक प्रबन्ध है जिसमे बीसवी शती के प्रथम चरण के हिन्दी-साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है।

## १८. छन्दःशास्त्र को हिन्दी-कवियो की देन

[१९४२ ई०]

(स्व०) श्री जानकीनाथ सिंह 'मनोज' का शोध-प्रबन्ध 'छन्दःशास्त्र को हिन्दी कवियो की देन' सन् १९४२ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध अभी तक प्रकाश मे नही आया।

इस ग्रन्थ मे पाच अध्याय है। पहले अध्याय मे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश के छन्दःशास्त्र-विषयक ग्रन्थो का विवेचन किया गया है—विशेषकर उन ग्रन्थो का जो हिन्दी छन्दःशास्त्र के आधार है। दूसरे अध्याय मे हिन्दी-छन्दःशास्त्र के उपलब्ध ग्रन्थो का विवरण और तत्सम्बन्धी साहित्य की सामान्य परीक्षा की गयी है। तीसरे अध्याय मे छन्द के दृष्टि-बिन्दु से हिन्दी के महत्वपूर्ण कवियो की कृतियो का पर्यालोचन किया गया है, प्रतिपाद्य विषय, रस और अलकार के साथ छन्दो के सम्बन्ध की विवेचना की गयी है, हिन्दी-कवियो की मौलिक रीति का अध्ययन किया गया है और काव्य मे हिन्दी-कवियो द्वारा प्रयुक्त नये छन्दो

की सूची दे दी गयी है।

चौथे अध्याय मे छन्दो का वर्गीकरण किया गया है और छन्द शास्त्र पर ग्रन्थ लिखने वाले हिन्दी-लेखको द्वारा उपस्थापित नये छन्दो की खोज की गयी है। पाचवें अध्याय मे हिन्दी के सवैया छन्द का विश्लेषण किया गया है और अन्त मे बीसवी शती की कविता की मुख्य प्रवृत्तियो और उसके अध्ययन के आधार पर निष्कर्षों की स्थापना की गयी है।

## १६. मनोविज्ञान के प्रकाश मे रस-सिद्धान्त का समालोचनात्मक अध्ययन

[१६४३ ई०]

श्री छैल बिहारी गुप्त 'राकेश' को उनके शोध-प्रबन्ध 'साइकॉलॉजिकल स्टडीज़ इन रस' (मनोविज्ञान के प्रकाश मे रस-सिद्धान्त का समालोचनात्मक अध्ययन) पर सन् १६४३ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि प्राप्त हुई। अग्रेजी मे ही लिखित ग्रन्थ 'साइकॉलॉजिकल स्टडीज़ इन रस' के नाम से ही सन् १६५० ई० मे प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन, लेखक की ओर से, श्रीमती तारावती गुप्त (द्वारा बाबू लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, मानसिंह गेट, अलीगढ) ने किया।

यह ग्रन्थ दो खडो मे विभक्त है। पहले खड मे आस्वादरूप रस का विवेचन है। इस खड मे चार अध्याय है। पहले अध्याय मे भरत से लेकर रामचन्द्र शुक्ल तक बीस भारतीय काव्यशास्त्रियो के काव्य-लक्षण और अरिस्तू से लेकर रामचन्द्र श्रीवास्तव तक तीस पाश्चात्य विचारधारा के समीक्षा-शास्त्रियो की काव्य-परिभाषाए देकर काव्य-लक्षण का अध्ययन किया गया है।

दूसरे अध्याय का विवेच्य विषय है प्रत्यक्षानुभूति और काव्यरसास्वादन। पहले अध्याय मे काव्य के स्वरूप पर विस्तारपूर्वक विचार करके लेखक ने इस अध्याय में काव्य के प्रत्यक्ष और उसके रसास्वादन के रहस्यो के अनुसधान का प्रयास किया है। सस्कृत मे रसास्वाद-विवेचन के प्रसिद्ध आचार्यों भट्ट लोल्लट, श्रीशकुक, भट्ट नायक और अभिनवगुप्त के रस-सिद्धान्तो का विवेचन करके अपने रसास्वाद-विषयक सिद्धान्त की स्थापना की है। लेखक का अभिमत है

कि जहा तक काव्य का सम्बन्ध है 'रुचि' और 'आस्वाद' एक दूसरे के पर्याय हैं। जब रुचि सक्रिय रूप धारण कर लेती है तब उसे आस्वाद कहते हैं। आस्वाद रुचि की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नही है। अतएव यदि कोई काव्यकृति हमे रुचिकर प्रतीत होती है तो हम उसका रसास्वादन भी करते हैं। क्यो कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट प्रकार की रचना मे रुचि रखता है—इसका उत्तर उस व्यक्तिविशेष के वश-परम्परा-प्राप्त गुणो और वातावरण के आधार पर दिया जा सकता है।

तीसरे अध्याय मे काव्य-रसास्वादन के अगभूत मनोभावो का वर्गीकरण और विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। समस्त मनोभाव छ वर्गो मे रखे गये हैं—सिम्पैथेटिक, ऐन्टिपैथेटिक, रिकनेक्शनल, क्यूरियासिटी, रिफ्लेक्शनल और क्रिटिकल। लेखक की मान्यता है कि काव्यरसास्वाद उपर्युक्त छ प्रकार के भावो का ही परिणाम है, वह उनसे भिन्न कुछ नही है। उसे अलौकिक अनिर्वचनीय अथवा परप्रत्यक्षगम्य आदि कहना अयथार्थ है। चौथे अध्याय मे काव्य रसास्वाद के कारणभूत तत्वो—आस्वादित काव्य, वातावरण और आस्वादकर्ता—का अनुशीलन किया गया है।

ग्रन्थ के दूसरे खड मे भी चार अध्याय है। पहले अध्याय मे फीलिंग, एमोशन और सेन्टिमेन्ट का विवेचन है। दूसरे मे स्थायी और सचारी भावो की व्याख्या है। तीसरे अध्याय मे विभावो और अनुभावो का अध्ययन है। चौथे अध्याय मे भावो और रसादि का वर्गीकरण किया गया है। प्रबन्ध के अन्त मे रसदोष पर चार पृष्ठो का एक सक्षिप्त परिशिष्ट भी जोड दिया गया है।

## २०. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन

[ १९४३ ई० ]

श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का प्रबन्ध 'प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन' सन् १९४३ ई० मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। सरस्वती मदिर, जतनवर, बनारस, ने इसका प्रकाशन स० २००० वि० मे किया। इस ग्रन्थ की अनेक आवृत्तिया निकल चुकी हैं।

प्रस्तुत प्रवन्ध मे आठ अध्याय हैं। सवसे पहले प्रसाद की नाट्य-कृतियो का काल-क्रम दिया गया है। पहला अध्याय 'एकाकी रूपक' है। अध्येता का मत है कि यह प्रसाद का परीक्षा-काल था। इस काल मे नाटक-सृजन का उनका अभिप्राय यही था कि स्थिर होकर कौनसा ढग पकडना चाहिए। इसके वाद 'सज्जन', 'प्रायश्चित्त', 'कल्याणी-परिणय' और 'करुणालय' का शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे अध्याय मे पहले 'राज्यश्री' के इतिहास का विवेचन है। इसके वाद राज्यश्री के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। तदुपरात 'राज्यश्री' के नवीन सस्करण का प्राचीन सस्करण से तुलनात्मक अध्ययन है। अनुसन्धाता का विचार है कि नाटक का चतुर्थ अक अनावश्यक है। 'राज्यश्री' की रचना-पद्धति पर भी विचार किया गया है। हर्षवर्द्धन, शातिदेव, सुरमा तथा अन्य पात्रो के चरित्र-चित्रण का अध्ययन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे 'अजातशत्रु' का अनुशीलन है। अध्याय के आरम्भ मे 'अजातशत्रु' के ऐतिहासिक इतिवृत्त का विवेचन है। तदनन्तर नाटक के ऐतिहासिक आधार का सक्षिप्त निर्देश करके उसके कथानक, कार्यावस्थाओ, चरित्र-चित्रण, विदूषक और अतर्द्वन्द्व का अध्ययन किया गया है। चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत अजातशत्रु, विवसार, विरुद्धक, मल्लिका, मागन्धी, छलना और शक्तिमती के चरित्राकन का अनुशीलन है। अन्त मे नाटक के नायक और नामकरण तथा रस पर विचार किया गया है।

चौथे अध्याय का आलोच्य 'स्कदगुप्त' है। इस अध्याय मे भी पहले ऐतिहासिक कथावस्तु का अध्ययन है। 'साधारण परिचय' के अन्तर्गत अध्येता ने अपना मत व्यक्त किया है कि रचनापद्धति और नाटकीय गुण के विचार से 'स्कदगुप्त' प्रसाद का सर्वोत्तम नाटक है। तत्पश्चात् वस्तुतत्त्व, कार्यावस्थाओ, अर्थप्रकृतियो, सधियो, चरित्र-चित्रण ( स्कदगुप्त, देवसेना, पर्णदत्त, बधुवर्मा, जयमाला, विजया, शर्वनाग, अनन्तदेवी तथा अन्य पात्र), रस आदि का विवेचन करते हुए नाटक की विशेषता ( भारतीय एव पाश्चात्य शैली का समन्वय ) का प्रतिपादन किया गया है।

पाचवा अध्याय 'चन्द्रगुप्त' है। पहले नाटक के ऐतिहासिक आधार का अध्ययन है। इसके वाद कथानक, साविधानिक सौष्ठव और काल-विस्तार, अक और दृश्य, आरम्भ और फलप्राप्ति, कार्य की अवस्थाए, अर्थप्रकृतिया और सन्धिया शीर्षको के अन्तर्गत नाटक की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। तदनन्तर

नाटक के नायक पर विचार करते हुए अनुशीलक ने चन्द्रगुप्त को ही नायक माना है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिंहरण, अलका, सुवासिनी, कल्याणी, कार्नेलिया और मालविका तथा अन्य पात्रो के चरित्र-चित्रण पर विचार किया गया है। अन्त मे नाटक के रस, कथोपकथन, देशकाल तथा राष्ट्र-भावना का अध्ययन है।

छठा अध्याय 'ध्रुव स्वामिनी' है। ऐतिहासिक वस्तु, कथा, वस्तुतत्त्व, अक और दृश्य, आरम्भ, कार्य-व्यापार की तीव्रता और फलप्राप्ति, कार्य की अवस्थाए, चरित्राकन (कोमा, रामगुप्त, शिखरस्वामी, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि), सवाद आदि का विवेचन करते हुए नाटक की विशेपताओ, पद्धति की नवीनता, अभिनयात्मकता तथा समस्या ( नारीसमस्या )-युक्तता पर प्रकाश डाला गया है। अन्त मे नाटकगत रस का अध्ययन किया गया है।

सातवें अध्याय 'अन्य रूपक' मे 'एक घूट', 'विशाख', 'कामना' तथा 'जनमेजय का नागयज्ञ' का (इतिहास, चरित्राकन, देशकाल आदि की दृष्टि से) शास्त्रीय अध्ययन किया गया है।

आठवा अध्याय उपसहार के रूप मे लिखा गया है। इस अध्याय मे कथानक, पात्र, सवाद, रस, देशकाल, गान, अभिनेयता, भाषा-शैली, आधुनिकता, दार्शनिक विचारधारा, तथा भारतीय एव पाश्चात्य शैली की दृष्टि से प्रसाद की नाट्यकला का व्यापक अध्ययन किया गया है।

## २१. विहारी भाषाओ की उत्पत्ति और विकास

[ १९४३ ई० ]

श्री नलिनी मोहन सान्याल को उनके प्रबन्ध 'विहारी भाषाओ की उत्पत्ति और विकास' पर सन् १९४३ ई० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे डी० फिल० की उपाधि प्राप्त हुई।

## २२. वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियो (विशेषकर परमानन्ददास और नन्ददास) का अध्ययन

[ १९४४ ई० ]

श्री दीनदयालु गुप्त को उनके प्रबन्ध 'वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियो (विशेषकर परमानन्ददास और नन्ददास) का अध्ययन' पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् १९४४ ई० मे डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की। इस प्रबन्ध का प्रकाशन हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग से स० २००४ मे हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध दो भागो मे विभक्त है। प्रथम भाग मे चार और द्वितीय भाग मे तीन अध्याय हैं। पहला अध्याय पृष्ठभूमि के रूप मे लिखा गया है। इस अध्याय मे सबसे पहले अष्टछाप-काव्य की जन्मस्थली व्रजभूमि का भौगोलिक परिचय दिया गया है। इसके बाद तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक अवस्थाओ का विवरण देते हुए अष्टछाप-काव्य की पृष्ठभूमि निर्दिष्ट की गयी है। तदनन्तर विष्णुस्वामी, निम्बार्क, माध्व, चैतन्य, राधावल्लभीय, हरिदासी, वल्लभ आदि सम्प्रदायो एव उनके आचार्यों (मुख्य रूप से वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रसारको) का सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

दूसरे अध्याय 'अध्ययन के सूत्र' मे अष्टछाप-कवियो की जीवनी तथा रचनाओ के अध्ययन की आधारभूत सामग्री और अष्टछाप-काव्य मे कवियो की जीवनी तथा रचना के आत्मविषयक उल्लेख पर विचार किया गया है। इसके बाद प्राचीन बाह्य आधार के रूप मे कवियो की जीवनी से सम्बद्ध साहित्य तथा इतिहास-ग्रन्थो और जन-श्रुतियो का अनुशीलन किया गया है। आधुनिक बाह्य आधारो की प्रामाणिकता एव महत्ता सदिग्ध है, फिर भी गौण सामग्री के रूप मे उसकी भी उपयोगिता है। अतएव उस सामग्री का भी अपेक्षित अध्ययन किया गया है।

तीसरा अध्याय अष्टछाप कवियो के जीवन-चरित से सम्बद्ध है। इस अध्याय मे गुप्तजी ने अत्यन्त अध्यवसायपूर्वक सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी की जीवन-वृत्त-विषयक उपलब्ध समस्त सामग्री का गवेषणापूर्ण अध्ययन करके उनका प्रामाणिक जीवनवृत्त प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ अध्याय मे अष्टछाप कवियो के ग्रन्थो का निर्धारण किया गया है।

अष्टछाप के इन कवियो के नाम पर अनेक पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। इनमे से कुछ रचनाए तो इनके द्वारा लिखी ही नहीं गयी और कुछ अनुपलब्ध हैं। इस अध्याय मे अष्टछाप-कवियो के ग्रन्थो की प्रामाणिक परीक्षा करते हुए उनका निर्णय किया गया है।

पाचवें अध्याय मे अष्टछाप कवियो के दार्शनिक विचारो का उपस्थापन किया गया है। इस अध्याय मे सबसे पहले शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद अथवा पुष्टिमार्ग का परिचय दिया गया है। इसके उपरान्त ब्रह्म, जीव, जगत् का स्वरूप, माया, मोक्ष, गोलोक, गोकुल अथवा वृन्दावन (निजधाम), रास तथा गोपी आदि शीर्षको के अन्तर्गत सम्प्रदाय के मुख्य सिद्धान्त प्रस्तुत करके अष्टछाप के कवियो के दार्शनिक विचारो की विवेचना की गयी है।

छठा अध्याय 'भक्ति' का है। इस अध्याय मे पहले वल्लभाचार्य जी की पुष्टि-भक्ति पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् श्री विट्ठलनाथ के समय मे वल्लभ सम्प्रदाय की भक्ति का अध्ययन किया गया है, तब अष्टछाप भक्ति का विस्तृत निरूपण किया गया है। इसके बाद भक्तिरस का शास्त्रीय विवेचन किया गया है। भक्ति के विविध भावो (भक्ति के प्रकारो) की विवेचना की गयी है। इसी अध्याय मे विस्तार से अष्टछाप के कवियो की भक्ति का अनुशीलन नारदभक्तिसूत्र के प्रकाश मे किया गया है। अन्त मे अष्टछाप-भक्ति की अन्य विशेषताओ का अनुसन्धान किया गया है।

सातवें अध्याय मे परमानन्ददास और नन्ददास के काव्य-प्रयास की (काव्यकौशल, भाषाशैली और छन्द आदि की दृष्टि से) विशद समीक्षा की गयी है। परिशिष्ट मे सोरो मे प्राप्त नन्ददास की जीवनवृत्त-विषयक सामग्री भी सकलित कर दी गयी है।

## २३. मैथिली भाषा की रूपरचना

[१९४४ ई०]

श्री सुभद्र झा का प्रबन्ध 'मैथिली भाषा की रूपरचना' सन् १९४४ ई० मे पटना विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रबन्ध मे सोलह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे प्रस्तावना है। उसमे

मैथिली और उसके नाम, क्षेत्र, सीमा, उपबोलिया तथा उनके क्षेत्र, विशेषताए, कतिपय आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के साथ मैथिली की तुलना, उनमे मैथिली के स्थान, मैथिली के उद्भव, महत्व, बोलने वालो की सख्या, मैथिली साहित्य, अध्ययन की सामग्री, मैथिली के विकास के तीन कालो, मैथिली की लिपि, प्रस्तुत अध्ययन की सीमाओ आदि पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय के दो परिशिष्टो मे मैथिली की विभिन्न उपबोलियो के उद्धरण एव बगला और मैथिली लिपि की तुलासारणी भी दे दी गयी है। दूसरे अध्याय मे स्वरो, तीसरे अध्याय मे व्यजनो, चौथे अध्याय मे उपसर्ग-प्रत्ययो, पाचवे अध्याय मे सज्ञाओ के रूपो, छठे अध्याय मे विशेषणो, सातवें अध्याय मे सख्यावाचक विशेषणो, आठवें अध्याय मे सर्वनामो, नवे अध्याय मे क्रियारूपो, दसवें अध्याय मे क्रिया-विशेषणो, ग्यारहवें अध्याय मे सयोजक अव्ययो और बारहवे अध्याय मे विस्मयादिबोधक अव्ययो का अध्ययन किया गया है।

तेरहवें अध्याय मे द्वित्तको (सज्ञाओ, विशेषणो, सर्वनामो, क्रियाओ, क्रिया-विशेषणो, सख्यावाचक विशेषणो, विस्मयादिबोधक अव्ययो, प्रतिध्वनि शब्दो तथा समस्त शब्दो और वाक्यो) का अनुशीलन है। चौदहवें अध्याय मे बलात्मक रूपो की मीमासा है। पद्रहवें अध्याय मे कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सामानाधिकरण्य, क्रिया, धातुसाधित विशेषण, शब्दक्रम, अन्वय, वाक्याश, मुहावरा आदि शीर्षको के अन्तर्गत वाक्य-विज्ञान की दृष्टि से मैथिली की समीक्षा की गयी है।

सोलहवें अध्याय मे अर्थविज्ञान की दृष्टि से मैथिली का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय के प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार हैं —विशिष्टीकरण, भेदीकरण, अर्थापकर्ष, अर्थोत्कर्ष, मूर्तीकरण और अमूर्तीकरण, अर्थ-सकोच, अर्थ-विस्तार, रूपक, अनेकार्थता, समस्त सज्ञाए, नामकरण, शब्दो के प्रयोग मे शिथिलता आदि। अन्त मे मैथिली के उन शब्दो की एक सूची भी दे दी गयी है जिनमे अर्थ-परिवर्तन हुआ है।

## २४. विहार के सन्तकवि दरियासाहव
### [१९४४ ई०]

श्री धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी को 'विहार के सन्तकवि दरियासाहव' का अध्ययन प्रस्तुत करने पर पटना विश्वविद्यालय ने सन् १९४४ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। उनका यह प्रवन्ध 'सन्तकवि दरिया एक अनुशीलन' के नाम मे सन् १९५४ ई० मे विहार राष्ट्रभापा परिपद्, सम्मेलन भवन, पटना-३ मे प्रकाशित हुआ।

यह प्रवन्ध पाच खडो मे विभक्त है। प्रथम खड मे चार परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद मे दरियासाहव का जीवनचरित्त दिया गया है। द्वितीय परिच्छेद मे मध्यकालीन सुधारकों मे दरियासाहव का स्थान निर्धारित किया गया है। तृतीय परिच्छेद मे दरियापथ की व्यापकता, मदस्यता, रीति-रस्म, मठो आदि का वर्णन है। चतुर्थ परिच्छेद मे दरियासाहव की रचनाओ का मक्षिप्त परिचय है।

दर्शन और अध्यात्म-विपयक द्वितीय खड मे अठारह परिच्छेद है। प्रथम परिच्छेद मे सतमत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि स्पप्ट की गयी है। द्वितीय परिच्छेद मे दरियासाहव के अनुसार सत्पुरुप के नाम, नाममहिमा, निर्गुण और निर्गुण-रुप, विभूतिया, सर्वव्यापकता, मूर्तिपूजा की निन्दा, जगत् की अनेकता मे सत्पुरुप की एकता, ईश्वर-अश आत्मा, अद्वैतवाद आदि का निरूपण है। तृतीय परिच्छेद मे जीव का, चतुर्थ परिच्छेद मे शरीर का, पचम परिच्छेद मे पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धान्त का, पष्ठ परिच्छेद मे मुक्ति का, सप्तम परिच्छेद मे स्वर्ग और नरक का, अष्टम परिच्छेद मे पिपीलकयोग और विहगमयोग का, नवम परिच्छेद मे दिव्य दृष्टि का, दशम परिच्छेद मे सृष्टि-विज्ञान का, एकादश परिच्छेद मे माया का, द्वादश परिच्छेद मे ज्ञान और भक्ति का, त्रयोदश परिच्छेद मे सत्पुरुप और गुरु के प्रति प्रेम का विवेचन है। चतुर्दश परिच्छेद मे दरियापथ के अनुसार आत्मा-नुशासन के मुख्य नियमो (सत्यवादिता, निष्कपटता, मद्यादिपरिहार, अहिंसा, इन्द्रियनिरोध, निरहकारता, स्वयमारोपित निर्धनता) की व्याख्या है। पचदश परिच्छेद मे मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, जातपात और साम्प्रदायिकता, वेद और कुरान, 'भेख' और 'कर्मकाड', तथाकथित योग आदि से सम्वन्ध रखने वाले ग्रन्थ-विश्वासो, दुराग्रहो, निरर्थक रीति-रस्मो के विरोधी (दरियासाहव के) विचारो की चर्चा है। पोडश परिच्छेद मे सत और सत्सग, सप्तदश परिच्छेद मे सद्गुरु

और शब्द तथा अष्टादश परिच्छेद मे स्वरोदय का (दरियासाहब के अनुसार) अध्ययन है।

तृतीय खड मे तीन परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद मे कबीर और दरिया का तुलनात्मक दिग्दर्शन है। द्वितीय परिच्छेद मे तुलसीदास और दरियासाहब ('रामचरितमानस' और 'ज्ञानरत्न') का तुलनात्मक अध्ययन है। तृतीय परिच्छेद मे कथावस्तु और काव्यवस्तु, भावविन्यास (रस, चरित्र-चित्रण, वर्णनात्मक प्रतिभा, कल्पनोत्कर्ष), भाषासौष्ठव और रचनाशैली शीर्षको के अन्तर्गत दरिया साहब के कवित्व की आलोचना है।

चतुर्थ खड के चार परिच्छेदो मे दरियासाहब की भाषा (वर्णविन्यास, ध्वनि और ध्वनि-प्रक्रिया, शब्दावृत्ति एव वाक्य-विन्यास) का अनुशीलन किया गया है। पचम खड मे मूल ग्रन्थो से उद्धरण भी दे दिये गये हैं।

## २५. सूरदास—जीवनी और कृतियों का अध्ययन

[१९४५ ई०]

प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् १९४५ ई० मे श्री ब्रजेश्वर वर्मा को उनके अनुसन्धान-ग्रन्थ 'सूरदास—जीवनी और कृतियो का अध्ययन' पर उन्हें डी० फिल० का उपाधि प्रदान की। हिन्दी-परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया। इसका दूसरा सस्करण सन् १९५० ई० मे प्रकाशित हुआ। दूसरे सस्करण मे कुछ अध्यायो की सामग्री मे थोडे-बहुत परिवर्द्धनो के साथ क्रम-परिवर्तन भी किया गया। अनेक स्थलो पर तुलनात्मक अध्ययन, उद्धरण आदि भी जोडे गये। और इस प्रकार ग्रन्थ को अधिक परिपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे तेरह अध्याय हैं। पहले अध्याय मे सूरदास के जीवनवृत्त (सूरदास के समय, नाम, जाति, वश, स्थान आदि) का सक्षिप्त निरूपण करके सूर-सम्बन्धी अध्ययन की सामग्री (सूरदास की रचनाओ, वार्ताओं, भक्तमाल, भक्तनामावली आदि अनेक ग्रन्थो) की परीक्षा की गयी है। दूसरे अध्याय में सूरदास की प्रामाणिक कृतियो—'सूरसागर', 'सूरसागर सारावली', एव 'साहित्य लहरी'—का आलोचनात्मक अनुशीलन किया गया है। तीसरे अध्याय

मे सामयिक परिस्थितियो पर विचार करके सूरदास की भक्ति की समीक्षा की गयी है। चौथे अध्याय मे सूरदास के इष्टदेव, उनके निर्गुण और सगुण रूपो, उनके भक्त-वात्सल्य आदि गुणो, उनकी शक्तिरूपा राधा आदि का विवेचन किया गया है। पाचवे अध्याय की आलोच्य वस्तु सूर का भक्तिधर्म है। इसके अन्तर्गत भक्ति की महत्ता और उसके स्वरूप की विवृति करके भक्ति के साधनो और फल का निरूपण किया गया है। छठे अध्याय मे सूर के काव्य मे अभिव्यक्त भक्ति के पाच प्रकारो—शात, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य—की व्याख्या की गयी है। सातवें अध्याय के तीन विभागो मे सूर के काव्य मे विन्यस्त वस्तु का अध्ययन किया गया है। पहले विभाग मे स्फुटपद-गत राम-कृष्ण-विषयक वस्तु तथा दूसरे विभाग मे खण्ड-कथानको की कथावस्तु की विवेचना की गयी है। तीसरे विभाग मे सूर के काव्य मे अकित कृष्णचरित का व्यापक पर्यवेक्षण है। आठवें अध्याय मे सूरदास के प्रधान पात्रो (कृष्ण, बलराम, राधा, यशोदा और नन्द) के चरित्र-चित्रण का विश्लेषण है। नवें अध्याय मे यशोदा की सखियो, रोहिणी, देवकी, चन्द्रावली आदि स्त्रियो के स्वभाव, बालको की प्रकृति एव वसुदेव, अक्रूर, उद्धव आदि पुरुषो के स्वभाव का अध्ययन है। दसवें अध्याय मे सूर की भावानुभूति और उनके भाव-चित्रण की समालोचना है। निर्वेद, दास्य, वात्सल्य, सख्य और शृगार से सम्बन्ध रखने वाले भावो तथा सूर के काव्य मे उनकी रमणीय अभिव्यजना का अनुशीलन है। ग्यारहवे अध्याय मे मानव, प्रकृति और समाज के विविध रूपो का चित्र अकित करने मे सूर ने जिस सौन्दर्यानुभूति और वर्णन-वैचित्र्य का परिचय दिया है, उसका विश्लेषण किया गया है। बारहवें अध्याय मे सूर की कल्पना-सृष्टि और अलकार-विधान का विवेचन है। अन्तिम अध्याय मे उनकी भाषा-शैली और छन्दोविधान की (विविध दृष्टियो से) आलोचना की गयी है।

## २६. भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति और विकास

[१९४५ ई०]

श्री उदयनारायण तिवारी को उनके शोध-प्रबन्ध 'भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति और विकास' पर प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् १९४५ ई० मे डी०-लिट्० की उपाधि प्राप्त हुई। मूल प्रबन्ध अगरेजी मे लिखा गया था। उसका हिन्दी

अनुवाद करते समय लेखक ने भोजपुरी-सम्बन्धी नवीनतम गवेषणाओ से उपलब्ध सामग्री का समावेश करके मूल प्रबन्ध मे परिवर्तन और परिवर्द्धन भी किया। ग्रन्थ को अधिक उपयोगी बनाने के लिए भोजपुरी-साहित्य-विषयक अध्ययन भी जोड दिया गया। इस प्रकार परिवर्तित और परिवर्धित ग्रन्थ 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' के नाम से सन् १९५४ ई० मे विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के आरम्भ मे दो सौ सत्ताइस पृष्ठो का 'उपोद्घात' है जिसमे ससार की भाषाओ और विशेषकर आधुनिक आर्यभाषाओ का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी का सक्षिप्त विवेचन करके हिन्दी की ग्रामीण बोलियो का भाषावैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। मुख्य ग्रन्थ दो खण्डो मे विभाजित है। प्रथम खण्ड मे दो अध्याय हैं। पहले अध्याय मे भोजपुरी के नामकरण, सजीवता, उसमे साहित्य के अभाव, उसके विस्तार, उसकी बोलियो, शब्दकोश, भोजपुरी सस्कृति तथा भाषाभाषियो की विचार-चर्चा है। दूसरे अध्याय मे कबीर, धरमदास, शिवनारायण, धरनीदास और लक्ष्मी सखी की भोजपुरी रचनाओ, भोजपुरी के लोकगीत-सग्रहो तथा बिसराम, तेगअली, रामकृष्ण वर्मा, दूधनाथ उपाध्याय, रघुवीर नारायण, भिखारी ठाकुर, मनोरजन प्रसाद सिनहा, रामविचार पाडेय, प्रसिद्ध नारायणसिंह, श्याम बिहारी तिवारी, चचरीक, रणधीरलाल श्रीवास्तव, स्वामी जगन्नाथदास और अशान्त—इन आधुनिक कवियो एव फुटकर पद्य-पुस्तिकाओ का अध्ययन-परिचय है। अध्याय के अन्त मे भोजपुरी गद्य, विशेषकर नाटको की चर्चा है।

द्वितीय खण्ड मे भोजपुरी व्याकरण का अनुशीलन है। इस खण्ड के दो विभाग हैं। प्रथम विभाग के दस अध्यायो मे ध्वनि-तत्व की विवेचना की गयी है। पहले अध्याय मे भोजपुरी ध्वनियो (व्यजनो और स्वरो) का, दूसरे अध्याय मे प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के स्वरो के भोजपुरी मे परिवर्तन का, तीसरे अध्याय मे आदि स्वरो का, चौथे अध्याय मे शब्द के मध्य के स्वरो का, पाचवें अध्याय मे भोजपुरी के भीतरी स्वरो की अक्षुण्णता का, छठे अध्याय मे सम्पर्क-स्वरो का, सातवें अध्याय मे स्वरागम का, आठवें अध्याय मे भोजपुरी स्वरो की उत्पत्ति का, नवें अध्याय मे प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के व्यजन-परिवर्तन के सामान्य रूपों का तथा दसवें अध्याय मे भोजपुरी व्यजनो की उत्पत्ति का अध्ययन किया गया है।

द्वितीय विभाग के सात अध्यायो मे भोजपुरी भाषा के रूप-तत्व की विवेचना

है। पहले अध्याय मे भोजपुरी के प्रत्यय उपसर्गों का, दूसरे अध्याय में समास-रचना का, तीसरे अध्याय मे संज्ञा-रूपो का, चौथे अध्याय मे विशेषणो का, पाचवें अध्याय मे सर्वनामो का, छठे अध्याय मे क्रियापदो का और सातवें अध्याय मे अव्ययो का अध्ययन है। परिशिष्ट मे भोजपुरी के दो सोहर, कुछ पुराने कागजपत्र और आधुनिक भोजपुरी के विविध रूपो के उद्धरण भी दे दिये गये हैं जो भोजपुरी भाषा के स्वरूप और प्रवृत्ति को समझने मे सहायक हैं।

## २७. हिन्दी अर्थ-विज्ञान

[१९४५ ई०]

डा० हरदेव बाहरी का प्रबन्ध 'हिन्दी अर्थविज्ञान' सन् १९४५ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे भूमिका के अतिरिक्त कुल दस अध्याय हैं। भूमिका मे अर्थविज्ञान के अर्थ और उसके महत्त्व को स्पष्ट करते हुए विषय के विस्तार और अध्ययन के स्रोतो पर प्रकाश डाला गया है।

पहले अध्याय का सम्बन्ध 'ध्वनि और अर्थ' से है। प्रारम्भ मे दोनो के सम्बन्ध का तात्त्विक विवेचन है। फिर ध्वनि के अर्थ और ध्वन्यर्थव्यंजना को स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है।

दूसरे अध्याय मे अर्थ के विकास का विवेचन है। इसमे उपसर्ग तथा प्रत्यय जनित विस्तार पर भी विचार किया गया है। साथ ही अर्थपरिवर्तन के लिए होने वाले ध्वनिपरिवर्तनो पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने अर्थविज्ञान के संदर्भ मे विभिन्न प्रकार की सामासिक तथा अन्य सन्धियो का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

तीसरा अध्याय 'अनेकार्थता' का है। इस अध्याय में दो खंड हैं। अनेकार्थता तथा अनेकार्थक शब्दो के वर्गीकरण के पश्चात् अर्थाधिक्य पर प्रकाश डालते हुए अनेकार्थता के मूलभूत कारणो की विवेचना की गयी है। इसी खंड मे समध्वनीय भिन्नार्थक दिखाई पडने वाले शब्दो का भी अध्ययन है जिनसे इन दोनो का मौलिक अन्तर स्पष्ट हो जाता है। अन्त मे शब्दश्लेष पर विचार किया गया है।

दूसरे खड मे अनेकार्थता के कारण किसी भाषा के शब्द-समूह की सम्पन्नता, उसके कारण उद्भूत अस्पष्टता, शब्द-मृत्यु, अर्थ-दूषण एव नवनिर्मित शब्दरूप मे भाषा पर पडने वाले अनेकार्थता के प्रभावो का सम्यक् मूल्याकन किया गया है।

चौथा अध्याय समानार्थी तथा पर्यायवाची शब्दों का है। इसमे समानार्थी शब्दो की प्रकृति का विवेचन करते हुए लेखक ने उनके विभिन्न स्रोतो की छान-बीन की है। साथ ही इस श्रेणी के शब्दो को किस प्रकार के उत्थान-पतन देखने पडते हैं—इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

पाचवें अध्याय का सम्बन्ध अर्थसम्बन्धी विभिन्नता के लिए आवश्यक परिस्थितियो या शर्तो से है। यहा इन्हे तीन भागो मे बाटा गया है—मनोवैज्ञानिक, तार्किक और आकृतिक या भाषातात्विक। अन्त मे इन तीनो का सम्यक् विवेचन भी किया गया है।

छठे अध्याय मे अर्थ की महत्वपूर्ण विभिन्नताओ पर प्रकाश डाला गया है। आरम्भ मे इनका वर्गीकरण है और फिर 'सकोचीकरण' 'सामान्यीकरण' 'अर्थादेशीकरण' तथा परिवर्तन की अनेकता का विवेचन किया गया है।

सातवें अध्याय का सम्बन्ध भाषा के विभिन्न प्रकार के प्रयोगो और मुहावरो के अर्थवैज्ञानिक अध्ययन से है। आरम्भ मे लेखक ने प्रयोगो और मुहावरो का ऐतिहासिक विकास दिखलाते हुए भावाभिव्यक्ति आदि की दृष्टि से उनके महत्व का मूल्याकन किया है। सामान्य विवेचन के बाद हिन्दी-मुहावरो को लिया गया है। पहले उनकी प्रकृति का अध्ययन है, फिर उन आधारो की गहराई से छानबीन की गयी है जिनपर हिन्दी मुहावरे आधृत हैं। अन्त मे लेखक ने हिन्दी के मुहावरो के अर्थविज्ञान पर आधृत वर्ग बनाये हैं। इसी अध्याय मे लोकोक्तियो को भी लिया गया है और उनका अर्थविज्ञान की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

आठवें अध्याय मे भाषा के आलकारिक प्रयोग की सामान्य प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराते हुए हिन्दी के आलकारिक प्रयोगो की विवेचना की गयी है।

नवें अध्याय में व्याकरण के सभी रूपो की अर्थविज्ञान की दृष्टि से व्याख्या है। आरम्भ मे 'रूप' और 'अर्थ' पर प्रकाश डाला गया है। फिर सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, उपसर्ग, सयोजक, विस्मयादिबोधक, क्रिया आदि को अलग-अलग लेकर उनकी विवेचना है।

दसवें अध्याय मे वाक्यगठन के सदर्भ मे अर्थ का अध्ययन है। पहले वाक्य-

विज्ञान का निरूपण है। आगे चलकर सदर्भ के महत्व पर प्रकाश डालते हुए वाक्य के विभिन्न रूपो को लिया गया है। इस अध्याय मे वाक्य मे शब्दक्रम पर भी विचार किया गया है और अन्त मे वाक्यगठन के परिवर्तन के ध्वन्यात्मक माध्यमो (फ़ॉनेटिक मीन्स) का अध्ययन है।

## २८. ऋषि बरकत उल्लाह पेमी कृत 'पेम प्रकाश' का अनुसन्धान, सम्पादन और अध्ययन
### अथवा
## हिन्दी साहित्य को शाह बरकत उल्लाह की देन
### [१९४५ ई०]

( स्व० ) श्री लक्ष्मीधर शास्त्री को उनके शोधप्रबन्ध 'हिन्दी साहित्य को शाह बरकत उल्लाह की देन' पर पजाब विश्वविद्यालय से सन् १९४५ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। कुछ विद्वानो ने बतलाया कि डॉक्टरेट के लिए स्वीकृत प्रबन्ध था 'ऋषि बरकत उल्लाह पेमी कृत 'पेम प्रकाश' का अनुसन्धान, सम्पादन और अध्ययन।' अग्रेजी मे प्रकाशित ग्रन्थ का शीर्षक है 'शाह बरकत उल्लाम' कन्ट्रिब्यूशन टु हिन्दी लिटरेचर।' इसका प्रकाशन सन् १९४९ ई० मे हुआ। प्रकाशक हैं इण्डियन पब्लिशिंग हाउस, नई सडक, दिल्ली। मुद्रित ग्रन्थ की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि शोध का मुख्य विषय 'पेम प्रकाश' दो लिपियो (देवनागरी और फारसी) मे छपा है। पेमी जी की दूसरी कृति 'अवारिफ़े हिन्दी' की हिन्दी कहावतो पर उनकी फारसी टिप्पणी भी (सक्षेप मे) ग्रन्थ के अन्त मे फारसी लिपि मे मुद्रित की गयी है।

प्रस्तुत प्रबन्ध सूफी कवि बरकत उल्लाह पेमी के सात ग्रन्थो (मसनवीरियाजे इश्क, दीवाने इश्की, तरजी बन्द, पेम प्रकाश, चहार अनवा नसायह, रिसाला सवालो जवाब तथा रिसाला अवारिफ़े हिन्दी) के अध्ययन पर आधृत है। इनमे पेमी जी के दो हिन्दी ग्रन्थो 'पेम प्रकाश' और 'रिसाला अवारिफ़े हिन्दी' का तो विस्तृत अध्ययन किया गया है परन्तु अन्य (फ़ारसी) कृतियों मे यत्र-तत्र बिखरे हुए हिन्दी उद्धरणो का सग्रह करके उनकी सक्षिप्त विचारचर्चा की गयी है। सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन खडो मे विभाजित है—सामान्य प्रस्तावना, प्रथम भाग

श्रीर द्वितीय भाग । प्रस्तावना मे शाह् वरकत उल्लाह् की परिस्थितियो, उनकी कविता के गुणो, उनके गद्य के प्रभाव श्रौर हिन्दी भाषा तथा साहित्य को उनकी देन का श्रध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

प्रथम भाग मे 'पेम प्रकाश' का सम्पादन है । इस भाग मे तेरह परिशिष्ट भी हैं । (१) 'पेम प्रकाश' की सूक्तिया । (२) शाह् वरकत उल्लाह् की फारसी कृतियो से उद्धरण । (३) उनकी कविता मे प्रतीकवाद । (४) हिन्दू-मुस्लिम-एकता सम्बन्धी उद्धरण । (५) कुछ श्रन्य उद्धरण । (६) फारसी लेखको के उद्धरण । (७) शाह् वरकत द्वारा उद्धृत नाम श्रौर उक्तिया । (८) सूफी लेखको के उद्धरण । (९) कुरान से उद्धरण । (१०) जायसी से तुलना । (११) 'पेम प्रकाश' का श्रगरेज़ी रूपान्तर । (१२) पेम प्रकाश के कुछ शब्दो की व्युत्पत्ति । (१३) इब्राहिम पर एक नोट ।

द्वितीय भाग का प्रतिपाद्य विषय 'श्रवारिफे हिन्दी' है । श्रारम्भ मे प्रस्तावना है । तदनन्तर शाह् वरकत की कहावतों में श्रभिव्यक्त नैतिक एव श्राध्यात्मिक उपदेशो का साराश प्रस्तुत किया गया है । उसके वाद हिन्दी कहावतों के श्रग्रेज़ी श्रनुवाद श्रौर लेखक की फारसी टीका दी गयी है । शोधकर्त्ता ने उस टीका पर श्रपनी व्याख्यात्मक टिप्पणिया भी दी है । इस भाग के श्रन्य विषय इस प्रकार हैं—दार्शनिक दृष्टि से व्याख्यात १९८ कहावतें, 'श्रवारिफे हिन्दी' की कहावतो का सस्कृत रूपान्तर श्रौर कहावतो की व्याख्या मे सहायक हिन्दी, फारसी तथा श्ररवी के उद्धरण ।

## २९. हिन्दी-साहित्य श्रौर उसकी सांस्कृतिक भूमिका (१७५७—१८५७)

[१९४६ ई०]

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय को उनके प्रवन्ध 'हिन्दी-साहित्य श्रौर उसकी सास्कृतिक भूमिका' पर प्रयाग विश्वविद्यालय से १९४६ ई० मे डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त हुई । हिन्दी-परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय ने इसका प्रकाशन 'श्राधुनिक हिंदी-साहित्यकी भूमिका (१७५७-१८५७ ई०)' के नाम से १९५२ ई० में किया ।

प्रस्तुत प्रबन्ध तीन खण्डो मे विभक्त है। ये तीन खण्ड भी बारह अध्यायो मे विभाजित किये गये हैं। सर्वप्रथम, विषय-प्रवेश मे आलोच्यकाल के साहित्य और उसकी विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है। इस काल से सम्बद्ध सामग्री की चर्चा करते हुए प्रस्तुत अध्ययन के महत्व और मौलिकता का निर्देश किया गया है।

पहला खण्ड 'पीठिका' है। इसमे चार अध्याय हैं। पहले अध्याय मे हिन्दी-प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन किया गया है। अनुसधाता ने हिन्दी-प्रदेश के उपभागो की भौगोलिक स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए साहित्य पर उसका प्रभाव निरूपित किया है। दूसरे अध्याय मे आलोच्यकाल के पूर्ववर्ती युग और साहित्य (१०५७–१८५७ ई०) का परिचय दिया है। तीसरे अध्याय मे आलोच्यकालीन जीवन की सामान्य परिस्थितियो पर विचार किया है। इस क्रम में तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियो का विशद विवेचन किया गया है। चौथे अध्याय मे हिन्दी-प्रदेश पर अंग्रेजो के प्रभाव का अनुशीलन किया गया है। इस विषय मे अध्येता का मत है कि भारत-यूरोपीय सम्पर्क का कोई अच्छा परिणाम दृष्टिगोचर नही हुआ। कम्पनी के प्रति भारतीयो के मन मे घृणा की भावना उत्पन्न हुई, अंग्रेजो ने भी कला और साहित्य को आश्रय नही दिया।

दूसरा खण्ड 'साहित्यिक प्रतिक्रिया' है इसमे दो अध्याय (५-६) हैं। पहले सक्षेप मे जीवन की परिस्थितियो और साहित्य मे सम्बन्ध निर्दिष्ट किया गया है। इसके बाद पाचवे अध्याय मे कविता की पृष्ठभूमि का विवेचन किया गया है। इस विषय मे लेखक का मत है कि इस काल मे कुछ अपवादो को छोड़कर प्राय अराजकता और विशृंखलता के बीच नवीनता का अभाव मिलता है। इसके बाद वीर-काव्य का अध्ययन किया गया है। तदनन्तर भक्ति-काव्य का विस्तृत विवेचन है। तब रीति और शृगार काव्य का अनुशीलन हुआ है। इस काल के रीति-साहित्य पर विचार करते हुए रीति-सम्बन्धी कुछ प्रमुख रचनाओं का सक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। रीति-साहित्य के आधार, सास्कृतिक महत्व आदि का प्रतिपादन है। इसी अध्याय मे नीति-काव्य का भी पर्यालोचन है, मुख्य रूप से यह आलोचना दीनदयालगिरि पर केन्द्रित है। अन्त मे भाषा, छन्द, रस, संग्रह-ग्रथ आदि विविध विषयो की विवेचना है। छठे अध्याय मे आलोच्य काल के गद्य-साहित्य का अध्ययन उसकी तीन परम्पराओ—ब्रजभाषा, राजस्थानी और खड़ी बोली के अन्तर्गत किया गया है।

तीसरे खण्ड 'खडीबोली-गद्य का विकास' मे छ अध्याय (७–१२) हैं। सातवें अध्याय मे ईस्ट इन्डिया कम्पनी की भाषा-नीति का स्पष्टीकरण है। अध्येता का मत है कि कम्पनी ने हिन्दुस्तानी या उर्दू का आश्रय लिया और काफी विचार-वितर्क के बाद देवनागरी लिपि को मान्यता दी। आठवें अध्याय मे फोर्ट विलियम कालेज (१८००–१८५४ ई०) ने हिन्दी-साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया—यह दिखाया गया है। उदाहरण देकर सिद्ध किया गया है कि प्राइस ने कालेज की उर्दू को प्रश्रय देने की नीति मे परिवर्तन किया और हिन्दुस्तानी के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया। नवें अध्याय मे कालेज के पडितो (लल्लूलाल और सदल मिश्र) पर विचार किया गया है। दसवें अध्याय का प्रतिपाद्य है—नवीन शिक्षा और खडीबोली-गद्य। ग्यारहवें अध्याय मे हिन्दी-पत्रकला तथा साहित्य के अन्य रूपो के विकास का अध्ययन उपस्थित किया गया है। अन्त मे ग्रथ का उपसहार करते हुए आलोच्य काल के महत्व पर प्रकाश डाला गया है—'आलोच्यकालीन गद्य हिन्दी-साहित्य मे नवयुग की अवतारणा करता है।'

## ३०. हिन्दी-काव्य में रहस्यात्मक प्रवृत्तियां (१४०० से १७०० ई० तक)

### [१९४६ ई०]

श्री ब्रजमोहन गुप्त को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी काव्य मे रहस्यात्मक प्रवृत्तिया (१४०० से १७०० ई० तक)' पर सन् १९४६ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय ने डी० फिल० की उपाधि प्रदान की। मूल प्रबन्ध अग्रेजी मे लिखा गया था। इस प्रबन्ध का सक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर इसी नाम से गौतम साहित्य निकेतन, दिल्ली, ने प्रकाशित किया।

सर्वप्रथम भूमिका में वैदिक काल से १७वी शती पर्यन्त हिन्दू धर्म के विकास का सिहावलोकन किया गया है। शाडिल्य और नारद के भक्तिसूत्रो का अध्ययन करने के अनन्तर शकराचार्य, रामानुजाचार्य तथा वल्लभाचार्य के दार्शनिक वादो का भी सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

पहले अध्याय मे रहस्यवाद के अर्थ का विवेचन किया गया है। रहस्यवाद

को समस्त धर्मों का मूलाधार प्रतिपादित किया गया है। रहस्यवाद की विभिन्न विद्वानो द्वारा विभिन्न व्याख्याए की गयी है, इस अध्याय मे उन पर भी विचार किया गया है।

दूसरे अध्याय मे हिन्दी की काव्यगत रहस्य-भावना की पृष्ठभूमि का निर्देश किया गया है। नृत्य एव सगीत, चित्रकारी व मूर्तिकला तथा व्याकरण के अध्ययन के मूल मे रहस्यात्मक प्रवृत्तियो का अध्ययन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे लेखक ने कबीर की ईश्वर-विषयक धारणा, साधनापथ, गुरु, सुखो के प्रति अनासक्ति, नाम-सुमिरन, भगवत्कृपा आदि शीर्षको के अन्तर्गत हिन्दी के रहस्यवादी कवि कबीर के काव्य का अनुशीलन करते हुए रहस्यवादी प्रवृत्तियो को स्पष्ट किया है।

चौथे अध्याय मे जायसी की ईश्वर-सम्बन्धी धारणा पर विचार किया गया है। जायसी की पद्मावती ईश्वर का प्रतीक है। 'पद्मावत' मे वर्णित रहस्यवाद को स्पष्ट करते हुए गुरु, प्रेरणा, पथ के विघ्न, वैराग्य, तप और योग, प्रेम, विरह, एकाग्र और अनन्य निष्ठा, प्रेमपरिपूर्णता का परिणाम आदि तत्वो का विवेचन किया गया है।

पाचवें अध्याय मे रामभक्ति-काव्य मे रहस्यात्मक तत्वो का अनुशीलन किया गया है। इस सन्दर्भ मे तुलसीदास का विशेष अध्ययन किया गया है। ब्रह्म और जीव तथा माया के विषय मे तुलसी की विचारधारा का अध्ययन करते हुए तुलसी की अन्तरात्मा से परिचय प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

छठा अध्याय सूरदास पर लिखा गया है। सूर की ईश्वर-सम्बन्धी धारणा के अध्ययन मे सगुण और निर्गुण ब्रह्म की समस्या आती है। वस्तुत सूर परब्रह्म और कृष्ण की अभिन्नता मानते हैं। सूर के काव्य मे रहस्यवाद-विषयक अन्य तत्वो का भी विवेचन किया गया है।

सातवें अध्याय मे ईश्वर, आत्मा और उसके बन्धनो आदि की चर्चा करते हुए कुछ निष्कर्ष निकाले गये है।

परिशिष्ट मे रहस्यवाद और आधुनिक युग पर विचार किया गया है।

## ३१. रीतिकाल की भूमिका में देव का अध्ययन
[१९४६ ई०]

श्री नगेन्द्र नगाइच का प्रवन्व 'रीतिकाल की भूमिका मे देव का अध्ययन' सन् १९४६ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। उनका प्रवन्ध 'रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता' के नाम से गौतम बुक डिपो, नई सडक, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ। दूसरे सस्करण में इस ग्रन्थ के दोनो भाग अलग-अलग स्वतन्त्र पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुए। एक का नाम है 'रीतिकाव्य की भूमिका' और दूसरी का नाम है 'देव और उनकी कविता'। प्रकाशक हैं—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागज, दिल्ली।

'रीतिकाव्य की भूमिका' मे तीन अध्याय हैं। पहला अध्याय 'रीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' है। इस अध्याय मे तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियो और कला (स्थापत्य, चित्र तथा मूर्ति) की प्रवृत्तियो का अनुशीलन है।'

दूसरा अध्याय है 'रीतिकाव्य का शास्त्रीय आधार'। इस अध्याय में पहले रीतिकाल के आरम्भ पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् रस-सम्प्रदाय का अध्ययन है। इस प्रसग मे 'रस' शब्द का अर्थ और उसका क्रमिक विकास, रस-सम्प्रदाय का सक्षिप्त इतिहास, रस की परिभाषा, रस की स्थिति, उसका स्वरूप, 'भाव' की परिभाषा, मनोविकार और मनोवृत्ति का अन्तर, स्थायी भाव की मनोवैज्ञानिक स्थिति, रसो और भावो की सख्या आदि का विवेचन किया गया है और उसके आधार पर निष्कर्षो की स्थापना की गयी है। तदनन्तर अलकार-सम्प्रदाय का अध्ययन है। सम्प्रदाय का सक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय देते हुए अलकार की परिभाषा और धर्म, अलकार एव अलकार्य मे भेद, मनोवैज्ञानिक आधार, भारतीय और यूरोपीय अलकारशास्त्र तथा रसानुभूति मे अलकार का योग आदि बातो पर विचार किया गया है। तदनन्तर रीति-सम्प्रदाय की विचार-चर्चा की गयी है। सम्प्रदाय का सिंहावलोकन करके रीति की परिभाषा और स्वरूप, रीति और शैली में भेद, गुण और दोष की स्थिति तथा रस के सम्बन्ध आदि का अनुशीलन है। तत्पश्चात् इसी प्रकार वक्रोक्ति और ध्वनि सम्प्रदायों का ऐतिहासिक परिचय देकर उनका सैद्धान्तिक निरूपण किया गया है। अध्याय के अन्त मे नायिका-भेद पर भी विचार किया गया है।

तीसरे अध्याय मे 'रीति' की व्याख्या और रीतिकाव्य की मुख्य प्रवृत्तियो की विवेचना करते हुए रीतिकाव्य के साहित्यिक आधार का अध्ययन किया गया है।

'देव और उनकी कविता' प्रबन्ध का मुख्य भाग है। इसमे सात अध्याय हैं। पहले अध्याय मे देव-विषयक सामग्री का अनुसंधान एव उसकी परीक्षा की गई है। दूसरे अध्याय मे देव का जीवन-चरित दिया गया है। तीसरे अध्याय मे देव के ग्रन्थो की प्रामाणिकता, उनके रचनाक्रम तथा वर्णन-विषय पर विचार किया गया है।

चौथा अध्याय 'देव की कविता के विभिन्न पक्ष' है। इसमे देव की शृगारिक कविता, उनकी वैराग्य-भावना और तत्व-चिन्तन, देव का रीति-विवेचन, आचार्यत्व आदि विभिन्न पक्षो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पाचवें अध्याय मे देव की कला का विवेचन है। इस अध्याय मे पहले देव की चित्रण-कला तथा अभिव्यजना के प्रसाधनो पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् देव की भाषा और अन्त मे उनके छन्दोविधान का पर्यालोचन है।

छठे अध्याय मे देव और उनके पूर्ववर्ती सस्कृत तथा हिन्दी के कवियो का प्रभाव निरूपित किया गया है। साथ ही हिन्दी के परवर्ती कवियो (रीति-विवेचको, रीतिबद्ध तथा रीतिमुक्त कवियो) पर देव के प्रभाव का भी आकलन किया गया है।

सातवें अध्याय मे हिन्दी-काव्य मे देव का स्थान निर्धारित किया गया है। केशव, बिहारी, मतिराम और घनानद से देव की तुलना की गयी है। अनुसन्धाता की मान्यता है कि ये सभी कवि द्वितीय श्रेणी के है। और उनमे देव का स्थान उच्चतम है।

## ३२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

[१९४६ ई०]

पजाब विश्वविद्यालय ने श्री शिवनारायण वोहरा को उनके प्रबन्ध 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' पर सन् १९४६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

## ३३. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग
[१९४६ ई०]

मेरा प्रबन्ध 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग' सन् १९४६ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। इसका प्रकाशन लखनऊ विश्वविद्यालय ने सवत् २००८ मे किया।

इस ग्रंथ मे नौ अध्याय हैं। पहले अध्याय में परार्जित ज्ञान के आधार पर प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्य-जगत् मे पदार्पण करने के समय की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियो पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे व्यक्तिगत पत्रो, पत्र-पत्रिकाओ, द्विवेदी जी पर लिखित जीवनियो आदि के आधार पर द्विवेदी जी के चरित और चरित्र का निरूपण किया गया है। तीसरे अध्याय मे द्विवेदी जी के साहित्यिक सस्मरणो एव रचनाओ का सक्षिप्त विवरण है।

चौथे अध्याय मे द्विवेदी जी की कविता का, उनकी निजी काव्य-परिभाषा तथा काव्य के अन्य प्रचलित मानदडो के आधार पर, अर्थ (रस आदि), काव्य-विधान, छन्द, भाषा और विषय की दृष्टि से, अध्ययन किया गया है। पाचवा अध्याय 'आलोचना' है। इसमे द्विवेदी जी की आलोचना की छ पद्धतियो (आचार्य-पद्धति, टीका-पद्धति, शास्त्रार्थ-पद्धति, सूक्ति-पद्धति, खडन-पद्धति, लोचन-पद्धति) की विवेचना करके आलोचक द्विवेदी की देन का मूल्याकन किया गया है।

छठे अध्याय मे द्विवेदी जी के निवन्धो की आलोचना है। अध्याय के आरम्भ मे यह वतलाया गया है कि निवन्धकार द्विवेदी के निर्माता आलोचक और सपादक द्विवेदी हैं। तदनन्तर स्रोत, रूप, विषय, उद्देश्य, भाषा-शैली और व्यक्तित्व की दृष्टि से द्विवेदी जी के निवन्धो की समीक्षा की गयी है। अन्त मे निवन्धकार द्विवेदी की देन का मूल्याकन है।

सातवें अध्याय मे द्विवेदी जी के 'सरस्वती'-सम्पादन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सपादक द्विवेदी के आदर्श और सिद्धान्तो, उनके लेखक-निर्माण-कार्य, 'सरस्वती' की वस्तु-योजना, सपादकीय टिप्पणियों, पुस्तक-परीक्षा, चित्र और चित्रपरिचय, व्यग्य-चित्रो, मनोरजक रचनाओं, वालोपयोगी साहित्य, विषय-सूची, प्रूफ-सशोधन आदि के आधार पर द्विवेदी जी की सपादन-कला का विवेचन है।

आठवा अध्याय 'भाषा और भाषा-सुधार' है। इस अध्याय के आरम्भ मे द्विवेदी जी के भाषा-दोषो और उनके सुधार का अनुसधान करके द्विवेदी जी द्वारा किये गये दूसरो की भाषा के सुधारो का अध्ययन किया गया है। दूसरो की भाषा की ईदृशता क्या थी, उनकी भाषा का सुधार द्विवेदी जी ने किन-किन विभिन्न उपायो या प्रकारो और कितनी कष्टसाधना से किया, उनके द्वारा परिमार्जित भाषा का विकास किन विभिन्न रीतियो और शैलियो मे फलित हुआ, आदि बातो पर गवेषणात्मक ढग से विचार करने का प्रयास किया गया है।

अन्तिम अध्याय 'युग और व्यक्तित्व' है। इसमे द्विवेदी-युग का काल-निर्धारण करके यह प्रतिपादित किया गया है कि द्विवेदी जी अपने युग के साहित्य के केन्द्र थे और उस युग के प्राय सभी महान् साहित्यकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे उनसे प्रभावित हुए। उस युग के हिन्दी-साहित्य के सभी अगो के भाव या अभाव पक्ष पर द्विवेदी जी का प्रभाव है। किन्तु उनका प्रभाव सर्वत्र समान नही है। जिस अग मे और जहा पर वह विशिष्ट नही है वहा पर भी उसे दिखाने का बरबस प्रयास नही किया गया। चार परिशिष्टो मे दी गयी सामग्री द्विवेदी जी के साहित्यिक योगदान को समझने मे उपयोगी सिद्ध होगी।

## ३४. हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य

### [१९४७ ई०]

श्री पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ का प्रबन्ध 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य' प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९४७ ई० मे डी० फिल० की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। सन् १९५३ ई० मे यह प्रबन्ध इसी नाम से प्रकाशित हुआ। प्रकाशक है चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड, अजमेर।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे चार भाग हैं। प्रथम भाग 'भूमिका' है। सर्वप्रथम हिन्दी-साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन किया गया है। अनुसन्धाता ने वीर-गाथा, भक्ति, रीति और आधुनिक कालो के स्थान पर नवीन नाम सुझाए हैं। वे क्रमश इस प्रकार हैं—अन्धकारकाल, कलात्मक उत्कर्ष-काल, साहित्यशास्त्रीय काल और साहित्यिक काल। इनके बाद अन्धकार-काल की विविध धाराओ

का विवरण प्रस्तुत करते हुए आख्यानक-साहित्य का वर्गीकरण किया है। तदनन्तर प्रेमाख्यानो का वर्गीकरण किया है। हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य की परिभाषा, वाह्य वर्गीकरण, तद्विषयक अनुसधान और प्रेमाख्यानक काव्य की महत्वपूर्ण समस्याओ पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया है।

द्वितीय भाग 'धारा का उद्गम' मे पहले सूफी धर्म की उत्पत्ति और विकास तथा हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य पर उसका प्रभाव दिखाया गया है। इसके वाद फारसी मसनवी के विकास और हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य पर उसके प्रभाव का निरूपण है। अन्त मे भारतीय आख्यानको के विकास का पर्यालोचन करते हुए हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य पर उसके प्रभाव का आकलन किया गया है।

तृतीय भाग 'धारा' है। इस भाग मे सर्वप्रथम साहित्य-पक्ष का अनुशीलन किया गया है। इस अनुशीलन के अन्तर्गत कहानी-कला पर विचार किया गया है। विविध हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्यो के कथानको की विवेचना की गयी है। इसके वाद चरित्र-चित्रण का अध्ययन किया गया है। इस प्रसग मे अध्येता ने पात्रो का वर्गीकरण आदि प्रस्तुत करते हुए चरित्र-चित्रण की सामान्य विशेषताओ का उद्घाटन किया है। कथोपकथन का भी अध्ययन किया है। इसी भाग मे प्रेमाख्यानक कवियो की काव्य-कला की समीक्षा की गयी है। इन काव्यो की महाकाव्य के लक्षणो के आधार पर परीक्षा की गयी है। अलकारो की दृष्टि से भी हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यो की समालोचना लेखक ने प्रस्तुत की है। अन्त मे प्रेमपथ का विस्तृत विवेचन किया गया है और हिन्दी-प्रेमाख्यानकारो के अन्य उपदेशो का भी अध्ययन किया गया है।

चौथा भाग उपसहार के रूप मे लिखा गया है। इस भाग मे धारा के महत्व तथा लक्ष्य प्रतिपादित हैं। इस धारा की भक्तिकालीन अन्य कविता-धाराओ ( सन्तकाव्य, रामभक्ति-काव्य और कृष्णभक्ति-काव्य ) से तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की गयी है। अन्त मे भारतीय साहित्य और हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य पर विचार किया गया है।[1]

---

१. एकाध सज्जनों ने बतलाया है कि श्री पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ के प्रबध का विषय था 'जायसी के विशिष्ट सन्दर्भ मे हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का अध्ययन'। वही प्रबन्ध कुछ परिवर्तन के साथ दो स्वतंत्र ग्रन्थों 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य' तथा 'मलिक मुहम्मद जायसी' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

## ३५. हिन्दी-नाटक-साहित्य का इतिहास और विकास

[ १९४७ ई० ]

श्री सोमनाथ गुप्त का प्रबन्ध 'हिन्दी-नाटक-साहित्य का इतिहास और विकास' सन् १९४७ ई० में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। 'हिन्दी-नाटक-साहित्य का इतिहास' के नाम से इसका प्रकाशन हिन्दी भवन, जालन्धर और इलाहाबाद, ने सन् १९५० ई० में किया। सन् १९५८ में इस ग्रन्थ का तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है।

इस प्रबन्ध में सात अध्याय हैं। पहले अध्याय में हिन्दी-नाटक-साहित्य के आरम्भ का अध्ययन है। नाटक-सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट करके नाटक के उपादानों पर विचार किया गया है। इसके बाद हिन्दी-नाटकों के दो रूपों (साहित्यिक और रंगमंचीय) का विवेचन है। नाटक-साहित्य के अभाव के कारणों का उल्लेख है।

दूसरे अध्याय में हिन्दी-नाटक-साहित्य के विकास का अवलोकन है। सबसे पहले देश के राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक वातावरण तथा उसके प्रभाव का निरूपण है, तत्पश्चात् भारतेन्दु के अनूदित, रूपान्तरित तथा मौलिक नाटकों और प्रहसनों का अनुशीलन किया गया है।

तीसरा अध्याय 'भारतेन्दु के समकालीन और हिन्दी-नाटक-साहित्य के विकास में उनका भाग' है। देश के राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक वातावरण, पश्चिमी प्रवृत्तियां और उनके प्रभाव, भारतेन्दु का प्रभाव और भारतेन्दु-काल की स्थापना आदि विषयों की विवेचना करते हुए तत्कालीन नाटक-साहित्य की विभिन्न धाराओं—मौलिक (पौराणिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, समस्याप्रधान, प्रेमप्रधान, प्रतीकवादी और प्रहसन धारा), अनूदित और रूपान्तरित—का परिशीलन किया गया है। तत्पश्चात् कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण तथा संवाद आदि की दृष्टि से हिन्दी-नाटक-साहित्य के विकास का सिंहावलोकन किया गया है। कुछ अभावों की ओर भी संकेत है। अन्त में बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्णदास और किशोरीलाल गोस्वामी आदि भारतेन्दु-काल के प्रमुख नाटककारों एवं उनकी रचनाओं की समीक्षा है।

चौथे अध्याय में द्विवेदी-युग को 'सन्धिकाल' मानकर उसका अध्ययन किया

गया है । इस अध्याय मे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा पश्चिमी विचार-धाराओ के प्रभाव का आकलन है । पडित वदरीनाथ भट्ट के उद्योग एव अनु-वाद-परम्परा की रक्षा का विवेचन है ।

पांचवां अध्याय 'रगमच और रगमचीय नाटक' है । हिन्दी-रगमच के विकास पर दृष्टिपात करते हुए व्यवसायी और अव्यवसायी नाटक मडलियो के नाट्य-विधान, प्रमुख नाटककारो और उनकी देन पर विचार किया गया है । रगमच के प्रमुख नाटककारो के अन्तर्गत माधव शुक्ल, आनन्द प्रसाद खत्री, हरिदास माणिक, गोविन्द शास्त्री दुग्वेकर तथा रगमच के अन्य नाटककारो के अन्तर्गत माखनलाल चतुर्वेदी, जमुनादास मेहरा, दुर्गाप्रसाद गुप्त, वलदेव प्रसाद खरे आदि की रचनाओ का परिचय दिया गया है ।

छठे अध्याय मे प्रसाद के नाटको, उनके वातावरण एव उनमे वर्तमान चिन्ता-धाराओ के प्रभाव का विवेचन है । ऐतिहासिकता और नाट्य-विधान, सुखान्त-भावना, गीत आदि की दृष्टि से प्रसाद के नाटको की समीक्षा है । प्रसाद की समकालीन पौराणिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, समस्या-प्रधान, प्रेम-प्रधान, आदि नाट्य-धाराओ का अध्ययन है ।

सातवें अध्याय 'प्रसादोत्तर नाटक साहित्य का विकास (१९३३-४२)' मे पहले वातावरण का विवेचन है । तव नाटक-साहित्य की विभिन्न धाराओ पर विचार किया गया है । इसके बाद प्रत्येक धारा के उल्लेखयोग्य नाटककारो ( सेठ गोविन्ददास, उदयशकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि ) तथा उनकी रचनाओं की समीक्षा है । एकाकी-नाटक-साहित्य और उसके उन्नायको भुवनेश्वर प्रसाद, गणेश प्रसाद द्विवेदी, रामकुमार वर्मा, द्वारका प्रसाद, सद्गुरु शरण अवस्थी, उदयशकर भट्ट, गोविन्ददास, प्यारेलाल और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की विवेचना है । अन्त मे एकाकी के उद्गम, नाट्य-विधान, विकास, नवीन प्रयोग आदि का अनुशीलन किया गया है ।

सातवें अध्याय के अन्त मे प्रबन्ध का सारतत्व ने दिया गया है । परिशिष्ट मे पहले अध्याय मे प्रतिपादित नाटको का आलोचनात्मक परिचय, सस्कृत, पारसी और जनरगमच का दिग्दर्शन एव साहित्यिक तथा रगमचीय नाटको की सूची है ।

# ३६. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास

## [१९४७ ई०]

श्री भगीरथ मिश्र को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास' पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने सन् १९४७ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। लखनऊ विश्वविद्यालय ने इनका प्रकाशन इसी नाम से संवत् २००५ वि० मे किया। प्रस्तुत ग्रन्थ छ अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे काव्यशास्त्र के स्वरूप, विषय और सीमा का विवेचन है। आरम्भ मे काव्यशास्त्र की परिभाषा पर विचार किया गया है। काव्यशास्त्र के अलंकारशास्त्र, शैलीशास्त्र तथा छन्दशास्त्र मे सम्बन्ध पर भी प्रकाश डाला गया है। यूनानी, लैटिन तथा संस्कृत काव्यशास्त्रो का संक्षिप्त परिचय देते हुए संस्कृत के रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति तथा ध्वनिसिद्धान्तो की भी विचार-चर्चा की गयी है। पाश्चात्य और संस्कृत काव्यशास्त्र की तुलना करते हुए हिन्दी काव्य-शास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया गया है। द्वितीय अध्याय का प्रतिपाद्य हिन्दी काव्यशास्त्र का प्रारम्भ और विकास है। उसके प्रेरणा-स्रोत, आधार और सामग्री का निरूपण किया गया है। विषयानुसार कालक्रम से ग्रन्थ सूची दी गई है तथा ग्रन्थो का अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। सर्व-प्रथम प्राचीन हिन्दी-काव्यशास्त्र की परम्परा का उद्घाटन है। इनके बाद भक्ति-कालीन शास्त्र-ग्रन्थो का अध्ययन है। इनके उपरान्त केशवदास के पूर्ववर्ती तथा स्वयं केशवदास के काव्यशास्त्र-सम्बन्धी प्रयासो की समीक्षा है। रीति-परम्परा के प्रारम्भ और विकास की पृष्ठभूमि मे चिन्तामणि, तोष, मतिराम, भूषण और देव की विवेचना की गयी है। तृतीय अध्याय मे रीति-ग्रन्थो के विस्तार और उत्कर्ष पर विचार किया गया है। अनेक रीति-आचार्यो का विवरण देते हुए रीति-ग्रन्थों के महत्व एवं तत्कालीन परिस्थिति का निरूपण किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे आधुनिक रीतिग्रन्थो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। रीति-कालीन परम्परा का विकास प्रदर्शित करते हुए रामदास, ग्वाल कवि, लछिराम, मुरारिदान, प्रतापनारायण सिंह, कन्हैयालाल पोद्दार, जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', भगवानदीन, रामशंकर शुक्ल 'रसाल', सीताराम शास्त्री, 'हरिऔध', बिहारी लाल भट्ट और मिश्रबन्धुओ के रीतिकाव्य-प्रयास की समीक्षा की गयी है। इसके अनन्तर आचार्य द्विवेदी, शुक्ल जी, आचार्य श्यामसुन्दर दास तथा लक्ष्मी-

नारायण सिंह 'सुधांशु' ने जिन नवीन दृष्टिकोणो से काव्यशास्त्र के विभिन्न अगो का विवेचन किया है, उनका सक्षिप्त आलोचनात्मक विवरण दिया गया है। पचम अध्याय 'कवियो की स्वच्छन्द रचनाओ मे प्राप्त काव्यादर्शों का अध्ययन' है। विभिन्न कालो मे 'वीरगाथा से आधुनिककाल तक' कवियो के क्या काव्यादर्श रहे हैं एव उनमे किस प्रकार परिवर्तन होते रहे हैं, इसका सक्षिप्त उपस्थापन है। षष्ठ अध्याय मे काव्यशास्त्र की आधुनिक समस्याओ पर प्रकाश डाला गया है। काव्य की आत्मा, कारण, उपकरण, गति और छन्द, अलकार, वर्गीकरण, काव्य के भेद आदि से सम्बद्ध आधुनिक समस्याओ का उपस्थापन किया गया है। साथ ही काव्यशास्त्र और काव्य के प्रचलित आधुनिक वादो का भी विवेचन किया गया है।

## ३७. हिन्दी साहित्य के भक्ति और रीति कालो मे प्रकृति और काव्य

[१९४८ ई०]

श्री रघुवश सहाय वर्मा का शोधप्रवन्ध 'हिन्दी साहित्य के भक्ति और रीति कालो मे प्रकृति और काव्य' सन् १९४८ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। उसी वर्ष 'प्रकृति और हिन्दी काव्य' के नाम से साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया। उनके इस प्रबन्ध की पृष्ठभूमि के रूप मे ही दूसरा ग्रन्थ 'प्रकृति और काव्य (सस्कृत खड)' के नाम से १९५१ ई० मे साहित्य भवन लिमिटेड से ही प्रकाशित हुआ।

डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध दो भागो मे विभक्त हैं। पहले भाग मे प्रकृति और काव्य का सैद्धान्तिक विवेचन तथा दूसरे भाग मे हिन्दी-साहित्य के मध्ययुगीन काव्य मे चित्रित प्रकृति की समाक्षा है। पहले भाग में पाच प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण मे प्रकृति के विविध रूपो (भौतिक दृश्य तथा आध्यात्मिक) का विभिन्न दृष्टियो से विवेचन है। द्वितीय प्रकरण में प्रकृति के मध्य मे मानव का दर्शन किया गया है। तृतीय प्रकरण मे मानवीय भावो के विकास मे प्रकृति के योग का आकलन है। चतुर्थ प्रकरण मे सौन्दर्य-सम्बन्धी

विभिन्न मतो की परीक्षा करके प्रकृति और कला मे व्यक्त सौन्दर्य के विविध रूपो का विश्लेषण किया गया है। पचम प्रकरण मे काव्य की समन्वयात्मक व्याख्या करके उसमे निरूपित प्रकृति के विभिन्न रूपों की समीक्षा की गयी है। आलम्बन, उद्दीपन, उपमान आदि रूपो मे प्रकृति के सश्लिष्ट रूपाकन तथा रेखाचित्रो की विविध दृष्टियो से आलोचना है। उपर्युक्त पाँच प्रकरण मध्ययुगीन हिन्दी-काव्य के प्रकृति-चित्रण की सैद्धान्तिक भूमिका के रूप मे लिखे गये हैं।

द्वितीय भाग के नौ प्रकरणो मे हिन्दी-काव्य-गत प्रकृति-चित्रण का अनुसधान किया गया है। प्रथम प्रकरण, मे 'काव्यशास्त्र मे प्रकृति', 'काव्यपरम्परा मे प्रकृति' तथा 'प्रकृतिरूपो की परम्परा' का विश्लेषण करते हुए काव्य मे प्रकृति की प्राचीन परम्परा का उद्घाटन किया गया है। द्वितीय प्रकरण मे मध्ययुग की परिस्थितियो तथा प्रवृत्तियो का व्याख्यान किया गया है। तृतीय प्रकरण मे साधना और प्रकृतिवाद एव सन्त-साधना मे प्रकृति-रूप का सबध निरूपित करते हुए आध्यात्मिक साधना मे प्रकृति के रूप पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ प्रकरण मे इसी प्रसग का विस्तार करते हुए प्रेमियो की व्यजना मे प्रकृति-रूप की व्याख्या की गयी है तथा पचम प्रकरण के अन्तर्गत आध्यात्मिक साधना मे प्रकृति-रूप की समीक्षा करते हुए इस प्रसग को समाप्त किया गया है। षष्ठ तथा सप्तम प्रकरणो मे क्रमश कथा-काव्य और गीति-मुक्तक, तथा रीति-काव्य की परम्पराओ का अनुसन्धान करते हुए लेखक ने विभिन्न काव्यरूपो मे प्रकृति का दिग्दर्शन कराया है। अष्टम प्रकरण मे उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्रकृति की समालोचना है। राजस्थानी काव्य, सत-काव्य, प्रेमकथा-काव्य, राम-काव्य, उन्मुक्त प्रेम-काव्य, पद-काव्य और मुक्तक तथा रीति-काव्य का अध्ययन करते हुए प्रकृति का विवेचन किया गया है। नवम प्रकरण मे उपमानो की योजना मे प्रकृति की स्थिति की विवृत्ति की गई है। स्वच्छन्द उद्भावना, कलात्मक योजना तथा रूढिवादी प्रयोगो का प्रसगनिर्देशपूर्वक व्याख्यान किया गया है।

## ३८. हिन्दी-पत्रकारिता का उद्भव और विकास

[१९४८ ई०]

श्री रामरतन भटनागर का प्रबन्ध 'हिन्दी-पत्रकारिता का उद्भव और विकास' सन् १९४८ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध अग्रेजी मे ही लिखित और प्रकाशित है। अग्रेजी शीर्षक है 'दी राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑव् हिन्दी जर्नलिज्म (१८२६–१९४५ ई०)'। इसका प्रकाशन किताब महल, इलाहाबाद, से सन् १९४७ ई० मे हुआ था। सम्भवत मुद्रित रूप मे ही यह प्रबन्ध 'डॉक्टरेट' के लिए प्रस्तुत किया गया था।

इस ग्रन्थ मे ग्यारह अध्याय हैं। आरम्भ मे विषय-प्रवेश है जिसमे प्रस्तुत अनुसन्धान की कठिनाइयो, स्रोतो एव अध्ययन की रूपरेखा पर विचार किया गया है। पहले अध्याय मे भारतवर्ष मे पत्रकारिता के आरम्भ का अनुशीलन किया गया है। दूसरे अध्याय में उन्नीसवी शती के द्वितीय चरण की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियो का निरूपण करके हिन्दी-पत्रकारिता (१८२६–६७ ई०) के आरम्भ का अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्याय का शीर्षक है 'उन्नीसवी शती (१८६७–१८८३ ई०) मे हिन्दी-पत्रकारिता का उत्थान'। भूमिकारूप मे धर्म, समाज, शिक्षा, साहित्य, प्रेस, मशीन आदि से सम्बन्धित परिवर्तनों का परिचय देकर मुद्रण, विषय, भाषा, समाचार, साहित्यिकता आदि की विविध दृष्टियो से उस युग की हिंदी-पत्रकार-कला का विवेचन किया गया है।

चौथे अध्याय मे सन् १८८३ ई० से १९०० ई० तक की हिन्दी-पत्रकारिता का परिशीलन है। राष्ट्रीय शक्तियों, धार्मिक आदोलनो, शिक्षा, सचार आदि का प्रास्ताविक विवेचन करके हिन्दी और उर्दू-नीति, हिन्दी-पत्रो की शोचनीय आर्थिक अवस्था, खडीबोली-गद्य के विकास मे पत्रों का योगदान, उस युग की पत्रकारिता मे राष्ट्रभावना और सामाजिक जीवन आदि की व्यापक समीक्षा की गयी है। पाचवें अध्याय का विषय है बीसवी शती ई० के प्रथम बीस वर्षों मे हिन्दी-पत्रकारिता का विकास। आरम्भ मे युगीन परिस्थितियो का निरूपण करके हिन्दी प्रेस, पत्रो के विषय, भाषा, साहित्य, हिन्दी और उर्दू-पत्रकारिता की तुलना आदि की विवेचना की गयी है। छठे अध्याय में १९२१ से १९३६ ई०

तक की हिन्दी-पत्रकारिता के विकास का उपर्युक्त पद्धति से ही अध्ययन किया गया है।

सातवें अध्याय का प्रतिपाद्य है 'समसामयिक प्रेस'। आठवें अध्याय मे दैनिक पत्रो का अध्ययन करके साप्ताहिक और सचित्र पत्रों पर भी विचार किया गया है। नवें अध्याय मे हिन्दी के सामयिक साहित्य और पत्रिकाओ का अनुशीलन है। दसवें अध्याय मे हिन्दी पत्रकारिता (१८२६–१९४५ ई०) मे राजनैतिक चेतना के विकास का पर्यालोचन है। ग्यारहवें अध्याय मे ग्रन्थ का उपसहार करते हुए हिन्दी पत्रकारिता के विकास और उपलब्धि पर विविध दृष्टियो से विचार किया गया है। पाच परिशिष्टो में दी गयी पत्रकारिता-सम्बन्धी सामग्री भी उपयोगी है।

## ३९. हिन्दी-संतों पर वेदान्त-सम्प्रदायों का ऋण (विशेषतया तुलसीदास, कबीरदास और सूरदास के सन्दर्भ में)

[१९४८ ई०]

श्रीमती शीलवती मिश्र का प्रबन्ध 'हिन्दी-सतो पर वेदान्त-सम्प्रदायों का ऋण (विशेषतया तुलसीदास, कबीरदास और सूरदास के सन्दर्भ मे)' सन् १९४८ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध दर्शन-विभाग के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया था और अभी तक अप्रकाशित है।

इस प्रबन्ध मे छ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे भक्तिधारा के विकास का सक्षिप्त ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वेद, उपनिषद् पचरात्र, आलवार और गीता आदि के आधार पर भक्ति के विकास का निरूपण किया गया है। दूसरे अध्याय मे वेदान्त के पाच सम्प्रदायो (शकर के अद्वैतवाद, रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद, मध्व के द्वैतवाद, वल्लभ के शुद्धाद्वैतवाद एव निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद) का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। तीसरे अध्याय मे वेदान्त के प्रभाव की दृष्टि से तुलसीदास का अध्ययन है। जिसमे परमार्थ के स्वरूप, मायावाद, जीव और जगत् से ब्रह्म का सम्बन्ध आदि की विवेचना करके अन्त में समाधान प्रस्तुत किया गया है। चौथे अध्याय मे कबीरदास का अध्ययन

है। परमार्थ का स्वरूप, मायाविषयक सिद्धान्त, आत्मा और परमात्मा तथा समन्वयवाद—इन शीर्षकों के अन्तर्गत उनके वेदान्तिक सिद्धान्तो की विवेचना की गयी है। सूरदास पर लिखे गए पाचवे अध्याय मे उनकी दार्शनिक मान्यताओ की समीक्षा है। परमार्थ का स्वरूप माया, ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध, रासलीला, जीवन का परम पुरुषार्थ और प्रेम का सिद्धान्त—इन विषयो की दृष्टि से सूर के विचारो का प्रतिपादन किया गया है। अन्तिम अध्याय उपसहार है जिसमे नानक, मीरा, दादू, सुन्दरदास और सहजोवाई के दार्शनिक विचारो का सक्षिप्त परिचय देते हुए सत-कवियों के दार्शनिक सिद्धान्तो का समन्वय प्रस्तुत किया गया है।

## ४० मैथिली साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (प्रारम्भ से वर्तमान समय तक और उस पर अंग्रेजी प्रभाव)

[१६४८ ई०]

श्री जयकान्त मिश्र का प्रबन्ध 'मैथिली साहित्य का सक्षिप्त इतिहास(प्रारम्भ से वर्तमान समय तक और उस पर अग्रेजी का प्रभाव)' सन् १६४८ ई० मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अग्रेजी विभाग मे डी० फिल० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध अभी तक प्रकाश मे नही आया।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे मैथिली भाषा और उसके साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रबन्ध की सामग्री पाच खण्डो और उसके अन्तर्गत कई अध्यायो मे सकलित की गयी है।

प्रथम खण्ड मैथिली साहित्य की पृष्ठभूमि उपस्थित करता है। इसके प्रथम अध्याय मे मिथिला की सीमा, नामकरण, क्षेत्रफल, निवासी, धार्मिक जीवन, कृतित्व और उनके सगीत तथा नृत्यप्रियता का परिचय दिया गया है। दूसरे अध्याय मे मैथिली भाषा और उसकी लिपि, बोलने वालों की सख्या, बोली का क्षेत्र तथा उसकी स्वतत्र भाषा-विषयक मनोवृत्ति का परिचय देते हुए उसकी स्वतन्त्र लिपि का अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्याय मे मैथिली साहित्य का विकास बताते हुए उसका कालनिर्धारण तथा उसकी विभिन्न विधाओ महाकाव्य, खण्डकाव्य व नाटको का कालक्रम से विवरण दिया गया है।

द्वितीय खण्ड मे प्रारम्भिक मैथिली साहित्य का इतिहास दिया गया है। पहले अध्याय मे सन्स्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश मे मैथिली के स्वरूप का निर्धारण करते हुए 'वर्णरत्नाकर' के रचयिता के समय और उसकी रचनात्मक विशिष्टता पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे ऐतिहासिक और भरपूर साहित्यिक सामग्री के आधार पर विद्यापति के काल और रचना का आलोचनात्मक अध्ययन हुआ है। तीसरे अध्याय मे विद्यापति के समकालीन सत्ताइस कवियो मे से नाटककार कवियो को छोडकर सबका अध्ययन किया गया है। और उनके उत्तराधिकारी मिथिला और नेपाल के तेईस कवियो के साहित्यिक योगदान पर विचार हुआ है।

तृतीय खण्ड मध्यकालीन (१७००–१८०० ई०) मैथिली साहित्य का इतिहास उपस्थित करता है। पहले दो अध्यायो मे मैथिली वर्नाक्यूलर मे नाटको की उत्पत्ति की परिस्थिति पर विचार किया गया तथा उसकी नेपाल, मिथिला और आसाम शाखा के अनेक नाटककारो का परिचय दिया गया है। तीसरे अध्याय मे मध्यकालीन उपलब्ध गद्यसाहित्य की विधाओ पर विचार किया गया है। चौथे अध्याय मे मध्यकाल के अनेक छोटे-मोटे गीतिकार और सन्त कवियो का परिचय दिया गया है तथा उनकी स्वतन्त्र और अनूदित रचनाओ पर विचार किया गया है।

चतुर्थ खण्ड मे मैथिली लोकसाहित्य का अध्ययन हुआ है। पहले अध्याय मे मिथिला की लोककथाओ का विविध दृष्टियो से वर्गीकरण करके उनका अध्ययन सम्पन्न हुआ है। दूसरे अध्याय मे लोकगीतो और लोकगाथाओ का समुचित अध्ययन है। तीसरे अध्याय मे पालने के गीतो व मुहावरो का तथा चौथे अध्याय मे लोकनृत्यगीत का अध्ययन हुआ है।

पञ्चम खण्ड अंग्रेजी का मैथिली पर प्रभाव प्रदर्शित करता है। पहले अध्याय मे मैथिली पर अंग्रेजी प्रभाव के सूत्रो की छानबीन की गयी है। दूसरे मे आधुनिक मैथिली गद्य और पत्रकारिता का विकास प्रदर्शित करते हुए अंग्रेजी और सन्स्कृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओ से अनूदित मैथिली रचनाओ की चर्चा है। मनोरंजनार्थ रचित कथा, उपन्यास, यात्रा, संस्मरण, निबन्ध आदि की विस्तृत चर्चा है। उपयोगी साहित्य की विधाओं (आलोचना, आत्मकथा, अनुवाद-साहित्य) का भी इतिहास दिया गया है। तीसरे अध्याय मे आधुनिक मैथिल कवियो और नाटककारो का अध्ययन किया गया है। चौथे अध्याय मे इस साहित्य की कमियो तथा विशिष्टताओ का उल्लेख करते हुए उसके भविष्य

की सम्भावनाओ पर विचार हुआ है तथा मैथिली को शिक्षा का माध्यम बनाने का आग्रह किया गया है।

## ४१. हिन्दी काव्य में प्रकृतिचित्रण

[१९४८ ई०]

श्रीमती किरण कुमारी गुप्त को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी-कविता मे प्रकृतिचित्रण' पर सन् १९४८ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध इसी नाम से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, ने स० २००७ मे प्रकाशित किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध दो खडो मे विभक्त है। प्रथम खड 'सिद्धान्त और विवेचन' मे दो अध्याय हैं। पहले अध्याय 'मानव और प्रकृति' मे सबसे पहले मानव और प्रकृति के चिरसाहचर्य का निरूपण करते हुए प्रकृति से मानवहृदय का तादात्म्य प्रदर्शित किया गया है। इसके बाद प्रकृति की दार्शनिक परिभाषा पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् प्रकृति-प्रेम का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए मानवेतर जगत् का महत्वाकन भी किया गया है। प्रकृतिचित्रण मे कवि और वैज्ञानिक के विभिन्न दृष्टिकोणो को स्पष्ट किया गया है। दूसरे अध्याय मे

पहले भारतेन्दु-काल की परिस्थितियों का अवलोकन करते हुए भारतेन्दु, प० श्रीधर पाठक, राय देवीप्रसाद पूर्ण आदि के काव्य में प्रकृतिचित्रण की विवेचना की गयी है। इनके बाद द्विवेदी-युग के कवियों (महावीरप्रसाद द्विवेदी, हरिऔध, रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी और गुरुभक्तसिंह) के प्रकृतिचित्रण का परीक्षण किया गया है। अन्त में द्विवेदी-उत्तर-युग के काव्य में प्रकृतिचित्रण का विस्तृत उपस्थापन है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के काव्य का अध्ययन किया गया है। इस काल में प्रकृतिचित्रण के महत्व और उसके कारणों पर विचार किया गया है। ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए अनुसन्धाता ने हिन्दी के प्रकृति-काव्य का मूल्यांकन किया है।

## ४२. श्री गुरु गोरखनाथ और उनका युग

[१९४८ ई०]

श्री टी० एन० वी० आचार्य (रांगेय राघव) को उनके प्रबन्ध 'श्री गुरु गोरखनाथ और उनका युग' पर सन् १९४८ ई० में आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नहीं आया।

इस ग्रन्थ में 'भारतीय मध्ययुग के सन्धिकाल का मनन' किया गया है। इसमें आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय में आलोच्य वस्तु की पृष्ठभूमि का विवेचन है। इसमें बौद्धमत के ह्रास, पतन और क्षय के कारणों की विवेचना की गयी है। तत्पश्चात् हिन्दू धर्म, वैष्णव मत और शैव मत के प्रभावों और उसके भेदों (योग और तन्त्र) का संक्षिप्त अनुसंधान किया गया है। दूसरे अध्याय में गुरु गोरखनाथ की पूर्ववर्ती गुरुपरम्पराओं, किंवदन्तियों, दन्तकथाओं आदि की परीक्षा की गयी है। तीसरे अध्याय में उस युग की मुख्य धार्मिक विचारधाराओं, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवनदर्शन एवं दृष्टिकोण के परिवर्तन के हेतुओं पर विचार किया गया है। चौथे अध्याय में गुरु गोरखनाथ के व्यक्तित्व और उनकी विशेषताओं का निरूपण है। पांचवें अध्याय में गुरु गोरखनाथ के दार्शनिक और योग सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन, उनकी दार्शनिक देन का निर्धारण एवं वैष्णव तथा शैव मतों से उनके दार्शनिक मत

की तुलना की गई है। छठे अध्याय मे गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओ की प्रामाणिकता पर विचार करके उनका साहित्यिक अनुशीलन किया गया है। सातवा अध्याय उपसहार के रूप मे लिखा गया है। उसमे तत्कालीन समाज और समसामयिको पर गोरखनाथ का प्रभाव दिखलाकर उनके विरुद्ध होने वाली प्रतिक्रिया का निरूपण किया गया है। इस अध्याय मे ही आज के गोरखपथ और गोरखनाथ के महत्व का भी दिग्दर्शन है। आठवें अध्याय मे अनुसन्धाता ने भारतीय सास्कृतिक धारा तथा इतिहास मे गोरखनाथ का स्थान निर्धारित किया है।

## ४३. सन्त कवि मलूकदास

[१६४८ ई०]

श्री त्रिलोकी नारायण दीक्षित का प्रबन्ध 'सन्त कवि मलूकदास' सन् १६४८ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध अभी तक प्रकाशित नही हुआ है।

## ४४. चन्द वरदायी और उनका काव्य

[१६४८ ई०]

श्री विपिन विहारी त्रिवेदी को उनके प्रबन्ध 'चन्दवरदायी और उनका काव्य' पर सन् १६४८ ई० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि मिली। इसका प्रकाशन इसी नाम से सन् १६५२ ई० मे हुआ। प्रकाशक है हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।

उपर्युक्त प्रवन्ध मे छ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे कवि का जीवनवृत्त है। इस वृत्त के अन्तर्गत कवि के जन्म, माता-पिता, बाल्यकाल, पुत्र और वशज, जाति, जीविका, ऐश्वर्य, देवी की सिद्धि, वरदायी नाम की प्रसिद्धि, देवी द्वारा सहायता, मन्त्र-तन्त्र-ज्ञान, भाषा-ज्ञान, दूतत्व, निर्भीकता, युद्ध, मृत्यु आदि

महत्वपूर्ण बातो पर अनुसन्धानात्मक रूप से प्रकाश डाला गया है।

दूसरा अध्याय 'वस्तु-वर्णन' है। इसके अन्तर्गत व्यूह, नगर, पनघट, विवाह, युद्धोत्साह एव युद्ध, उत्सव, ज्योनार, स्त्रीभेद, षड्ऋतु, बारहमासा, नखशिख, शृगार, कवच युद्ध, तथा अन्य महत्वपूर्ण वर्णनो का अध्ययन किया गया है।

तीसरे अध्याय 'भाव-व्यजना' मे उत्साह, क्रोध, जुगुप्सा, भय, हास्य, आश्चर्य, निर्वेद, रति तथा शोक आदि भावो की ('रासो' मे) रसरूप मे अभिव्यक्ति का अध्ययन किया गया है।

चौथे अध्याय का प्रतिपाद्य 'रासो' की अलकार-योजना है। अलकार का सामान्य परिचय देते हुए उसके इतिहास और क्रम-विकास पर विचार किया गया है। तदनन्तर 'रासो' के अलकारो की समीक्षा की गयी है।

पाचवा अध्याय 'छन्द-समीक्षा' है। अध्येता ने छन्द का सामान्य परिचय देकर 'रासो' मे वर्णित छन्दो का अनुसन्धानपूर्ण अनुशीलन किया है। लेखक ने रासो मे प्रयुक्त छन्दो की एक सूची देकर सिद्ध किया है कि इस ग्रन्थ मे मात्रावृत्त, सयुक्तवृत्त, वर्णवृत्त और फुटकर—सब मिलाकर बहत्तर छन्दो का प्रयोग हुआ है। तदुपरान्त इन छन्दो का परिचय दिया गया है। प्रबन्ध का चौहत्तर पृष्ठो का यह अध्याय 'रासो' की छन्द-समीक्षा की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

छठे अध्याय मे 'रासो' की भाषा की कतिपय विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है। 'रासो' की भाषा का स्वर, असयुक्त व्यजन, सयुक्त व्यजन, सर्वनाम, कारक चिह्न, क्रिया, सख्यावाचक विशेषण, शब्दभडार आदि का विस्तृत विवेचन करते हुए उसकी विशेषताओ का उपस्थापन किया गया है।

परिशिष्ट मे चन्द वरदायी और उनके काव्य पर गार्सा द तासी, ग्रियर्सन, जेम्स मोरिसन तथा प्रो० बूलर आदि यूरोपीय विद्वानो की कुछ सम्मतिया सकलित कर दी गयी हैं, जिससे प्रबन्ध के महत्व मे वृद्धि हुई है।

## ४७. रामकथा—उत्पत्ति और विकास

[ १९४९ ई० ]

फादर कामिल बुल्के को प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् १९४९ ई० मे उनके प्रबन्ध 'रामकथा का विकास' पर डी० फिल० की उपाधि प्रदान की। हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, द्वारा 'रामकथा' नाम से सन् १९५० ई० मे यह ग्रन्थ किंचित् परिवर्द्धन के साथ प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत ग्रन्थ चार भागो मे विभाजित है। प्रथम भाग मे प्राचीन रामकथा-साहित्य, द्वितीय मे रामकथा की उत्पत्ति, तृतीय मे अर्वाचीन रामकथा-साहित्य तथा चतुर्थ मे रामकथा के विकास का विवेचन किया गया है। चारो भागो मे कुल मिलाकर इक्कीस अध्याय हैं। पहला अध्याय 'वैदिक साहित्य और रामकथा' है जिसमे वैदिक साहित्य मे रामकथा के विभिन्न पात्रो (इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, अश्वपति, जनक, सीता आदि) का अनुसधान करने के अनन्तर वैदिक साहित्य मे रामकथा का प्राय अभाव निर्णीत किया गया है। दूसरे अध्याय मे वाल्मीकि-रामायण के पाठ तथा रचनाकाल पर विचार किया गया है, साथ ही आदिकवि वाल्मीकि के अस्तित्व एव जीवनचरित पर भी विचार किया गया है। तीसरे अध्याय मे 'महाभारत' के विभिन्न पर्वों मे वर्णित रामकथा का आकलन किया गया है। चौथे अध्याय मे जातको तथा अन्य बौद्ध-साहित्य मे रामकथा की शोध की गयी है। पाँचवें अध्याय मे जैन-रामकथा की विशेषताओ का अनुशीलन किया गया है। छठे अध्याय मे 'दशरथ जातक' मे वर्णित रामकथा की प्रामाणिकता तथा 'रामायण' पर पडे बौद्ध-प्रभाव की समीक्षा की गयी है। सातवें अध्याय मे अनेक विदेशी तथा भारतीय विद्वानो के मतो की आलोचना करते हुए रामकथा के मूलस्रोत का विश्लेषण किया गया है।

आठवें अध्याय मे प्रचलित वाल्मीकि-रामायण के मुख्य प्रक्षेपो पर विचार किया गया है। नवें अध्याय मे रामकथा के प्रारम्भिक विकास तथा व्यापक प्रसार का निदर्शन हुआ है। दसवें अध्याय मे सस्कृत के धार्मिक साहित्य और ग्यारहवें अध्याय मे उसके ललित साहित्य मे निबद्ध रामकथा का विवेचन है। बारहवें अध्याय मे आधुनिक भारतीय भाषाओ मे वर्णित रामकथा की विचार-चर्चा की गयी है। तेरहवें अध्याय मे तिब्बत, खातोन, हिन्देशिया आदि अन्य देशो मे प्रचलित रामकथा का निरूपण है। चौदहवें से लेकर बीसवें अध्याय

में रामायण के सात काडो की कथावस्तु का विश्लेषण करते हुये रामकथा के विकास का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इक्कीसवें अध्याय में ग्रन्थ का उपसहार है, जिसमे रामकथा की व्यापकता, विभिन्न रामकथाओ की मौलिक एकता तथा प्रक्षिप्त सामग्री की सामान्य विशेषताओ का परिशीलन और राम-कथा को प्रभावित करने वाले विभिन्न साधनो का उल्लेख करते हुये रामकथा के विकास का सिंहावलोकन किया गया है। ग्रन्थ के परिशिष्ट मे रामकथा-साहित्य की एक उपयोगी तालिका भी प्रस्तुत की गयी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ रामकथा-सम्बन्धी सामग्री का एक विश्व-कोष-सा है जिसमें देश और विदेशो की विभिन्न भाषाओ के साहित्यों मे उपलब्ध रामकथा-विषयक प्रभूत सामग्री की छानबीन की गयी है।

## ४८. तुलसीदास और उनका युग

[ १९४९ ई० ]

श्री राजपति दीक्षित को उनके शोध-प्रबन्ध 'तुलसीदास और उनका युग' पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने सन् १९४९ ई० मे डी० लिट० की उपाधि प्रदान की। इसी नाम से इस प्रबन्ध का प्रकाशन ज्ञानमडल लिमिटेड, बनारस, ने स० २००९ मे किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस परिच्छेदो में विभक्त है। पहले परिच्छेद मे तुलसीदास की समकालीन परिस्थितियो का अनुशीलन किया गया है। उस समय वर्णाश्रम-धर्म का ह्रास हो रहा था, चिन्ता और अशान्ति चारो ओर परिव्याप्त थी किन्तु कला की जागृति का अभाव उस समय नही था। तुलसी के युग की राजनीतिक धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक चेतना के साथ-साथ पूर्ववर्ती तथा समसामयिक कवियो और प्रचारको पर भी विचार किया गया है।

दूसरे परिच्छेद मे तुलसी के सामाजिक मत का विवेचन किया गया है। आदर्श राज्य, राजा-प्रजा, वर्णाश्रम धर्म, पारिवारिक जीवन का आदर्श, समाज मे स्त्रियों का स्थान आदि महत्वपूर्ण विषयो पर तुलसी का मत उपस्थापित करते हुये तुलसी की सान्त्वप्रियता तथा मर्यादावादिता का भी पर्यालोचन किया गया है।

दिया है : तीसरे अध्याय मे लोकगीत-साहित्य का अध्ययन किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—(अ) जन्म के गीत (आ) विवाह के गीत (इ) त्योहार, व्रत, देवी आदि के गीत (ई) अन्य विविध गीत तथा (उ) प्रबन्ध गीत। प्रबन्धगीत के अन्तर्गत विविध पवारो, व्याहुला, सरमन, ढोला, मदारी का ढोला, लवकुशजन्म, हिरनावती आदि का पर्यालोचन किया गया है।

चौथा अध्याय 'लोककहानिया' है। पूर्वपीठिका के अन्तर्गत भारत मे लोककहानियो और लोककहानियो की साहित्यिक अभिव्यक्ति पर विचार किया गया है। कहानियो के बीजो का अनुसधान वैदिक साहित्य मे करते हुए उपनिषद् रामायण, महाभारत, बृहत्कथा, जातक और जैनसाहित्य मे उसके विकास का विहगालोकन किया गया है। तदनन्तर हिन्दी मे लोकवार्त्ता-कहानी पर विचार किया गया है। अन्त मे ब्रज की कहानियो के विविध रूपो का दिग्दर्शन कराया गया है। पहले कहानियो के वर्गीकरण के सिद्धान्तो का कथन है तब इन कथाओ की सामान्य प्रवृत्तियो का उल्लेख करते हुए कहानियो का वर्गीकरण किया गया है। इन कहानियो के विविध अभिप्रायो पर भी प्रकाश डाला गया है। पाचवें अध्याय मे लघु छन्द कहानी ( Drolls ) के साधारण तथा क्रम सम्वर्द्धित दोनो भेदो का अध्ययन है। छठे अध्याय 'लोकोक्ति-साहित्य' मे पहेलियों तथा कहावतो का परिशीलन है।

सातवा अध्याय 'उपसहार' है। कला और उसके स्वरूप पर विचार करते हुए लोककला की मर्यादाओ पर दृष्टिपात किया गया है। इस अध्याय के कुछ प्रमुख प्रतिपाद्य इस प्रकार हैं—लोकसाहित्य मे शैली और सुरुचि, शैली-सविधान, लोकसाहित्य मे प्रतीकप्रयोग, अलकार, रस, लोकसाहित्य मे चरित्र, मनोवैज्ञानिक तत्त्व, यौन तत्त्व, जातिविज्ञान तथा नृविज्ञान, लोकसाहित्य का प्रभाव तथा साहित्य का प्रभाव आदि।

# ५१. जायसी, उनकी कला और दर्शन

[ १६४६ ई० ]

श्री जयदेव कुलश्रेष्ठ का प्रबन्ध 'जायसी, उनकी कला और दर्शन' आगरा विश्वविद्यालय द्वारा सन् १६४६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। 'सूफी महाकवि जायसी' के नाम से इनका प्रकाशन भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, ने सन् १६५७ ई० मे किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध ग्यारह अध्यायो मे विभक्त है। पहला अध्याय 'वातावरण' है। इसमे राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियो का अनुशीलन करते हुए जायसी-काल के वातावरण पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरे अध्याय मे जायसी का जीवनवृत्त है। अन्त साक्ष्य तथा वाह्य साक्ष्यो पर विचार करते हुए कवि के जन्म, तिथि, जन्मस्थान, वाल्यकाल, सूफीमत की ओर प्रवृत्ति, मित्र तथा सन्तान, अमेठी-प्रस्थान, मृत्यु-तिथि, स्मारक, ज्ञानार्जन, शिक्षा, इस्लाम और हिन्दू धर्म की जानकारी, व्यवहारज्ञान और व्यक्तित्व आदि का अनुसन्धान किया गया है।

तीसरे, चौथे और पाचवें अध्यायो मे क्रमश 'आखिरी कलाम' 'पदमावत' तथा 'अखरावट' का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जायसी की कृतियो का यह अध्ययन अनेक दृष्टियो से विस्तार के साथ किया गया है। इनमे भी 'पदमावत' का अध्ययन कथानक, कल्पना और इतिहास, प्रेरणा, समासोक्ति या अन्योक्ति है या नही, रचनाकाल, रचनाशैली, प्रवन्धकाव्य की विशेषता आदि अनेक दृष्टियों से किया गया है।

छठा अध्याय 'काव्यकला' है। इस अध्याय मे भाषा, शब्दभडार, व्याकरण, मुहावरे और कहावते, गुण, छन्द, सवाद और अलकार आदि अनेक दृष्टियो से जायसी के कलापक्ष का अनुशीलन किया गया है। इस अध्याय मे प्राकृतिक-व्यापार-वर्णन, वैभव-वर्णन, मानव-दशाओ के वर्णन आदि पर विचार करते हुए जायसी की वर्णनशक्ति पर प्रकाश डाला गया है। इसमे चरित्र-चित्रण और सूक्तियो का भी विवेचन है।

सातवें अध्याय मे जायसी के साहित्यिक विधान का पर्यालोचन किया गया है। पहले विधानो के सगठन एव महत्व का प्रतिपादन किया गया है। तब जायसी के मुख्य विधानो की चर्चा की गयी है। आठवा अध्याय अनुभूति

पक्ष है। इसमे रस तथा भाव की दृष्टि से विचार किया गया है। शृंगार के सम्भोग और विप्रलम्भ पक्ष के अतिरिक्त करुण, वीर, भयानक, रौद्र आदि रसो के अनुशीलन का प्रयास किया गया है।

नवें अध्याय का विवेच्य 'सूफीमत' है। सबसे पहले सूफीमत की रहस्य-भावना, सूफीमत और इस्लाम, मत के आचार्य, प्रचार आदि बातो का विवरण है। तब उसकी विभिन्न 'अवस्थाओ और मुकामात' का उपस्थापन है। सूफीमत की प्रतीक-योजना पर भी विचार किया गया है और तब दिखाया गया है कि भारतीय वातावरण मे आने पर किस प्रकार इसकी भेंट योगधारा से हुई और उसका इस पर क्या प्रभाव पडा। भारतीय भावो से इसका सामजस्य भी दिखाया गया है।

दसवें अध्याय मे जायसी के 'दर्शन' का प्रतिपादन है। दर्शन का यह प्रतिपादन उनकी तीनो कृतियो (आखिरी कलाम, पदमावत और अखरावट) के आधार पर क्रमश किया गया है। ईश्वर, जीव, ससार, शरीररचना, अवस्थाए, गुरु-महत्व, प्रेम-मार्ग, रहस्य-गोपन, साधन, भारतीय प्रभाव आदि अनेक दृष्टियो से जायसी के दर्शन का अध्ययन किया गया है। जायसी की साधनात्मक और भावनात्मक रहस्य-भावना का अनुशीलन करते हुए अन्य सूफियो से उसकी तुलना भी की गयी है। सूफी साहित्य को उनकी देन का भी मूल्याकन किया गया है।

ग्यारहवाँ अध्याय उपसहार के रूप मे लिखा गया है। इसमे कवि का महत्व प्रतिपादित करते हुए हिन्दी-साहित्य में उसके योगदान पर विचार किया गया है। दार्शनिक विचारधारा मे भी उसका योग दिखाया गया है। उसकी सामजस्य-भावना की भी चर्चा की गयी है।

## ५२. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि

[१९४९ ई०]

श्री सरयू प्रसाद अग्रवाल का प्रबन्ध 'अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि' सन् १९४९ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। इसी नाम से इसका प्रकाशन स० २००७ वि० मे लखनऊ

विश्वविद्यालय ने किया।

इस प्रबन्ध मे पाच अध्याय हैं। पहला अध्याय भूमिका के रूप मे लिखा गया है। इनमे मध्ययुग की कतिपय सामान्य विशेषताओ को स्पष्ट करते हुए तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियो का विवेचन किया गया है। इनके बाद अकबर का व्यक्तित्व, अकबरी दरबार मे कला का आश्रय, भारतवर्ष मे यवनसाम्राज्य आदि पर विचार करते हुए यह बतलाया गया है कि अकबरी दरबार मे हिन्दी का कितना सम्मान था। इस क्रम मे दरबार मे आने जाने वाले और अकबर के सम्पर्क मे आये हुए तथा स्थायी वृत्ति पाने वाले हिन्दी-कवियों का सक्षिप्त परिचय देने के अनन्तर अकबरी दरबार के प्रतिष्ठित हिन्दी-कवियो की चर्चा की गयी है।

इन्हीं लब्धप्रतिष्ठ कवियो का जीवन-चरित दूसरे अध्याय का प्रतिपाद्य है। इस अध्याय मे नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गग और अब्दुर्रहीम खानखाना का जीवन-चरित प्रस्तुत किया गया है।

तीसरा अध्याय 'रचनाए' है। इनमे पूर्वोक्त कवियो की रचनाओ का अनुसधानपूर्वक अध्ययन किया गया है। खोज-रिपोर्टो, विविध पुस्तकालयो और इतिहास-ग्रन्थो मे उपलब्ध रचनायों की प्रामाणिकता आदि पर विचार करते हुए कवियो के काव्यो के वर्ण्य विषय का विवेचन किया गया है।

चौथे अध्याय 'काव्य-विवेचन' मे काव्य के अन्तरग और बहिरग पक्षो का परिशीलन है। रूपवर्णन, सयोग और विप्रलभ वर्णन, नायिका-भेद, भक्तिकाव्य, वीरकाव्य, प्रकृतिवर्णन, नीति-उपदेश, उक्तिवैचित्र्य आदि का विवेचन है। इस अध्याय मे इन कवियो के काव्य पर विदेशी शब्दो के प्रभाव पर भी विचार किया गया है। तद्भवशब्दो के प्रयोग और उनके रूप, कन्नौजी, बुन्देली, खड़ी-बोली, अवधी-शब्दो के प्रयोग, वृत्तियो के आश्रय, लाक्षणिक प्रयोग, मुहावरे और लोकोक्तियो आदि का भी अध्ययन किया गया है। अन्त मे छन्दोयोजना तथा अलकार-प्रयोग का भी पर्यालोचन है।

पाचवा अध्याय 'सामाजिक जीवन एवं ऐतिहासिक तथ्य' है। पहले इन कवियो के काव्य मे अभिव्यक्त अकबरकालीन भारतीय रहन-सहन, विश्वास, उपासना, उत्सव, वेशभूषा आदि का अध्ययन किया गया है। तदनन्तर इन काव्यकृतियो में निबद्ध ऐतिहासिक घटनाओ पर विचार किया गया है। इस दृष्टि से नरहरि, तानसेन और गग के काव्य का अनुशीलन किया गया है।

परिशिष्ट मे नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गग, सूरदास मदनमोहन, राजा

आसकरण और राजा टोडरमल आदि अकवरी दरवार के कवियो की अप्रकाशित अथवा दुष्प्राप्य रचनाए सकलित कर दी गयी है जिससे अनुसधान की दृष्टि से प्रवन्ध का मूल्य वढ गया है।

## ५३. हिन्दी-साहित्य पर संस्कृत-साहित्य का प्रभाव (१४००—१६०० ई०)

[१६४६ ई०]

श्री सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' का प्रवन्ध 'हिन्दी-साहित्य पर सस्कृत-साहित्य का प्रभाव (१४००–१६०० ई०)' सन् १६४६ ई० मे *राजस्थान विश्वविद्यालय* द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। 'हिन्दी-साहित्य पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव' नाम से इस प्रवन्ध का प्रकाशन रामनारायण लाल, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहावाद, ने सन् १६५२ ई० मे किया।

इस प्रवन्ध मे ग्यारह अध्याय हैं। पहले अध्याय मे हिन्दी के सम्वन्ध से सस्कृत-साहित्य का सामान्य पर्यवेक्षण किया गया है। वैदिक साहित्य—सहिता, व्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, सूत्र-ग्रन्थ—का पर्यवेक्षण करते हुए हिन्दी से उसके सम्वन्ध का अनुमान किया गया है। इसके वाद सस्कृत-साहित्य—दर्शन स्मृति, पुराण, तन्त्र, महाकाव्य, नाटक तथा काव्य-शास्त्र—का परिचय देते हुए हिन्दी से उसका सम्वन्ध-निर्देश किया गया है।

दूसरे अध्याय मे हिन्दी-काव्य के रूप ( प्रवन्ध, मुक्तक आदि ), वर्ग और शाखाओ आदि पर सस्कृत-साहित्य की परम्परा का प्रभाव आका गया है प्रवन्धकाव्यो तथा मुक्तक-सग्रहो के नामकरण पर भी अध्येता ने सस्कृत-साहित्य का प्रभाव वतलाया है।

तीसरा अध्याय 'कथावस्तु और आधार' है। इस अध्याय में विस्तार के साथ आलोच्य काल (१४००-१६०० ई०) मे रचे गये महाकाव्यो तथा खड-काव्यो की कथावस्तु, पर सस्कृत-साहित्य का प्रभाव निरूपित किया गया है। उन रचनाओ पर भी विचार किया गया है जिन्हे भ्रम से प्रवन्धत्व प्रदान किया जाता है।

चौथे अध्याय मे हिन्दी-कवियो की वैराग्य-वृत्ति पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव निर्दशित किया गया है। पांचवें अध्याय मे सदाचार-निरूपण (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्संग, सहनशीलता और क्षमा, संतोष, अस्तेय, मौन, परोपकार, दया, परनिन्दा त्याग आदि) पर संस्कृत-साहित्य का प्रभाव दिखलाया गया है।

छठे अध्याय मे मन और उसके प्रकार तथा सातवे अध्याय मे योग-साधना पर संस्कृत-प्रभाव का आकलन है। हिन्दी मे योग-प्रवाह के स्रोत का अध्ययन करते हुए आसन-मुद्रा, नाडी-जाल, षट्चक्र, कुंडलिनी, प्राणायाम, सहजावस्था, अजपा, शब्द, शून्य आदि की (हिन्दी साहित्य मे) अभिव्यक्ति पर संस्कृत साहित्य (विशेषकर तन्त्र साहित्य) का प्रभाव दिखाया गया है।

आठवे अध्याय मे भक्तिभावना पर संस्कृत साहित्य के प्रभाव का प्रतिपादन है। भक्ति के उदय और विकास, स्वरूप, साधन, प्रकार, नाम की महिमा, भक्त के गुण व कोटिया, भक्ति के अन्तराय, उत्कृष्टता, भक्ति और ज्ञान, योग तथा कर्म, भक्ति और प्रपत्ति आदि अनेक महत्वपूर्ण पक्षो पर संस्कृत के प्रभाव का पर्यवेक्षण किया गया है।

नवें अध्याय मे तत्व, आत्मा, जीव, ब्रह्म, जगत्, माया आदि तथा अनवच्छेद-वाद, प्रतिबिम्बवाद, विवर्तवाद और परिणामवाद आदि से सम्बद्ध संस्कृत-साहित्य का हिन्दी-साहित्य मे अभिव्यक्त दार्शनिक विचारो पर प्रभाव निरूपित किया गया है।

दसवें अध्याय मे नीति-निरूपण तथा ग्यारहवे अध्याय मे हिन्दी-काव्यशास्त्र पर संस्कृत-साहित्य का प्रभाव निर्दशित किया गया है। रस, नायक-नायिका-भेद, अलंकार, दोष, वृत्ति आदि अनेक महत्वपूर्ण पक्षो पर संस्कृत के काव्य-शास्त्र-साहित्य के प्रभाव को स्पष्ट किया गया है।

परिशिष्ट मे १८००—१६०० ई० तक की प्रमुख हिन्दी-रचनाओ की सूची दे दी गयी है।

## ५४. भोजपुरी ध्वनियो और ध्वनि-प्रक्रिया का अध्ययन

[१६५० ई०]

श्री विश्वनाथ प्रसाद का प्रवन्ध 'भोजपुरी ध्वनियो और ध्वनि-प्रक्रिया का अध्ययन' सन् १६५० ई० मे लदन विश्वविद्यालय की पी-एच० टी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## ५५. रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम

[१६५० ई०]

कु० सी० वॉदवील को 'रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम' का अध्ययन प्रस्तुत करने पर सन् १६५० ई० मे पेरिस (सारवोन) विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि मिली थी। यह ग्रथ सन् १६५२ मे फ्रेंच मे प्रकाशित हुआ। इसका हिन्दी-अनुवाद भी प्रकाशित होने जा रहा है।

## ५६. हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी-प्रभाव

[१६५० ई०]

श्री विश्वनाथ मिश्र का प्रवन्ध 'हिन्दी भाषा और साहित्य पर अग्रेजी-प्रभाव' सन् १६५० ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रवन्ध अभी तक अप्रकाशित है।

इस प्रवन्ध मे वारह अध्याय हैं। पहले अध्याय मे विपय-प्रवेश है। जिसमे यह वतलाया गया है कि प्रस्तुत प्रवन्ध में हिन्दी भाषा और साहित्य पर अग्रेजी भाषा और साहित्य के (अमेरिकन और यूरोपमहाद्वीपीय लेखको के भी) प्रभाव का अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्याय मे अग्रेजी प्रभाव के आगमन और उसके आरभिक सपर्कों तथा अग्रेजी शासन, सस्कृति आदि की विचारचर्चा की

गयी है। चौथे अध्याय मे अंग्रेजी प्रभाव के विभिन्न माध्यमो (शिक्षा संस्थाओ, ईसाई मिशनरियो, धार्मिक और राजनैतिक आदोलनो, प्रेसो, सांस्कृतिक और साहित्यिक संस्थाओ आदि) के आधार पर अंग्रेज़ी प्रभाव का अध्ययन किया गया है। पांचवें अध्याय मे यह बतलाया गया है कि अंग्रेज़ी प्रभाव के कारण हिन्दी के विकास की प्रक्रिया मे काफी प्रगतिशीलता आयी। भाषा का स्तर ऊंचा हुआ, नए साहित्यिक केन्द्रो की स्थापना हुई, कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि साहित्यरूपो मे अनेक परिवर्तन हुए।

छठे अध्याय मे अंग्रेजी भाषा की प्रमुख विशेषताए बतलाते हुए यह निदर्शित किया गया है कि अंग्रेजी प्रभाव के कारण शब्दसमूह, मुहावरो और कहावतो, व्याकरण, विरामचिह्न, कारक, शैली आदि की दृष्टि से हिन्दी की अभिव्यजना-शक्ति मे वृद्धि हुई है। सातवें अध्याय मे हिन्दी-कविता पर अंग्रेजी प्रभाव की समीक्षा है। आरम्भ मे अंग्रेजी कविता की प्रमुख विशेषताओ और अंग्रेजी से हिन्दी मे किये गये अनुवादो का उल्लेख है। तदनन्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी, श्रीधर पाठक, लोचन प्रसाद पाडेय, जयशंकर प्रसाद, अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियो पर पडने वाले अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण है। आठवें अध्याय का प्रतिपाद्य विषय नाटक है। अंग्रेजी के प्रभाव के पूर्व हिन्दी नाटक, अंग्रेजी प्रभाव के स्रोत, अंग्रेजी के अनूदित नाटक आदि शीर्षको के अन्तर्गत अध्याय की भूमिका प्रस्तुत करके भारतेन्दु से प्रसाद तक के नाटककारो पर अंग्रेज़ी प्रभाव का अनुशीलन किया गया है। नवें अध्याय मे हिन्दी-उपन्यास और दसवें अध्याय मे हिन्दी-कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव का निरूपण है।

ग्यारहवें अध्याय मे अन्य साहित्यरूपो पर अंग्रेजी प्रभाव का अनुसधान किया गया है। उस अध्याय मे मुख्यतया हिंदी के निबन्ध-साहित्य और आलोचना-साहित्य तथा गौण रूप से जीवनचरित, इतिहास, आचारशास्त्र, सामयिक साहित्य आदि पर अंग्रेजी के प्रभाव की आलोचना है। बारहवा अध्याय 'उपसहार' है जिसमे हिन्दी पर अंग्रेजी-प्रभावो का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनका मूल्याकन किया गया है। ग्रन्थ के परिशिष्टो मे दी गयी सामग्री ('अवध अखबार' से उद्धरण, हिन्दी-प्रदेश के पाठ्यक्रमो मे निर्धारित अंग्रेजी के लेखको और कृतियों की सूची, अंग्रेजी और बंगला के अनूदित ग्रन्थो की सूची) प्रस्तुत अध्ययन के लिए उपयोगी है।

## ५७. गीतिकाव्य का उद्गम, विकास और हिन्दी-साहित्य मे उसकी परम्परा

[१९५० ई०]

श्री शिवमगलसिह 'सुमन' को उनके प्रवन्ध 'गीतिकाव्य का उद्गम, विकास और हिन्दी-साहित्य मे उसकी परम्परा' पर सन् १९५० ई० मे काशी विश्व-विद्यालय ने डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की।

प्रथम प्रकरण मे गीतिकाव्य का उद्गम और विकास प्रदर्शित किया गया है। इसमे चार परिच्छेद हैं। पहले परिच्छेद मे गीतो की आदिम अभिव्यक्ति पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे परिच्छेद मे गीतिकाव्य के स्वरूप और विकास का विवेचन है। तीसरे परिच्छेद मे विषय की दृष्टि से विभाजन किया गया है और चौथे परिच्छेद मे गीतिकाव्य के आलोचनात्मक मानदडो का निरूपण हुआ है।

द्वितीय प्रकरण मे पाली और प्राकृत साहित्य के अन्तर्गत गीति-तत्वो की छानवीन की गयी है। ऋग्वेद मे गीतात्मक प्रसगो की स्थिति है। वौद्ध-साहित्य के नवोन्मेष के साथ-साथ नव्योद्भावना हुई। पाली के अनन्तर प्राकृत नाटको के अन्तर्गत प्राकृत-गीतो मे भी गीतितत्वो का पोषण होता रहा। तृतीय प्रकरण मे अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी की भूमिका मे गीतितत्व का विकास दिखाया गया है।

चतुर्थ प्रकरण 'वज्रयानी सिद्धो के गाथा और दोहो का स्वरूप' है। इन सिद्धो मे कुछ प्रमुख कवियो (सरहपा, गुडरीपा, कण्हपा आदि) के साम्प्रदायिक गीतो का विवेचन किया गया है। सिद्धकाव्य के अन्तर्गत गीतिकाव्य के वाह्य स्वरूप का निरूपण भी है।

पचम प्रकरण मे नाथपथी योगियो की साधनात्मक पदावली पर विचार किया गया है। गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ आदि नाथपथी सिद्धो के साधनापरक पदो का साहित्य पर वडा व्यापक प्रभाव पडा था—इस प्रकरण मे यह भी प्रदर्शित किया गया है।

षष्ठ प्रकरण मे हिन्दी-काव्य-विकास का प्रारम्भिक रूप प्रदर्शित किया गया है। इस युग मे प्रवन्ध और मुक्तक दोनों धाराओ का विकास हुआ। अमीर खुसरो ने साहित्य और सगीत के समन्वित विकास द्वारा हिन्दी-काव्य मे एक

नवीन युग का समारम्भ किया। इस युग का साहित्य अनेक महान् व्यक्तित्वों से प्रभावित हुआ। जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति आदि महान् गीतकारों का प्रभाव इस दिशा में अविस्मरणीय है।

सप्तम प्रकरण में सन्त-साहित्य के अन्तर्गत गीतात्मक उन्मेष का अध्ययन किया गया है। इस युग में पद-साहित्य का महत्वपूर्ण सृजन हुआ। यह सृजन दक्षिण के नामदेव आदि सन्त कवियों से प्रभावित हुआ। कबीर, धरमदास, नानक, मलूकदास, दादू तथा सुन्दरदास आदि अनेक निर्गुणमार्गी कवियों द्वारा विपुल साहित्य रचा गया। दादू और कबीर आदि के गीतों में भावना की तीव्रतम व्यंजना पायी जाती है। वस्तुतः सन्तकाव्य में गीतिकाव्य के विकास के प्रचुर संकेत उपलब्ध होते हैं।

अष्टम प्रकरण में रामभक्ति-काव्य के अन्तर्गत गीतिकाव्य पर विचार किया गया है। तुलसी के गीतिकाव्य का विशेष अध्ययन किया गया है। नवम प्रकरण में कृष्णभक्ति-शाखा के अन्तर्गत गीतिकाव्य की विवेचना की गयी है। सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, छीतस्वामी आदि अष्टछाप के कवियों का प्रमुख रूप से अध्ययन किया गया है।

दशम प्रकरण में यह बतलाया गया है कि रीतिकाल गीतिकाव्य के ह्रास का युग है। इस युग में लोकसाहित्य के स्थान पर परवर्ती संस्कृत-काल की प्रवृत्तियों की परम्परा उपलब्ध होती है, अर्थात् इस युग में तीव्रतम भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति के स्थान पर उक्तिवैचित्र्य के प्रति ही अधिक मोह रहा। हाँ, स्वच्छन्द कवियों की परम्परा में गीतिकाव्य का विकास अवश्य उपलब्ध होता है।

## ५८. आचार्य केशवदास—एक अध्ययन

[ १९५० ई० ]

श्री हीरालाल दीक्षित का प्रबन्ध 'केशवदास—एक अध्ययन' सन् १९५० ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। केशवदास-विषयक अनुसंधान पर उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया यह सर्वप्रथम प्रबन्ध है। लखनऊ विश्वविद्यालय ने इस प्रबन्ध का प्रकाशन स०

२०११ मे 'आचार्य केशवदास' के नाम से किया।

इस प्रबन्ध मे सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे पृष्ठभूमि का अध्ययन है। इसमे केशव के काव्य-क्षेत्र, उनकी पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्परा, तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो एव केशव के काव्य पर पडने वाले प्रभावो का विवेचन है। द्वितीय अध्याय मे अन्त साक्ष्य, बहि'साक्ष्य तथा किवदन्तियो के रूप मे उपलब्ध आधारभूत सामग्री की परीक्षा करके केशवदास के जीवनवृत्त की व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। साथ ही उनके विविध-विषयक ज्ञान का निदर्शन किया गया है। तृतीत अध्याय मे केशवदास के ग्रथो की प्रामाणिकता पर विचार करके उनके प्रामाणिक ग्रन्थो ( रसिकप्रिया, नखशिख, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंहदेवचरित, रतनबावनी, विज्ञान-गीता और जहागीरजसचन्द्रिका ) का सक्षिप्त परिचय है। इसी मे उन ग्रथो का काव्यस्वरूप तथा विषय के अनुसार वर्गीकरण प्रस्तुत करके उनके रचना-क्रम तथा उनकी टीकाओ पर विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे केशव-दास की काव्य-कला—उनकी प्रबन्धरचना, चरित्रचित्रण, भावव्यजना, वर्णन-शैली, सवादयोजना, भाषाशैली, छन्दोविधान तथा अलकारप्रयोग—का विवेचन है। पचम अध्याय मे केशवदास के आचार्यत्व की समीक्षा है। आरम्भ मे पूर्ववर्ती रीतिग्रन्थो की परम्परा और केशवदास द्वारा किये गये गण-अगण-विषयक विचार, कविभेद-वर्णन तथा कवि रीति-वर्णन का सक्षिप्त निरूपण करके उनके ग्रन्थो मे किये गये अलकारभेद-वर्णन, रसविवेचन तथा नायक-नायिका-भेद-वर्णन की विस्तारपूर्वक आलोचना की गयी है। अध्याय के अन्त मे भूषण, भिखारीदास, मतिराम आदि अन्य रीतिकारो के साथ आचार्य केशव-दास का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। षष्ठ अध्याय मे केशव की विचार-धारा का निरूपण है। उनके ब्रह्म, जीव, माया सृष्टि, मोक्ष, साधन आदि से सम्बन्ध रखने वाले दार्शनिक विचारो, उनकी रामभावना, नारीभावना, राजनैतिक तथा सामाजिक विचारो का विश्लेषण करके 'विज्ञानगीता' की 'प्रबोधचन्द्रोदय' आदि सस्कृत-ग्रन्थो से तुलना की गयी है। सप्तम अध्याय मे केशवदास की कृतियो मे निबद्ध ऐतिहासिक सामग्री की परीक्षा करके उनके एतद्विषयक योगदान का मूल्याकन है। अध्याय के अन्त मे उपसहार करते हुए कवि, आचार्य तथा 'इतिहासकार' केशवदास के महत्व का आकलन है।

## ५६. द्विवेदीयुगीन हिन्दी-कविता (१६०१-१६२० ई०) मे युगान्तर—एक अध्ययन

[ १६५० ई० ]

श्री ब्रह्मदत्त मिश्र 'सुधीन्द्र' को उनके प्रबन्ध 'द्विवेदीयुगीन हिन्दी-कविता (१६०१-२० ई०) मे युगान्तर—एक अध्ययन' पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। 'हिन्दी-कविता मे युगान्तर' नाम से इस प्रबन्ध का प्रकाशन आत्माराम एड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, ने १६५० ई० मे किया। सन् १६५७ ई० मे इस ग्रन्थ का दूसरा सस्करण प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध छ अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे इस पुनरुत्थान का पूर्वाभास दिया गया है। लेखक का मत है कि इस नव-जागरण का श्रेय पाश्चात्य सम्पर्क को है और इस सम्पर्क के माध्यम अग्रेज शासक थे। इस अध्याय मे आलोच्य विषय का विहगावलोकन है।

दूसरा अध्याय 'जीवन की पृष्ठभूमि' है। विवेच्यकाल की सास्कृतिक पीठिका, राजनीतिक गतिविधि, सामाजिक स्थिति, कला और साहित्य तथा साहित्य की प्रेरक युगप्रवृत्तियो का अनुशीलन इस अध्याय मे किया गया है।

तीसरे अध्याय मे कविता के सर्वोदय का प्रतिपादन किया गया है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने प्राचीन कविता मे नवजीवन-सचार द्वारा नवीनता और आधुनिकता का श्रीगणेश किया था। यह काव्योत्थान का प्रथम चरण था। इस प्रसग मे भारतेन्दु-काल का मूल्याकन किया गया है। इस क्राति का द्वितीय चरण द्विवेदी-काल था। लेखक का विचार है कि इस काल की भाषायी क्राति के 'द्रष्टा' और 'अधिनायक' दोनो महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। तदनन्तर द्विवेदी जी की इस क्रान्ति-साधना का अध्ययन किया गया है। 'कवि-कर्तव्य' द्वारा द्विवेदी जी ने कविता-क्षेत्र मे एक सर्वांगीण क्राति का बीजवपन किया था। बहिरग अर्थात् रूप और अन्तरग अर्थात् रग दोनो ही क्षेत्रो मे क्रान्ति के अनुष्ठान का आरम्भ उन्होंने किया।

चौथा अध्याय कविता के क्रम-विकास का अध्ययन प्रस्तुत करता है। अनुसधाता ने इस क्रम को निम्नलिखित चार कोटियो मे रखा है

| | |
|---|---|
| (क) चमत्कारात्मक कोटि | 'सूक्तिकाव्य' |
| (ख) वर्णनात्मक कोटि | 'इतिवृत्तात्मक काव्य' |
| (ग) उपदेशात्मक कोटि | 'नीति-काव्य' |
| (घ) भावनात्मक कोटि | 'भाव-काव्य' |

पाँचवा अध्याय 'अन्तरग-दर्शन' है। इस दर्शन के अन्तर्गत लेखक ने सात कविता-धाराओ का अध्ययन किया है। सबसे पहले आख्यानक-कविता-धारा का विवेचन है। ये आख्यान पौराणिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक तीन प्रकार के हैं। इन विविध आख्यानो के प्रणयन मे कारण-भूत प्रेरणाओ का भी अनुशीलन किया गया है। इनके वाद इन त्रिविध आख्यानो की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। दूसरी धारा सामाजिक काव्य-धारा है। समाज की प्रेरणाओ और प्रवृत्तियो पर विचार करते हुये इस कविता-धारा के नैतिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक पक्षो का विवेचन किया गया है। तीसरी धारा आदर्शवाद की है। चौथी काव्यधारा राष्ट्रीय है। इस अध्याय मे इस धारा की व्यवस्थित विवेचना प्रस्तुत की गयी है। चौथी धारा के रूप मे प्रकृति और प्रेमविषयक रचनाओ पर और पाँचवी के रूप में 'भक्ति' और 'रहस्य' विषयक रचनाओ पर विचार किया गया है। इसी प्रकार प्रतीक और सकेत को छठी तथा रहस्यवाद और छायावाद को सातवी काव्यधारा मानकर उनका अध्ययन किया गया है।

छठे अध्याय मे कला-समीक्षा की गयी है। यह विस्तृत समीक्षा भाषा, सजीवता, शब्दनिर्माण, छन्द-विकास, गीति-विन्यास आदि अनेक दृष्टियो से की गयी है। इसी अध्याय मे 'द्विवेदीकाल-चक्र' प्रस्तुत किया गया है जो विवेच्य-युग की विशेष महत्त्वपूर्ण कृतियो तथा घटनाओ का सूचक है।

## ६०. प्राकृत-अपभ्रंश-साहित्य और उसका हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव

[१९५१ ई०]

श्रीरामसिंह तोमर को उनके प्रबन्ध 'प्राकृत-अपभ्रंश-साहित्य और उसका हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव' पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् १९५१ ई० में डी० फिल० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबन्ध दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग के भी दो उपभाग किये गये हैं। (क) उपभाग में प्राकृत-साहित्य और (ख) उपभाग में अपभ्रंश-साहित्य का विवेचन किया गया है। (क) के पहले अध्याय में जैन प्राकृत-साहित्य की समीक्षा की गयी है। दूसरे अध्याय में साहित्यिक प्राकृत का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन के विषय इस प्रकार हैं—मुक्तक-साहित्य, प्रबन्धात्मक साहित्य, नाटकीय प्राकृत, उत्तर-पश्चिम-सीमान्त की प्राकृत और शिला-लेखों की प्राकृत। (ख) के पहले अध्याय में अपभ्रंश भाषा तथा अपभ्रंश के भेदों का दिग्दर्शन कराया गया है। दूसरे अध्याय में 'अपभ्रंश-साहित्य का वर्गीकरण' है। तीसरे अध्याय में जैन अपभ्रंश-साहित्य की मुक्तक, रहस्यवादी तथा उपदेशात्मक काव्यधारा और चौथे में जैन अपभ्रंश-साहित्य की प्रबन्धात्मक रचनाओं का अनुशीलन किया गया है। पांचवें अध्याय में बौद्ध सिद्धों की अपभ्रंश-रचनाओं की समीक्षा की गयी है। छठे अध्याय में शैवों के अपभ्रंश-भाषा में लिखे गये धार्मिक साहित्य का विवेचन किया गया है। सातवें अध्याय में ऐहिकता-परक अपभ्रंश-साहित्य का परिचय दिया गया है।

द्वितीय भाग में हिन्दी पर प्राकृत-अपभ्रंश-साहित्य के प्रभाव का आकलन किया गया है। पहले अध्याय में यह प्रदर्शित किया गया है कि इस साहित्य ने हिन्दी के काव्यरूपों को किस प्रकार प्रभावित किया है। दूसरे अध्याय में रचनाशैली, छन्दों, अलंकारों आदि पर प्राकृत-अपभ्रंश-साहित्य का प्रभाव दिखलाया गया है। तीसरे अध्याय में कथानकों पर पड़े प्रभाव का निर्देश किया गया है। चौथा अध्याय 'भावधारा और उपसंहार' है।

हिन्दी साहित्य पर प्राकृत-अपभ्रंश-साहित्य का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। वीरगाथाकाल और भक्तिकाल के हिन्दी-साहित्य पर यह प्रभाव अत्यन्त मुखर

# ६२. भारतीय साधना और सूर-साहित्य
## [१९५१ ई०]

प० मुशीराम शर्मा का प्रवन्ध 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य' स १९५१ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृ हुआ। इस ग्रन्थ का प्रकाशन आचार्य भावना सदन १६।४४, पटकापुर, कानपु ने स० २०१० मे किया।

इस प्रवन्ध मे ग्यारह अध्याय हैं। सूर-साहित्य की भक्तिभावना के पृष्ठाधा रूप मे लिखित पहले अध्याय मे भारतीय साधना की विशेषताओ, उसके विवि प्रकारो, भक्ति के विकास और सगुणोपासना के आधार पर प्रतिष्ठित भागव भक्ति का विश्लेपण है। दूसरे अध्याय मे सूर-साहित्य का विवेचन है। सू साहित्य को दो भागो—वल्लभाचार्य से भेंट होने के पूर्व रचित विनय-पद ए उनकी भेंट के उपरान्त रचित हरिलीला के पद—मे विभाजित करके उसव अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्याय मे उस पर नाथपथी, कवीरपथी तथ वैष्णव आदि सम्प्रदायो के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप मे पडने वाले प्रभावो व आकलन किया गया है।

चौथे अध्याय के ग्यारह परिच्छेदो मे हरिलीला के स्वरूप, पुष्टिमार्गीय भ से उसके सम्वन्ध, प्राचीन एव मध्यकालीन सस्कृत-साहित्य मे उसकी अभिव्य आदि का निरूपण है। वेदो, पुराणो, तन्त्र-ग्रन्थो, पुष्टिमार्ग, आधुनिक विज्ञा आदि के अनुसार भी हरिलीला की व्याख्या की गयी है। पाचवें अध्याय सूरदास और पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त-पक्ष तथा सेवा-पक्ष की विस्तृत व्याख्या है छठे अध्याय मे सूरदास द्वारा वर्णित हरिलीला के सृजन-पक्ष एव-ध्वस-पक्ष— दोनो का कवि के पदो के आधार पर उद्घाटन किया गया है, सूर के काव मे चित्रित हरि-लीला, दावानल-पान, असुर-वध आदि की समालोचना है।

सातवें अध्याय मे सास्यो, शैवो, वेदान्तियो आदि के शक्ति-शक्तिमत्-सम्वन् मतो की भूमिका मे सूरदास के राधाकृष्ण का स्वरूप-निरूपण है। आठ अध्याय मे भागवत, पद्मपुराण आदि मे अकित शृगारी हरि-लीला से प्रभावि सूरकाव्यगत शृगार रस की समीक्षा है, सूर की मौलिक एव स्वतत्र उद्भावन शक्ति की ओर भी सकेत किया गया है। नवें अध्याय मे सूर-साहित्य मे उपस्था-पित व्रज-सस्कृति का विवेचन है। दसवें अध्याय मे सूर-साहित्य मे अभिव्यक्त

पुष्टिमार्गीय सेवा, भक्ति और हरिलीला का जो प्रभाव परवर्ती हिन्दी-कृष्णकवियो (देव, विहारी आदि) पर पड़ा उसकी समीक्षा की गयी है। ग्यारहवें अध्याय मे सूर-साहित्य की विशेषताओ का दिग्दर्शन कराकर हिन्दी-काव्यक्षेत्र मे उनका स्थान निर्धारित किया गया है। परिशिष्ट मे वायुपुराण तथा पद्मपुराण मे वर्णित कृष्णलीला के कुछ उद्धरण हैं और अन्त मे सूर-सम्बन्धी साहित्य की विवेचना की गयी है।

## ६३. कवीर की विचारधारा

[१९५१ ई०]

श्री गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसधान का विषय था 'कवीर की विचारधारा'। उक्त प्रवन्ध पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५१ ई० मे उन्हे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। उपाधि के लिए स्वीकृत मूल प्रवन्ध का किंचित् परिवर्तित रूप 'कवीर की विचारधारा' नाम से ही साहित्य निकेतन, कानपुर, द्वारा स० २००९ मे प्रकाशित हुआ।

इस ग्रन्थ मे आठ प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण 'विषय-प्रवेश' है। इसमे कवीर के विषय मे प्रचलित अनेक भ्रान्तिपूर्ण धारणाओ का निराकरण करके वहि.साक्ष्य एव अन्त साक्ष्य का विवेचन है। कवीर के सम्बन्ध मे लिखित हिन्दी, उर्दू और अग्रेजी के आलोचनात्मक ग्रन्थो की परीक्षा करके प्रस्तुत अध्ययन के लक्ष्य का स्पष्टीकरण है। द्वितीय प्रकरण मे कवीर की विचारधार को प्रभावित करने वाले उपादानो—तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियो, कवीर के व्यक्तित्व, विविध धर्म-दर्शन आदि—का विश्लेषण किया गया है। तृतीय प्रकरण में कवीर द्वारा किये गये ब्रह्मनिरूपण, उनके ब्रह्मवर्णन की विशेषताओं, उनकी आत्मा-सम्बन्धी भावात्मक एव विचारात्मक उक्तियो तथा उनकी रहस्य-साधना की समीक्षा है। चतुर्थ प्रकरण मे कवीर के अध्यस्त तत्व सम्बन्धी विचारो का विवेचन है, जिसमे माया और जगत् की व्याख्या की गयी है, सक्षेप मे उनके आध्यात्मिक सिद्धान्त का निरूपण करके उनकी दार्शनिक पद्धति, आध्यात्मिक साधनो (योग और भक्ति) आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पचम प्रकरण मे कवीर के धार्मिक तथा

## ६५. हिन्दी-निबन्ध के विकास का आलोचनात्मक अध्ययन

[१९५१ ई०]

श्री उमेशचन्द्र त्रिपाठी को आगरा विश्वविद्यालय से सन् १९५१ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि मिली। उनका शोध-विषय था 'हिन्दी-निबन्ध के विकास का आलोचनात्मक अध्ययन'। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे सात अध्याय हैं। पहले अध्याय मे साहित्य और उसके अगो का सक्षिप्त विवेचन करके साहित्य मे निबन्ध का स्थान और महत्व बतलाया गया है। दूसरे अध्याय मे निबन्ध के तत्वो और प्रकारो की विवेचना है। तीसरे अध्याय मे हिन्दी-निबन्ध की पृष्ठभूमि का निरूपण किया गया है। चौथे अध्याय मे भारतेन्दु-युग को हिन्दी-निबन्ध का प्रस्तावना-काल मानकर तत्कालीन निबन्धो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पाचवें अध्याय मे द्विवेदी-युगीन निबन्धो की आलोचना है। यह हिन्दी-निबन्ध का सवर्धन काल है। छठे अध्याय मे आधुनिक युग के निबन्धो का अनुशीलन किया गया है। यह हिन्दी-निबन्ध का प्रौढ काल है। सातवें अध्याय मे हिन्दी-निबन्ध-साहित्य पर पडने वाले पाश्चात्य प्रभावो का आकलन है। उपसहार मे हिन्दी के निबन्ध-साहित्य का मूल्याकन किया गया है।

## ६६. हिन्दी-साहित्य में आलोचना का उद्भव और विकास

[१९५१ ई०]

श्री भगवत्स्वरूप मिश्र का प्रबन्ध 'हिन्दी-साहित्य मे आलोचना का उद्भव और विकास' आगरा विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९५१ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। 'हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास' के नाम से साहित्य सदन, देहरादून, ने इसे सन् १९५४ ई० मे प्रकाशित किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे सोलह अध्याय हैं। पहला अध्याय 'विषय-प्रवेश' है। इसमे साहित्य-समीक्षा के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। इसी अध्याय मे साहित्य-समीक्षा के प्रकारो की भी चर्चा की गयी है। दूसरे अध्याय में सस्कृत-साहित्य मे समीक्षा के स्वरूप का निरूपण है। सौ से अधिक पृष्ठो के इस

अध्याय मे संस्कृत-साहित्य-समीक्षा के मानदंडो का विशद विवेचन है। यह अध्ययन हिन्दी-समीक्षा के अध्ययन की पृष्ठभूमि को समझने मे सहायक है। तीसरे अध्याय 'हिन्दी मे रीतिग्रन्थ और साहित्यसमीक्षा' मे हिन्दी के प्रमुख रीतिग्रन्थो एव ग्रन्थकारो पर विचार किया गया है। इसमे रस तथा अलकार सम्प्रदाय से सम्बद्ध हिन्दी के रीतिकारो का भी विवेचन है।

चौथा अध्याय 'आधुनिक समीक्षा-पद्धति का प्रारम्भ' है। इस अध्याय मे भारतेन्दु-युग की समीक्षा का सिंहावलोकन किया गया है। पाचवें अध्याय का प्रतिपाद्य 'द्विवेदी-काल मे आलोचना का स्वरूप' है। इस प्रकरण मे प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्नों का भी अध्ययन किया गया है।

छठे अध्याय मे मिश्रबन्धुओं की समीक्षा-पद्धति पर विचार किया गया है। अध्येता की मान्यता है कि मिश्रबन्धुओं ने ही हिन्दी मे तुलनात्मक आलोचना का सूत्रपात किया। सातवे अध्याय मे तुलनात्मक समालोचना का अध्ययन किया गया है। इस क्रम मे प० पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु, प० कृष्ण बिहारी मिश्र, लाला भगवानदीन और छन्नूलाल द्विवेदी आदि की समीक्षा-शैली का विवेचन किया गया है। आठवे अध्याय मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कृतित्व का अनुशीलन है। इस अध्याय मे शुक्ल जी की समीक्षा-सम्बन्धी मान्यताओ तथा उन मान्यताओं के विषय मे हिन्दी के अन्य आलोचको के विचारो की विवेचना की गयी है। शुक्ल जी के कृतित्व पर विस्तार से विचार करते हुए अनुसधाता ने बतलाया है कि शुक्ल जी के सिद्धान्त-निरूपण मे युग के व्यापक साहित्य-दर्शन के आधारतत्व हैं और शुक्ल जी युग-प्रतिनिधि सिद्धान्तकार है।

नवे अध्याय मे समीक्षा की वर्तमान शैलियो का विवेचन है। दसवे अध्याय मे सौष्ठववादी अथवा स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का परिशीलन किया गया है। इस क्रम मे प्रसाद, पन्त, महादेवी, निराला, नन्ददुलारे वाजपेयी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, डा० नगेन्द्र आदि समीक्षको पर विचार किया गया है। ग्यारहवें अध्याय 'मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा' मे मुख्यतया इलाचन्द्र जोशी और 'अज्ञेय' की समीक्षा-शैली का अध्ययन है। बारहवा अध्याय 'मार्क्सवादी समीक्षा' है। तेरहवे अध्याय मे समीक्षा की अन्य शैलियो का निरूपण किया गया है। इसमे प्रधानतया प्रभाववादी आलोचना का अध्ययन है। चौदहवें अध्याय का प्रतिपाद्य चरितमूलक समीक्षा है। इस क्रम मे गंगाप्रसाद पाडेय की कृति 'महाप्राण निराला' का विवेचन है। सोलहवें अध्याय मे 'आधुनिक काल मे साहित्यशास्त्र'

का विवेचन है। उपसहार मे हिन्दी-समीक्षा के भविष्य पर विचार किया गया है।

## ६७. कृष्णकाव्य-धारा (सोलहवीं शती ई०) के प्रसिद्ध मुस्लिम कवि आलम का 'स्याम सनेही'

[१९५१ ई०]

श्री सरनदास भणोत को उनके प्रबन्ध "कृष्णकाव्य-धारा (सोलहवी शती ई०) के प्रसिद्ध मुस्लिम कवि आलम का स्याम सनेही" पर पजाब विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९५१ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी। यह प्रबन्ध अभी तक अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे नौ अध्याय है। पहले अध्याय मे हस्तलिखित प्रतियो का विवरण है। दूसरे अध्याय मे 'स्याम स्नेही' के रचयिता पर विचार किया गया है। इस अध्याय मे तीन परिच्छेद हैं। पहले परिच्छेद मे आलम-विषयक विभिन्न वाद-विवादों का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। दूसरे परिच्छेद मे आलम के विषय मे स्थापित की गयी विभिन्न मान्यताओ की परीक्षा की गयी है। तीसरे परिच्छेद मे आलम की जीवनी और विचारधारा का अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्याय मे आलम के अप्रकाशित ग्रन्थो का अनुसधानात्मक अध्ययन है। चौथे अध्याय मे आलम की प्रकाशित कृतियो की विवेचना की गयी है। पाचवें अध्याय मे आलम के 'स्याम स्नेही' और उसकी प्रतिपाद्य वस्तु का निरूपण है। छठे अध्याय मे 'स्याम स्नेही' और 'श्रीमद्‌भागवत' का तुलनात्मक अध्ययन है। सातवें अध्याय मे छ परिच्छेद है जिनमे क्रमश नन्ददास के 'रुक्मिणी मगल', पृथ्वीराज राठौर-कृत 'वेली', हृदयराम के 'रुक्मिणी मगल,' 'प्रेमसागर', रघुराज सिंह के 'रुक्मिणी परिणय,' और 'कृष्णायन' की तुलना मे 'स्याम स्नेही' की समीक्षा की गयी है। आठवें अध्याय मे 'स्याम स्नेही' की भाषा, शैली और छन्द का अनुशीलन है। नवें अध्याय मे हिन्दी-साहित्य मे आलम का स्थान निर्धारित किया गया है।

## ६८. भारतीय नाटकों का उद्भव और विकास (हिन्दी नाटकों का विशेष अध्ययन)

[१९५१ ई०]

श्री शिवनन्दन पाडेय को सन् १९५१ ई० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से उनके प्रबन्ध 'भारतीय नाटकों का उद्भव और विकास' प्रस्तुत करने पर डी० फ़िल० की उपाधि प्राप्त हुई।

## ६९. भोजपुरी लोक-साहित्य

[१९५१ ई०]

श्री कृष्णदेव उपाध्याय का प्रबन्ध 'भोजपुरी लोक-साहित्य' सन् १९५१ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## ७०. हिन्दू कवियो के प्रेमाख्यान (सं० १०००-१९१२)

[१९५१ ई०]

लखनऊ विश्वविद्यालय से श्री हरिकान्त श्रीवास्तव का प्रबन्ध 'हिन्दू कवियो के प्रेमाख्यान (सं० १०००-१९१२)' सन् १९५१ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। सन् १९५५ ई० मे इसका प्रथम संस्करण हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी द्वारा प्रकाशित किया गया।

प्रस्तुत प्रबन्ध के एक तिहाई भाग मे सामान्य विवेचन है और बाद के दो तिहाई भाग मे प्राप्य ग्रन्थो का विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सामान्य अध्ययन सोलह शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। अनुसंधाता ने सर्वप्रथम भारतीय प्रेमाख्यानो की परम्परा का निर्देश करते हुए मध्यकालीन प्रेमाख्यानो को ऋग्वेद के यम-यमी-संवाद और पुरूरवा-उर्वशी के प्रेमाख्यान से जोड़ा है। इसके

वाद हिन्दी-साहित्य के सन्धिकाल के रूप में अपभ्रंश-साहित्य और उसके प्रेमाख्यानो का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसके पश्चात् लेखक ने हिन्दुओ के प्रेमाख्यान ग्रन्थो का परिचय देते हुए प्रेमाख्यानो पर पडने वाले विभिन्न प्रभावो का अनुशीलन किया है। तदनन्तर प्रेम-व्यजना पर विचार किया गया है। अगले दो शीर्षको के अन्तर्गत प्रेमाख्यानो के लोकपक्ष और आध्यात्मिक पक्ष का पर्यालोचन किया गया है। तदनन्तर अध्येता ने इन प्रेमाख्यानो की ( काव्यतत्व की दृष्टि से ) समीक्षा प्रस्तुत की है। रस के विषय मे अनुशीलक का अभिमत है कि हिन्दू कवियो के प्रेमाख्यानो मे शृगार रस का प्राधान्य है, वीर उसका सहायक है। इससे वाद भाषा-शैली की दृष्टि से विवेचना की गयी है। भाषा-सम्बन्धी कठिनाइयो का उल्लेख करते हुए प्रेमख्यानो की भाषा का परिचय दिया गया है। हिन्दू प्रेमाख्यानको मे प्रकृति-चित्रण की समीक्षा की गयी है। तत्पश्चात् प्रेम-व्यजना के स्वरूप और प्रक्रिया का अध्ययन किया गया है। अगले शीर्षक मे हिन्दू प्रेमाख्यानकारो की मुसलमान कवियो से समानताओ और भिन्नताओ का प्रतिपादन है और इस सामान्य विवेचन के अन्तिम शीर्षक के अन्तर्गत अन्वेषक ने हिन्दू कवियो की देन का महत्वाकन किया है।

प्रवन्ध के शेष दो तिहाई भाग मे प्राप्य ग्रन्थो का विशिष्ट अध्ययन है। शुद्ध प्रेमाख्यान के रूप मे इन वाईस ग्रन्थो का अध्ययन किया गया है—'ढोला मारू रा दोहा', 'वेलि क्रिस्न रुक्मिणी री', 'रस रतन', 'छिताई वार्ता', 'माधवानल कामकन्दला' शीर्षक से विभिन्न रचनाकारो द्वारा रचित छ ग्रन्थ, 'बीसलदेव-रासो', 'प्रेमविलास प्रेमलता कथा', 'चन्द्र कुवरि री वात,' 'राजा चित्र मुकुट रानी चन्द्रकिरन की कथा', 'उषा की कथा', 'ऊषा चरित', 'उषाहरण', 'उषा चरित', ( जनकुज ) 'रमणशाह छवीली भटियारी की कथा', 'वात सायणी चारिणीरी' 'नल दमयन्ती कथा', 'प्रेम पयोनिधि' और 'रुक्मिणी परिणय'। अन्यापदेशिक काव्य मानकर निम्नलिखित आठ ग्रन्थो का अनुशीलन किया गया है—'पुहुपावती', 'नल चरित्र', 'नलदमन', 'नलदमयन्ती चरित', 'लैला मजनू', और 'रूपमजरी'। नीति-प्रधान प्रेम-काव्य के अन्तर्गत 'मधुमालती' ( चतुर्भुजदास-रचित ), 'माधवानल कामकन्दला चौपाई' और 'सत्यवती की कथा' का विवेचन किया गया है। 'माधवानल आख्यान' (आनन्दधरकृत) और आलमकृत 'माधवानल कामकन्दला' पर परिशिष्ट मे विचार किया गया है।

## ७१. सूफीमत और हिन्दी-साहित्य

[१९५१ ई०]

'सूफीमत और हिन्दी साहित्य' दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया सर्वप्रथम प्रबन्ध है। उपर्युक्त प्रबन्ध पर सन् १९५१ ई० मे श्री विमलकुमार जैन को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। हिन्दी-अनुसन्धान-परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, की ओर से आत्माराम एड सस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, ने सन् १९५५ ई० मे इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया।

यह ग्रन्थ दो भागो मे विभक्त-सा है। प्रथम छ अध्यायो मे सूफीमत के उद्भव और विकास का विवेचन है। शेष अध्यायो मे भारतीय वातावरण मे पले हुए सूफियो की हिन्दी-रचनाओ के आधार पर सूफी सिद्धान्तो की खोज की गयी है। इस प्रबन्ध मे कुल मिलाकर अठारह पर्व (अध्याय) है। पहले पर्व मे विदेशी एव भारतीय विद्वानो द्वारा प्रस्तुत की गयी विविध व्याख्याओ तथा परिभाषाओ की परीक्षा करके सूफीमत का सैद्धान्तिक निरूपण और उसके आविर्भाव का सक्षिप्त ऐतिहासिक पर्यालोचन किया गया है। दूसरे पर्व मे सूफी-मत के विकास का अनुसन्धान है। तीसरे पर्व मे सूफियो की ईश्वर, जगत् आदि से सम्बन्ध रखने वाली आस्थाओ और चौथे पर्व मे सूफी साधना की विवेचना की गयी है। पाचवें पर्व मे सूफीमत के भारत-प्रवेश के समय की परिस्थितियो का दिग्दर्शन कराया गया है। छठे पर्व मे यह बतलाया गया है कि भारत मे भक्ति का स्रोत कैसे प्रवाहित हुआ और आगे चलकर उसका सूफीमत से क्या सम्बन्ध स्थापित हुआ। सातवें पर्व मे हिन्दी के सूफी कवियो (कुतबन, मझन, मलिक मुहम्मद जायसी, उसमान, शेखनबी, कासिमशाह और नूरमुहम्मद) तथा उनकी काव्यकृतियो की विस्तारपूर्वक आलोचना करके अन्त मे सूफी काव्य की सामान्य विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है। आठवें पर्व मे हिन्दीकाव्यगत सूफी सिद्धान्तो का उपस्थापन है। नवे से पन्द्रहवें पर्व तक क्रमश हिन्दी सूफी काव्य मे निरूपित निराकार देव की उपासना, सृष्टि, जीव, गुरु, प्रेम और विरह, साधना तथा आचार का विवेचन है। सोलहवें और सत्रहवें पर्वों मे हिन्दी तथा उर्दू साहित्य पर सूफीमत के प्रभाव का निर्धारण किया गया है। अठारहवें पर्व मे विषय का उपसहार करते हुए सूफीमत के साहित्यिक योगदान का मूल्याकन किया गया है।

इस कृति मे सूफीमत की उत्पत्ति और उल्लास से लेकर आधुनिक हिन्दी-

काव्य पर उसके प्रभाव तक की आलोच्य वस्तु का अनुसन्धान है। भारतीय सूफियो की हिन्दी रचनाओ के आधार पर सूफी सिद्धान्तो के अनुशीलन का प्रयास है। 'निर्गुण' 'सगुण' आदि परिभाषिक शब्दो एव प्रचलित विश्वासो की व्याख्या है। मध्यकालीन कवयित्री मीरा और आधुनिक छायावाद, हालावाद आदि पर सूफी प्रभाव का अध्ययन भी है।

## ७२. मध्यकालीन हिन्दी-कवयित्रियां

[१९५१ ई०]

श्रीमती सावित्री सिन्हा का प्रबन्ध 'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रिया' सन् १९५१ ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। हिन्दी-अनुसन्धान-परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, की ओर से आत्माराम एड सस, काश्मीरी गेट, दिल्ली, ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९५३ ई० मे किया।

यह प्रबन्ध नौ अध्यायो मे विभक्त है। पहला अध्याय 'विषय-प्रवेश' है। इसमे नारी-साहित्य-विषयक सामग्री की प्राप्ति के साधनो एव उनमे उल्लिखित कवयित्रियो की चर्चा करके उपलब्ध सामग्री का विभाजन किया गया है। युग प्रवृत्तियो के अनुसार उनके तीन वर्ग किये गये हैं—डिंगल की कवयित्रिया, मध्यकालीन लेखिकाए तथा आधुनिक युग की प्रमुख लेखिकाए। दूसरे अध्याय मे आलोच्य विषय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है। हिन्दी-पूर्व काल (वैदिक युग से लेकर ह्वेनसांग की यात्रा तक) मे भारतीय नारी-जीवन के उत्कर्ष और अपकर्ष का दिग्दर्शन कराया गया है। तीसरे अध्याय मे तत्कालीन राजनैतिक एव सामाजिक परिस्थितियो की भूमिका मे डिंगल की नौ कवयित्रियो का अध्ययन है। चौथे अध्याय मे राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थिति का निर्देश करके निर्गुण-काव्य-धारा की (उमा, मुक्तावाई आदि) छ कवयित्रियो की समीक्षा की गयी है। पाचवें अध्याय मे कृष्णकाव्य-धारा की कवयित्रियो, विशेषकर मीरावाई का अपेक्षाकृत विस्तृत विवेचन है। छठे अध्याय का विषय है 'रामकाव्य-धारा की कवयित्रिया'। सातवे अध्याय मे रीतिकाल (शृंगार-काव्य-काल) की परिस्थितियो का सक्षिप्त निर्देश करके

शृंगार काव्य की लेखिकाओ (प्रवीणराय पातुर, रूपमती बेगम, तीन तरंग, शेख रंगरेजिन और सुन्दर कली) का अध्ययन किया गया है। आठवे अध्याय मे उन स्फुट काव्य-लेखिकाओ का विवेचन है जिन्होंने नीति, पतिसेवा, नारीधर्म आदि फुटकर विषयो पर रचनाए की हैं। नवे अध्याय मे विषय का उपसंहार करते हुए निष्कर्षरूप मे यह बतलाया गया है कि मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे नारी केवल प्रेरणा करने वाली वस्तु ही नही रही है अपितु उसने साहित्य-सृजन मे भी पर्याप्त सहयोग दिया है। हिन्दी-काव्य की प्राय सभी प्रवृत्तियो मे उस काल की नारियो की कृतिया उपलब्ध है। उनका योगदान, रचनाओ की मात्रा तथा काव्यगुणो की दृष्टि से, काफी महत्त्वपूर्ण है। ग्रन्थ के अन्त मे दो परिशिष्ट है। पहले परिशिष्ट मे सं० १९०० से १९५० तक की लेखिकाओ का संक्षिप्त परिचय है। दूसरे मे आधुनिक युग की लेखिकाओ के साहित्य का संक्षिप्त आभास दे दिया गया है। ये दोनो परिशिष्ट हिन्दी-कवयित्रियो के अध्ययन को पूर्णता प्रदान करने की दृष्टि से जोड़े गये है।

## ७३. पाश्चात्य (अंग्रेजी) नाटकों का हिन्दी नाटको पर प्रभाव

[१९५१ ई०]

श्री धर्म किशोर लाल का प्रबन्ध 'पाश्चात्य (अंग्रेजी) नाटको का हिन्दी नाटको पर प्रभाव' १९५१ ई० मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा अंग्रेजी की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे पाश्चात्य नाटको का आधुनिक हिन्दी-नाटक साहित्य पर प्रभाव दिखाया गया है। पाश्चात्य साहित्य की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधाराओ ने हिन्दी-साहित्य को पुनरुत्थान की ओर अभिमुख करने मे अधिक योग दिया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने सर्वप्रथम प्राचीन संस्कृत नाटको की परम्परा को अपनाते हुए भी पाश्चात्य नाटको का अनुवाद किया और उनकी टेकनीक की प्रेरणा प्रत्यक्ष रूप से तथा बंगला-साहित्य के माध्यम से ग्रहण की। इसी प्रकार रूपनारायण पाण्डेय, लाला सीताराम, जी० पी० श्रीवास्तव, जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, रामकुमार वर्मा, गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', भुवनेश्वर प्रसाद और उदयशंकर भट्ट ने

अग्रेजी-नाटक-साहित्य से प्रेरणा लेकर अपनी रचना का टेकनीकल सम्भार जुटाया। प्रस्तुत प्रवन्ध मे आधुनिक हिन्दी साहित्य के नाटककारो पर शेक्सपीयर, इव्सन, मोलरे, मैटरलिंक और वर्नार्ड शा का विचारगत और टेक्नीकल प्रभाव पूर्ण रूप से विवेचित है।

सपूर्ण प्रवन्ध की सामग्री दस अध्यायो मे सकलित है। पहले अध्याय मे सस्कृत-नाटक-तत्त्वो और ग्रीक-नाट्य-तत्त्वो की पृष्ठभूमि मे रूपक की कोटियो और विशेपताओ को सविस्तार विवेचित किया गया है। सस्कृत-नाटको के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए उसके जीवन-विपयक दृष्टिकोण का दार्शनिक प्रतिपादन किया गया है और रूपक की कथावस्तु, नायक, शैली आदि का परिचय दिया गया है। ग्रीक नाटको की यथार्थता के सदर्भ मे नाटक के पाश्चात्य तत्त्वो, चरित्र, सघर्प, कथोपकथन आदि पर विचार किया गया है। तथा सुखात और दु खात नाटको की तात्विक विवेचना की गयी है। साथ ही इव्सन की प्रकृतिवाद-विषयक विचारधारा के गुणदोप का विवेचन भी इष्ट है। भारतेन्दुपूर्व युग के नाटको पर सस्कृत नाटको के प्रभाव की और अनूदित नाटक-साहित्य की आलोचनात्मक व्याख्या भी की गयी है।

दूसरे अध्याय मे सस्कृत रूपको की मुख्य विशेपताओ का उल्लेख करते हुए उनका अग्रेजी के साथ सम्पर्क मे आना विवेचित है। ईसाई मिशनरियो और पारसी थियेटरो के माध्यम से राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक रूप से जो प्रभाव तमिल, मराठी, वगला, गुजराती, उर्दू और हिन्दी नाटको पर पडे उनका भी विस्तृत विवेचन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे भारतेन्दु वावू हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन नाटककारो की चर्चा है। भारतेन्दु को सस्कृत-परम्परा में आस्था थी। वे पाश्चात्य नाटको की ओर भी अभिमुख थे और अग्रेजी नाटको से प्रभावित होकर वगला और अग्रेजी की टेकनीक लेकर उन्होंने जितनी रचनाए की, उन सव की व्याख्या की गयी है।

चौथे अध्याय मे अनुवादो के माध्यम से पाश्चात्य नाटको का हिन्दी-नाटक पर प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। वगला के नाटककारो द्विजेन्द्रलाल राय, गिरीश घोष आदि तथा अग्रेजी के शेक्सपीयर, गाल्सवर्दी आदि के अनूदित नाटको पर विचार किया गया है। 'सम्मिलित अनुवाद और उपस्थापना' शीर्षक से अनेक अग्रेजी प्रभावो को प्रत्यक्ष किया गया है।

पाचवें अध्याय में वावू जयशकर प्रसाद के नाटको पर पाश्चात्य नाटको

का प्रभाव दिखलाया गया है। छठे अध्याय मे हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्द वल्लभ पन्त और उदयशंकर भट्ट पर पाश्चात्य नाटक-तत्वो का प्रभाव दिखाया गया है। सातवें अध्याय मे लक्ष्मीनारायण मिश्र की नौ रचनाओ पर पाश्चात्य नाटको का प्रभाव (प्रमुखत इब्सन के सदर्भ मे) विवेचित है। आठवें अध्याय मे सेठ गोविन्ददास की रगमच-विषयक विचारधारा को ध्यान मे रखते हुए उनके नाट्यग्रथो पर पाश्चात्य प्रभाव की समीक्षा की गयी है। नवें अध्याय में हिन्दी-एकाकी नाटको पर पाश्चात्य नाटको का सामान्य प्रभाव प्रदर्शित करते हुए रामकुमार वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, सद्गुरु शरण अवस्थी, गणेश प्रसाद, उदयशकर भट्ट और 'अश्क' की रचनाओ की समीक्षा की गयी है। दसवे अध्याय मे सिनेमा का नाटकीय प्रभाव, रगमच का प्रभाव और हिन्दी-नाटक के रगमच के भविष्य की सक्षिप्त चर्चा की गयी है। परिशिष्ट भाग मे सहायक मूल रचनाओ और आलोचनात्मक ग्रथो की एक विस्तृत सूची दी गयी है।

## ७४- हिन्दी-वीर-काव्य (१६००-१८०० ई०)

[१९५२ ई०]

श्री टीकमसिंह तोमर का प्रबन्ध 'हिन्दी-वीर-काव्य' सन् १९५२ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। इसका प्रथम सस्करण १९५४ ई० मे प्रकाशित हुआ। प्रकाशक है हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।

प्रस्तुत प्रबन्ध दो खडो मे विभक्त है। प्रथम खड 'साहित्यिक अध्ययन' है। इसमें आठ अध्याय है। पहले अध्याय 'ग्रन्थ-परिचय' मे केशवदास, जटमल, मतिराम, भूषण, लाल (गोरेलाल), श्रीधर, सदानन्द, सूदन, गुमान, पद्माकर, जोधराज आदि कवियों के ग्रन्थो का ऐतिहासिक परिचय दिया गया है। दूसरे अध्याय में इन ग्रन्थो के कथानक का अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्याय मे वीरकाव्य के चरित्रचित्रण का पर्यालोचन है। चौथे अध्याय का प्रतिपाद्य रस है। पहले सामान्य स्थिति पर विचार करके फिर वीरकाव्य में रसनिरूपण का विवेचन किया गया है। पाचवें से लेकर आठवें अध्याय तक

अंग्रेज़ी-नाटक-साहित्य से प्रेरणा लेकर अपनी रचना का टेकनीकल सम्भार जुटाया। प्रस्तुत प्रवन्ध मे आधुनिक हिन्दी साहित्य के नाटककारो पर शेक्सपीयर, इब्सन, मोलरे, मैटरलिंक और वर्नार्ड शा का विचारगत और टेक्नीकल प्रभाव पूर्ण रूप से विवेचित है।

सपूर्ण प्रवन्ध की सामग्री दस अध्यायो मे सकलित है। पहले अध्याय मे सस्कृत-नाटक-तत्त्वो और ग्रीक-नाट्य-तत्त्वो की पृष्ठभूमि मे रूपक की कोटियो और विशेषताओ को सविस्तार विवेचित किया गया है। सस्कृत-नाटको के उद्‌भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए उसके जीवन-विपयक दृष्टिकोण का दार्शनिक प्रतिपादन किया गया है और रूपक की कथावस्तु, नायक, शैली आदि का परिचय दिया गया है। ग्रीक नाटको की यथार्थता के सदर्भ मे नाटक के पाश्चात्य तत्त्वो, चरित्र, सघर्ष, कथोपकथन आदि पर विचार किया गया है। तथा सुखात और दु खात नाटको की तात्विक विवेचना की गयी है। साथ ही इब्सन की प्रकृतिवाद-विषयक विचारधारा के गुणदोप का विवेचन भी इष्ट है। भारतेन्दुपूर्व युग के नाटको पर सस्कृत नाटको के प्रभाव की और अनूदित नाटक-साहित्य की आलोचनात्मक व्याख्या भी की गयी है।

दूसरे अध्याय मे सस्कृत रूपको की मुख्य विशेषताओ का उल्लेख करते हुए उनका अंग्रेज़ी के साथ सम्पर्क मे आना विवेचित है। ईसाई मिशनरियो और पारसी थियेटरो के माध्यम से राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक रूप से जो प्रभाव तमिल, मराठी, बगला, गुजराती, उर्दू और हिन्दी नाटको पर पडे उनका भी विस्तृत विवेचन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे भारतेन्दु वाबू हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन नाटककारो की चर्चा है। भारतेन्दु को सस्कृत-परम्परा मे आस्था थी। वे पाश्चात्य नाटको की ओर भी अभिमुख थे और अंग्रेज़ी नाटको से प्रभावित होकर बगला और अंग्रेज़ी की टेकनीक लेकर उन्होने जितनी रचनाए की, उन सव की व्याख्या की गयी है।

चौथे अध्याय मे अनुवादो के माध्यम से पाश्चात्य नाटको का हिन्दी-नाटक पर प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। बगला के नाटककारो द्विजेन्द्रलाल राय, गिरीश घोष आदि तथा अंग्रेज़ी के शेक्सपीयर, गाल्सवर्दी आदि के अनूदित नाटको पर विचार किया गया है। 'सम्मिलित अनुवाद और उपस्थापना' शीर्षक से अनेक अंग्रेज़ी प्रभावो को प्रत्यक्ष किया गया है।

पाचवें अध्याय मे वाबू जयशकर प्रसाद के नाटको पर पाश्चात्य नाटको

का प्रभाव दिखलाया गया है। छठे अध्याय मे हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्द वल्लभ पन्त और उदयशकर भट्ट पर पाश्चात्य नाटक-तत्वो का प्रभाव दिखाया गया है। सातवें अध्याय मे लक्ष्मीनारायण मिश्र की नौ रचनाओ पर पाश्चात्य नाटको का प्रभाव (प्रमुखत इब्सन के सदर्भ मे) विवेचित है। आठवें अध्याय मे सेठ गोविन्ददास की रगमच-विषयक विचारधारा को ध्यान मे रखते हुए उनके नाट्यग्रथो पर पाश्चात्य प्रभाव की समीक्षा की गयी है। नवें अध्याय मे हिन्दी-एकाकी नाटको पर पाश्चात्य नाटको का सामान्य प्रभाव प्रदर्शित करते हुए रामकुमार वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, सद्गुरु शरण अवस्थी, गणेश प्रसाद, उदयशकर भट्ट और 'अश्क' की रचनाओ की समीक्षा की गयी है। दसवें अध्याय मे सिनेमा का नाटकीय प्रभाव, रगमच का प्रभाव और हिन्दी-नाटक के रगमच के भविष्य की सक्षिप्त चर्चा की गयी है। परिशिष्ट भाग मे सहायक मूल रचनाओ और आलोचनात्मक ग्रथो की एक विस्तृत सूची दी गयी है।

## ७४- हिन्दी-वीर-काव्य (१६००-१८०० ई०)

[१९५२ ई०]

श्री टीकमसिंह तोमर का प्रबन्ध 'हिन्दी-वीर-काव्य' सन् १९५२ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। इसका प्रथम सस्करण १९५४ ई० मे प्रकाशित हुआ। प्रकाशक है हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।

प्रस्तुत प्रबन्ध दो खडो मे विभक्त है। प्रथम खड 'साहित्यिक अध्ययन' है। इसमे आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय 'ग्रन्थ-परिचय' मे केशवदास, जटमल, मतिराम, भूषण, लाल (गोरेलाल), श्रीधर, सदानन्द, सूदन, गुमान, पद्माकर, जोधराज आदि कवियो के ग्रन्थो का ऐतिहासिक परिचय दिया गया है। दूसरे अध्याय मे इन ग्रन्थो के कथानक का अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्याय मे वीरकाव्य के चरित्रचित्रण का पर्यालोचन है। चौथे अध्याय का प्रतिपाद्य रस है। पहले सामान्य स्थिति पर विचार करके फिर वीरकाव्य मे रसनिरूपण का विवेचन किया गया है। पांचवे से लेकर आठवें अध्याय तक

नवा अध्याय उपसहार है। इसमे उपयोगी साहित्य, बालसाहित्य, अनूदित साहित्य, सम्पादित साहित्य, पत्र-पत्रिकाओ आदि का पर्यालोचन है। अन्त मे आलोच्य काल (१६२६–४७ ई०) मे रचित साहित्य का सिहावलोकन करते हुए भविष्य की ओर सकेत किये गये हैं।

## ७६. अभिधान-अनुशीलन अर्थात् हिन्दी-प्रदेश के हिन्दू पुरुषो के नामो का वैज्ञानिक विवेचन

[१६५२ ई०]

श्री विद्याभूषण विभु को उनके शोध-प्रबन्ध 'अभिधान-अनुशीलन अर्थात् हिन्दी-प्रदेश के हिन्दू पुरुषो के नामो का वैज्ञानिक विवेचन' पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् १६५२ ई० मे डी० फिल० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबन्ध इक्कीस प्रकरणो मे विभक्त है। पहले चौदह प्रकरणो मे धार्मिक प्रवृत्ति का अनुशीलन किया गया है। ईश्वर, त्रिदेव, त्रिदेववश, लोकपाल, विष्णु के अवतार, अन्य देव-देविया, तीर्थंकर, महात्मा, तीर्थ, धर्मग्रन्थ, मगल-अनुष्ठान, ज्योतिष, सम्प्रदाय और अन्धविश्वास नामक प्रकरणो मे हिन्दी-प्रदेश के हिन्दू पुरुषो के नामो का वैज्ञानिक विवेचन करते हुए प्रदर्शित किया गया है कि किस प्रकार धार्मिक प्रवृत्ति ने नामकरण को प्रभावित किया है।

पन्द्रहवे प्रकरण मे दार्शनिक प्रवृत्ति का अध्ययन किया गया है। इस क्रम के अन्तर्गत अध्यात्मविद्या, मनोविज्ञान और नैतिक गुण आये हैं। सोलहवें प्रकरण मे राजनीति और इतिहास के प्रकाश मे हिन्दुओं के नामो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सत्रहवें प्रकरण मे सामाजिक प्रवृत्तियो का अध्ययन किया गया है। समाज की विभिन्न सस्थाओ का इन नामो पर पर्याप्त प्रभाव पडता है। कुछ नामो पर समाज मे प्रचलित शिष्ट प्रयोगो का भी प्रभाव पडता है। आजीविका भी इस दिशा मे एक प्रभावशाली प्रवृत्ति है। स्मारको और भोग पदार्थो के अनुसार भी अनेक पुरुषो का नामकरण कर दिया जाता है, इसका विवेचन भी इस अध्याय का विषय है। समाज की कलात्मक प्रवृत्तियो तथा सुधारात्मक प्रवृत्तियो का हिन्दू पुरुषो के नामो पर जो प्रभाव पडा है, उसकी भी समीक्षा की गयी है।

अठारहवें से लेकर बीसवें प्रकरण तक अभिव्यंजनात्मक प्रवृत्तियों का विवेचन ...या गया है। दुलार का प्रभाव तो विश्व के सभी प्रदेशों के नामों पर पड़ता ... कभी-कभी उपाधि ही इतनी प्रमुख बन बैठती है कि असली नाम लुप्तप्राय ... जाता है। इस दिशा में व्यंग्य का प्रभाव भी निर्विवाद है।

अन्तिम प्रकरण में अभिधानाश्रित सांस्कृतिक रूपरेखा को स्पष्ट किया ...या है। भारतीय संस्कृति का दिग्दर्शन कराते हुए हिन्दी-प्रदेश के हिन्दू पुरुषों ... नामों पर उसके प्रभाव का आकलन किया गया है।

## ७७. हिन्दी-कहानियों की शिल्पविधि का विकास और उद्गमसूत्र

[१९५२ ई०]

श्री लक्ष्मीनारायण लाल का प्रबन्ध 'हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का ...कास और उद्गमसूत्र' सन् १९५२ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० ...फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग ने इसका ...काशन 'हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास' के नाम से सन् १९५३ ई० ...में किया।

इस प्रबन्ध में आठ अध्याय हैं। विषय-प्रवेश में सामग्री, अध्ययन के दृष्टि-कोण तथा विषय के विस्तार का निर्देश है। पहला अध्याय 'पूर्व परिचय' है। इसमें उपनिषदों की कथाओं से भक्तिकालीन 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तक के कहानी-साहित्य की शिल्पविधि का सिंहावलोकन किया गया है। दूसरे अध्याय 'आविर्भाव-युग' में पहले भारतेन्दु से पूर्व की हिन्दी-कथाओं—प्रेमसागर, नासिकेतोपाख्यान, रानी केतकी की कहानी—का अनुशीलन है। इसके बाद भारतेन्दु-युग में कथा-शिल्प का पर्यालोचन करके हिन्दी-कहानी की उत्पत्ति, आरम्भिक प्रयत्न और प्रयोग आदि का विवेचन किया गया है। तीसरे अध्याय 'विकास-युग' में प्रसाद तथा प्रेमचन्द की आयतन तथा शिल्पगत प्रवृत्तियों को स्पष्ट करते हुए चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानियों की कथानक, चरित्र, शैली आदि की दृष्टि से समीक्षा की गयी है।

चौथे अध्याय में प्रेमचन्द की कहानियों के रूपविधान को (राजनैतिक,

सामाजिक, व्यक्तिगत) परिस्थितियो का विवेचन करते हुए उनकी कहानियो की शिल्पविधि की समीक्षा की गयी है। प्रेमचन्द की शिल्पविधि का यह अध्ययन आरम्भ, विकास तथा उत्कर्ष—इन तीन कालो के अन्तर्गत किया गया है। अध्याय के उपसहार मे प्रेमचन्द-सस्थान के कहानीकारो (विश्वम्भरनाथ जिज्जा, जी० पी० श्रीवास्तव, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्द वल्लभ पत, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि) की कहानियो का अध्ययन है। पाचवें अध्याय मे प्रसाद के साहित्यिक सस्कार, साहित्यिक परिस्थितिया, समन्वयात्मक भावना आदि पर विचार करते हुए उनकी कहानियो की शिल्पविधि के विकास का अध्ययन किया गया है। प्रसाद-सस्थान के कहानिकारो के अन्तर्गत चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्णदास, बेचन शर्मा 'उग्र', वाचस्पति पाठक, विनोद शकर व्यास आदि की कहानियो का अध्ययन किया गया है। छठे अध्याय 'सक्रान्ति-काल' मे युगीन प्रवृत्तियो (दर्शन, मनोविज्ञान, यौनवाद, साम्यवाद आदि) का अनुशीलन करने के अनन्तर युगीन प्रवृत्तियो के प्रतिनिधि कहानीकारो जैनेन्द्र कुमार, सियारामशरण गुप्त, 'अज्ञेय', इलाचन्द्र जोशी, 'अश्क', पहाडी आदि की विशिष्ट शैली के आधार पर सक्रान्ति-काल की कहानियो की शिल्पविधि के विकास की समीक्षा की गयी है।

सातवा अध्याय 'उद्गम और विकास-सूत्र' है। इस अध्याय मे हिन्दी-कहानी के विकास पर पडने वाले हिन्दीतर प्रभावो (सस्कृत-नाटको की कथा-वस्तु, शेक्सपियर के नाटको की कथावस्तु, उर्दू किस्सों और अफसानों, रूसी, फ्रासीसी, अमेरिकन, अग्रेजी और बगला कहानी-धारा के प्रभावो) का परि-शीलन किया गया है। सातवें अध्याय मे कहानी-कला की समीक्षा की गयी है। कहानी-कला के विकासोन्मुख रूप पर प्रकाश डालते हुए अध्येता ने कहानी के तत्व, वर्गीकरण आदि महत्वपूर्ण पक्षो का अनुशीलन किया है। उपसहार मे कहानीकला और साहित्य के अन्य प्रकारों का सक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए कहानी के शिल्पविकास की मान्यता को स्पष्ट किया गया है।

## ७८. नायक-नायिका-भेद

[१९५२ ई०]

डा० छैलबिहारी गुप्त 'राकेश' को उनके प्रबन्ध 'नायक-नायिका-भेद' पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् १९५२ ई० में डी० लिट० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबन्ध तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम खंड में चार अध्याय हैं। पहले अध्याय में संस्कृत-साहित्य में नायक और दूसरे अध्याय में संस्कृत-साहित्य में नायिका के वर्गीकरण का अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्याय में हिन्दी-नायक-भेद और चौथे में हिन्दी-नायिका-भेद का विवेचन किया गया है।

द्वितीय खंड के चार अध्यायों में पौराणिक, धार्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक परम्पराओं का निदर्शन करते हुये हिन्दी-नायक-नायिका-भेद की सामाजिक पृष्ठभूमि निर्दिष्ट की गयी है। पहले अध्याय में कृष्ण और गोपियों की पौराणिक प्रेम-गाथा, दूसरे में आलवार और धार्मिक सम्प्रदाय, तीसरे में भक्त कवियों के काव्य में कृष्ण की प्रेमगाथा और चौथे में हिन्दी के नायक-नायिका-भेद-साहित्य का अध्ययन किया गया है।

तृतीय खंड में विभिन्न वर्गीकरणों का मनोवैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है। इस खंड में पाँच अध्याय हैं। पहले अध्याय में रूढ़िगत सीमाओं तथा वर्गीकरण के कुछ सामान्य दोषों का विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय में नायक तथा तीसरे अध्याय में नायिका के वर्गीकरण की परीक्षा की गयी है। चौथे अध्याय में सन्देशवाहकों तथा दूतियों के वर्गीकरण पर विचार किया गया है। पाँचवें अध्याय में नायिका के अलंकारों तथा हावों और नायक के सात्विक गुणों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

प्रबन्ध के अन्त में सात परिशिष्ट भी दिये गये हैं। इन परिशिष्टों के अन्तर्गत संस्कृत-साहित्य-शास्त्र में नायक-नायिका-भेद की योजना, हिन्दी-काव्यशास्त्र में नायक-नायिका-भेद की योजना, तेलगु में नायक-नायिका-भेद की योजना, वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में नायक-नायिका-भेद-विषयक सामग्री, प्रबन्ध-लेखक द्वारा प्रस्तावित नायक-नायिका-भेद की योजना, नायक-नायिका-भेद के हिन्दी-ग्रन्थों की पूर्ण सूची, सहायक ग्रन्थ सूची आदि हैं।

## ७९. सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियो की अवस्था का हिन्दी-साहित्य के आधार पर अध्ययन

[१९५२ ई०]

श्री आनन्द प्रकाश माथुर का प्रवन्ध 'सोलहवी-सत्रहवी शताब्दियो की अवस्था का हिन्दी-साहित्य के आधार पर अध्ययन' सन् १९५२ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा इतिहास की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रवन्ध मे १६वी और १७वी शताब्दियो की सामाजिक अवस्था का चित्रण तत्कालीन हिन्दी साहित्य की उपलब्ध रचनाओ के आधार पर किया गया है। प्रारम्भ मे परिचय वाले भाग मे तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक और साहित्यिक प्रवृत्तियो एव परिस्थितियों का सामान्य परिचय उपलब्ध रचनाओ के आधार पर कराया गया है जिनमे भक्तिकाल और रीतिकाल के कवियो की रचनाएँ प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं। कवीर, जायसी, सूर, तुलसी, रहीम, देव, विहारी, मतिराम, भूषण, घनानन्द, आदि कवियो की रचनाओ से उक्त परिस्थितियो को स्पष्ट करने मे अधिक सहायता मिली है।

दूसरे भाग मे उत्तर भारत के तत्कालीन शासको की वशपरम्परा, लेखको की सूची तथा उनके स्थान और भाषा का विवरण दिया गया है। गिनाये गये वशो मे लोदी, मुगल और सूर हैं जिनका काल क्रमश सन् १४५२-१५२६, १५२६-१५४०, १५४०-१५५५ मान्य है। १५५५ से लेकर १८५७ ई० के मध्य के मुगल शासको का नामाकन भी किया गया है। लेखको के नाम, स्थान और तिथि के अतिरिक्त उनसे सम्वद्ध साहित्य और सहायक साहित्य का विस्तृत विवरण दिया गया है।

प्रवन्ध का तीसरा भाग मुख्य रूप से विषय के प्रतिपादन से सम्वद्ध है। इसमे सोलहवी तथा सत्रहवी शताब्दियो के कवियो कवीर, जायसी, रैदास, नानक, सूरदास, मीराबाई, हितहरिवश, नन्ददास, तुलसीदास, दादूदयाल, केशवदास, हरिदास, रसखान, आलम, सेनापति, नाभादास, विहारी, चिन्तामणि, भूषण, उस्मान, दरिया साहेव, मतिराम, सुन्दरदास, लाल, देव, मान, घनानन्द, घाघ, जटमल, नैसानी और बनारसीदास की रचनाओ के सदर्भ में विभिन्न अध्यायो मे निम्नलिखित विषयो पर क्रमश विचार और विवेचन किया गया है तथा इनकी पुष्टि मे आये हुए विदेशी विद्वानो की मतावली का

खण्डन-मण्डन किया गया है। विवेचित विषय इस प्रकार हैं :—

(१) सामाजिक स्थिति
(२) परिवार
(३) स्त्रियों का परिवार में स्थान
(४) घर और उसकी सज्जा, पहनावे, खिलौने, गहने, भोजन।
(५) त्योहार
(६) व्रत और पर्व
(७) शिक्षा
(८) व्यवसाय और जीविका
(९) ललित कलाएँ
(१०) खेलकूद और मनोरंजन

## ८०. हिन्दी-काव्यरूपों का उद्भव और विकास

[१९५२ ई०]

श्री शकुन्तला दुबे को उनके अनुसंधान-प्रबन्ध 'हिन्दी-काव्यरूपों का उद्भव और विकास' पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने सन् १९५२ ई० में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध 'काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास' नाम से सन् १९५८ ई० में हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, से प्रकाशित हुआ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड के प्रथम परिच्छेद में काव्य के सामान्य रूप पर विचार किया गया है। काव्य के आन्तरतत्व और बहिरंगतत्व की विवेचना की गयी है। काव्य में अनुभूति और कला का सम्बन्ध-निर्देश किया गया है। काव्यरूप और छन्दोमय रूप का भेद-निरूपण करके काव्याभिव्यक्ति के बाह्य रूप में अनेकरूपता का दिग्दर्शन कराया गया है। कठिन नियम-निर्धारण की परिपाटी की भ्रान्तियों की ओर संकेत है। रूप-विधान में देशकाल के अनुरूप नवीनता की अपेक्षा पर बल दिया गया है। काव्य के रूपभेदों के विभिन्न आधारों पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न काव्यरूपों के स्रोत की चर्चा की गयी है। द्वितीय परिच्छेद में काव्य के विभाजन पर

विचार किया गया है। सस्कृत तथा हिन्दी मे काव्य-विभाजन का सिंहावलोकन करते हुए काव्य को प्रबन्ध, अबन्ध तथा बन्धाबन्ध शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है।

द्वितीय खड के प्रथम परिच्छेद मे महाकाव्य का उद्भव और विकास प्रदर्शित किया गया है। वैदिक सहिताओ मे ही महाकाव्य के बीज का दर्शन होता है। दानस्तुति, गाथा नाराशस, कुन्तापसूक्त, पुराण आदि सस्कृत-महाकाव्यो के स्रोत हैं। अनुसन्धाओ ने रामायण और महाभारत से लेकर, अश्वघोष, माघ, कालिदास आदि लौकिकमहाकाव्यकारो तथा पालि, प्राकृत और सस्कृत के परवर्ती महाकवियो का अनुशीलन करते हुए महाकाव्य की परम्परा को अपभ्रश-साहित्य के चरितकाव्यो के माध्यम द्वारा हिन्दी के महाकाव्यों (पृथ्वीराजरासो, पदमावत, रामचरितमानस, प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी आदि) मे विकसित होते हुए दिखलाया है। द्वितीय परिच्छेद मे महाकाव्य के स्वरूप पर विचार किया गया है। लक्षण-ग्रन्थो मे विद्वानो (भामह, दडी, रुद्रट, हेमचन्द्र) द्वारा निर्धारित महाकाव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए पाश्चात्य विचारको (अरस्तू, एवरक्राम्बी, गनर, डिक्सन) के मतो की भी परीक्षा की गयी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की धारणा पर भी विचार किया गया है। तृतीय परिच्छेद के अन्तर्गत खडकाव्य के दो प्रकार माने गये हैं—(१) लोक से उद्भूत, लोकरजन के लिए निर्मित और (२) देशी या विदेशी काव्य-परम्परा से उद्भूत तथा साहित्यमर्मज्ञ के लिए निर्मित। इन दोनो की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए इन वर्गो मे खडकाव्यो की समीक्षा प्रस्तुत की गयी हैं। चौथे परिच्छेद मे खडकाव्य के स्वरूप पर विचार किया गया है।

तीसरे खड 'अबन्ध काव्य' के पहले परिच्छेद मे गीतिकाव्य के उद्भव और विकास का पर्यालोचन किया गया है। दूसरे परिच्छेद मे उसके स्वरूप का निरूपण है। तीसरे परिच्छेद मे गीतिकाव्य का वर्गीकरण है। चौथे परिच्छेद मे विस्तार से मुक्तक के उद्भव और विकास का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पाचवें परिच्छेद मे मुक्तक के स्वरूप, अन्य काव्यरूपो से उसका सम्बन्ध, मुक्तक मे दृश्य-विधान, कथा आदि का महत्व एव स्वरूप, रसाभिव्यजना आदि अनेक महत्वपूर्ण पक्षो पर प्रकाश डाला गया है। छठे परिच्छेद में अनेक दृष्टियों से मुक्तक का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

चौथे खड मे बन्धाबन्ध काव्य का विवेचन है। इस खड मे एक ही अध्याय है—'बन्धाबन्ध काव्य और उसके प्रकार'। इसमे बन्धाबन्ध काव्य

के स्वरूप आदि का विवेचन करते हुए उसकी दो कोटियाँ—नाट्यात्मक काव्य और (२) स्वानुभूतिप्रधान काव्य मानकर हिन्दी के स्वच्छन्द-काव्य का परिशीलन किया गया है। अन्त में प्रबन्ध का उपसंहार है।

## ८१. रत्नाकर, उनकी प्रतिभा और कला

[१९५२ ई०]

श्री विश्वम्भरनाथ भट्ट को उनके प्रबन्ध 'रत्नाकर, उनकी प्रतिभा और कला' पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५२ ई० में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इसी नाम से इस ग्रंथ का प्रकाशन दिल्ली, पुस्तक सदन, नई, दिल्ली, ने सन् १९५७ ई० में किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में रत्नाकर की संक्षिप्त जीवनी दी गयी है। जन्म, बाल्यकाल तथा प्रारंभिक जीवन, यौवन काल, नौकरी, पर्यटन, चरित्र-निर्माण तथा ज्ञानार्जन, व्यक्तित्व और प्रभाव, अभिरुचि तथा मनोरंजन, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन, विभिन्न संस्थाओं से संबन्ध, गार्हस्थ्य जीवन, मैत्री तथा परिचय आदि विषयों से सम्बद्ध विवरण प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे अध्याय में रत्नाकर-युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों का अनुशीलन किया गया है। तीसरे अध्याय में रत्नाकर के साहित्यिक मंडल का परिचय दिया गया है। रत्नाकर ने अपने व्यक्तित्व से विभिन्न कवि-जनों को प्रभावित किया था। काशी नागरी प्रचारिणी सभा और रसिक-मंडल, प्रयाग, का भी इस प्रसंग में उल्लेख किया गया है। चौथे अध्याय में रत्नाकर के गद्य-लेखों का अध्ययन किया गया है। गद्य-लेखक रत्नाकर पर द्विवेदी-युग का प्रभाव था। उनकी गद्यशैली का भी विवेचन किया गया है। पाचवें अध्याय में रत्नाकर की अनुवाद-शैली एवं संपादन-कला की परीक्षा की गयी है।

छठे अध्याय में विविध दृष्टिकोणों से रत्नाकर की विचारधारा पर प्रकाश डाला गया है। कवि के राजनीतिक, राष्ट्रीय अथवा सामाजिक, दार्शनिक, भक्ति-भावना-परक और धार्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। सातवें अध्याय में

विचार किया गया है। सस्कृत तथा हिन्दी मे काव्य-विभाजन का सिहावलोकन करते हुए काव्य को प्रबन्ध, अबन्ध तथा बन्धाबन्ध शीर्षको के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है।

द्वितीय खड के प्रथम परिच्छेद मे महाकाव्य का उदभव और विकास प्रदर्शित किया गया है। वैदिक सहिताओ मे ही महाकाव्य के बीज का दर्शन होता है। दानस्तुति, गाथा नाराशस, कुन्तापसूक्त, पुराण आदि सस्कृत-महाकाव्यो के स्रोत हैं। अनुसन्धात्री ने रामायण और महाभारत से लेकर, अश्वघोष, माघ, कालिदास आदि लौकिकमहाकाव्यकारो तथा पालि, प्राकृत और सस्कृत के परवर्ती महाकवियो का अनुशीलन करते हुए महाकाव्य की परम्परा को अपभ्रश-साहित्य के चरितकाव्यो के माध्यम द्वारा हिन्दी के महाकाव्यो (पृथ्वीराजरासो, पदमावत, रामचरितमानस, प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी आदि) मे विकसित होते हुए दिखलाया है। द्वितीय परिच्छेद मे महाकाव्य के स्वरूप पर विचार किया गया है। लक्षण-ग्रन्थो मे विद्वानो (भामह, दडी, रुद्रट, हेमचन्द्र) द्वारा निर्धारित महाकाव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए पाश्चात्य विचारको (अरस्तू, एवरक्राम्बी, गनर, डिक्सन) के मतो की भी परीक्षा की गयी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की धारणा पर भी विचार किया गया है। तृतीय परिच्छेद के अन्तर्गत खडकाव्य के दो प्रकार माने गये हैं—(१) लोक से उद्भूत, लोकरजन के लिए निर्मित और (२) देशी या विदेशी काव्य-परम्परा से उद्भूत तथा साहित्यमर्मज्ञ के लिए निर्मित। इन दोनो की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए इन वर्गो मे खडकाव्यो की समीक्षा प्रस्तुत की गयी हैं। चौथे परिच्छेद मे खडकाव्य के स्वरूप पर विचार किया गया है।

तीसरे खड 'अबन्ध काव्य' के पहले परिच्छेद मे गीतिकाव्य के उद्भव और विकास का पर्यालोचन किया गया है। दूसरे परिच्छेद मे उसके स्वरूप का निरूपण है। तीसरे परिच्छेद मे गीतिकाव्य का वर्गीकरण है। चौथे परिच्छेद मे विस्तार से मुक्तक के उद्भव और विकास का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पाचवें परिच्छेद मे मुक्तक के स्वरूप, अन्य काव्यरूपो से उसका सम्बन्ध, मुक्तक मे दृश्य-विधान, कथा आदि का महत्व एव स्वरूप, रसाभिव्यजना आदि अनेक महत्वपूर्ण पक्षो पर प्रकाश डाला गया है। छठे परिच्छेद मे अनेक दृष्टियों से मुक्तक का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

चौथे खड मे बन्धाबन्ध काव्य का विवेचन है। इस खड मे एक ही अध्याय है—'बन्धाबन्ध काव्य और उसके प्रकार'। इसमे बन्धाबन्ध काव्य

के स्वरूप आदि का विवेचन करते हुए उसकी दो कोटियां—नाट्यात्मक काव्य और (२) स्वानुभूतिप्रधान काव्य मानकर हिन्दी के स्वच्छन्द-काव्य का परिशीलन किया गया है। अन्त में प्रबन्ध का उपसंहार है।

## ८१. रत्नाकर, उनकी प्रतिभा और कला

[१९५२ ई०]

श्री विश्वम्भरनाथ भट्ट को उनके प्रबन्ध 'रत्नाकर, उनकी प्रतिभा और कला' पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५२ ई० में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इसी नाम से इस ग्रंथ का प्रकाशन हिन्दी पुस्तक सदन, नई दिल्ली ने सन् १९५३ ई० में किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में रत्नाकर की संक्षिप्त जीवनी दी गयी है। जन्म, बाल्यकाल तथा प्रारंभिक जीवन, यौवन काल, नौकरी, पर्यटन, चरित्र-निर्माण तथा मानार्जन, व्यक्तित्व और प्रभाव, अभिरुचि तथा मनोरंजन, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन, विभिन्न संस्थाओं से संबन्ध, गार्हस्थ्य जीवन, मैत्री तथा परिचय आदि विषयों से सम्बद्ध विवरण प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे अध्याय में रत्नाकर-युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों का अनुशीलन किया गया है। तीसरे अध्याय में रत्नाकर के साहित्यिक मंडल का परिचय दिया गया है। रत्नाकर ने अपने व्यक्तित्व से विभिन्न व्यक्ति-समाजों को प्रभावित किया था। काशी नागरी प्रचारिणी सभा और रसिक-मंडल, प्रयाग, का भी इस प्रसंग में उल्लेख किया गया है। चौथे अध्याय में रत्नाकर के गद्य-लेखों का अध्ययन किया गया है। गद्य-लेखक रत्नाकर पर द्विवेदी-युग का प्रभाव था। उनकी गद्यशैली का भी विवेचन किया गया है। पांचवें अध्याय में रत्नाकर की अनुवाद-शैली एवं संपादन-कला की परीक्षा की गयी है।

छठे अध्याय में विविध दृष्टिकोणों से रत्नाकर की विचारधारा पर प्रकाश डाला गया है। कवि के राजनीतिक, राष्ट्रीय अथवा सामाजिक, दार्शनिक, भक्ति-भावना-परक और धार्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। सातवें अध्याय में

रत्नाकर के काव्य-कलाप की समीक्षा की गयी है। इस अध्याय मे उनके काव्य-ग्रन्थो का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। आठवे अध्याय मे रत्नाकर के काव्य-कल्प की आलोचना की गयी है। अलकार-सौंदर्य, छन्द-सघटन और भापा-शैली का विशद विवेचन किया गया है। नवें अध्याय 'रत्नाकर का भाव-वैभव' के अन्तर्गत उनकी रस-व्यजना पर विचार किया गया है। रत्नाकर के काव्य मे सभी रस और प्रकृति-चित्रण उपलब्ध हैं। इस अध्याय मे उनके प्रतिभा-प्रकर्ष और बहुज्ञान पर भी प्रकाश डाला गया है।

दसवा अध्याय उपसहार-रूप मे लिखा गया है। इसमे व्रजभापाकवियो मे रत्नाकर जी का स्थान निर्धारित करते हुए हिन्दी-साहित्य के विकास मे उनका योग प्रदर्शित किया गया है।

## ८२. बीसवीं शती के महाकाव्य

[ १९५२ ई० ]

श्री प्रतिपालसिंह को 'बीसवी शती के महाकाव्य' नामक प्रबन्ध प्रस्तुत करने पर आगरा विश्वविद्यालय से सन् १९५२ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रबन्ध का प्रकाशन ओरियन्टल बुकडिपो, नई सडक, दिल्ली, ने सन् १९५५ ई० मे किया। ग्रन्थ का नाम है 'बीसवी शती पूर्वार्द्ध ( १९००-१९५० ई० ) के महाकाव्य'।

यह प्रबन्ध दस अध्यायों मे विभक्त है। पहले अध्याय मे काव्य की आत्मा, काव्य-विषयक प्राचीन, पाश्चात्य एव आधुनिक विचारधाराओ तथा काव्य के विभिन्न रूपो का विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय मे श्रव्य-काव्य के अग महाकाव्य के लक्षण देते हुए भारतीय एव पाश्चात्य परम्परानुसार महाकाव्य के लक्षणो पर एक तुलनात्मक दृष्टि डाली गयी है। तदनन्तर आधुनिक मान्य आदर्शों की चर्चा की गयी है।

तीसरे अध्याय मे सस्कृत-साहित्य के प्रमुख महाकाव्यो की विशेषताओ का उल्लेख है। 'रामायण' और 'महाभारत' के पश्चात् कालिदास के महाकाव्यो पर विचार किया गया है। कालिदास के परवर्ती महाकाव्यों पर भी दृष्टि डाली गयी है। तदनन्तर पाश्चात्य महाकाव्यो का परिचय देते हुए भारतीय और

पाश्चात्य महाकाव्यो का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनके आदर्शों मे साम्य और वैपम्य को स्पष्ट किया गया है। तदुपरान्त हिन्दी-जगत् मे महाकाव्यो की परम्परा का निदर्शन है। आदि युग मे भारत की दशा का प्रबन्ध-काव्य-रचना पर प्रभाव निरूपित करने के पश्चात् भक्ति एव रीति युग की प्रवृत्तियो पर विचार किया गया है। चौथे अध्याय मे पहले आधुनिक महाकाव्यो के इतिहास और उनके विकास का अध्ययन है और तब आधुनिक काल के तथाकथित महाकाव्यो की परीक्षा की गयी है। लेखक द्वारा की गयी इस परीक्षा मे केवल ग्यारह महाकाव्य खरे उतरते हैं—'प्रियप्रवास', 'रामचरितचिन्तामणि', 'साकेत', 'कामायनी', 'नूरजहा', 'सिद्धार्थ', 'वैदेहीवनवास', 'दैत्यवश', 'कृष्णायन', 'साकेत-सन्त', और 'विक्रमादित्य'।

पाचवें अध्याय मे आधुनिक महाकाव्यो के विषय और उपादानो का विस्तृत अनुशीलन किया गया है। छठे अध्याय मे आधुनिक महाकाव्यो की प्रेरक शक्तियो तथा उन पर पडे हुए विभिन्न प्रभावो का निरूपण किया गया है।

सातवें अध्याय मे द्विवेदी-काल के महाकाव्यो मे 'प्रिय-प्रवास', 'रामचरित-चिन्तामणि' और 'साकेत' का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आठवें अध्याय में अनुसन्धाता ने प्रसुमनकाल के महाकाव्यो के रूप मे 'कामायनी', 'नूरजहा', 'सिद्धार्थ', 'वैदेही-वनवास' और 'दैत्यवश' का परिशीलन किया है। इसी प्रकार वर्तमान काल के महाकाव्यो 'कृष्णायन', 'साकेत-सन्त' और 'विक्रमादित्य' का अनुशीलन नवें अध्याय मे विस्तारपूर्वक किया है।

दसवें अध्याय मे हिन्दी-काव्य में आधुनिक महाकाव्यो का स्थान निर्धारित किया गया है। मानवता के लिए महाकाव्य का मूल्य दिखलाया गया है। इसी अध्याय मे महाकाव्यो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस क्रम मे चरित्रचित्रण, प्रकृतिचित्रण, रसनिरूपण, कलापक्ष आदि का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अन्त में महाकाव्यो पर एक विहगम दृष्टि डाली गयी है।

भिन्न-प्रभावित वाद और शैलीगत वाद। सातवे भाग मे स्व-जगत्-सम्बन्धी (अर्थात् समाजगत) वादो (आचारवाद, औचित्यवाद, आदर्शवाद, राष्ट्रीयतावाद, यथार्थवाद, सुधारवाद, प्रगतिवाद और प्रकृतिवाद) का ऐतिहासिक एव सैद्धान्तिक परिशीलन है। इसी पद्धति के अनुसार, आठवे भाग मे स्व-स्वत्व (अर्थात् वैयक्तिकता) से सम्बद्ध प्रयोगवाद, भावुकतावाद, उत्तेजनावाद, बुद्धिवाद आदि की समीक्षा है। नवें भाग मे, इसी ढग पर, स्व-पर-भिन्न स्वत्व (अर्थात् अध्यात्म) से प्रभावित एकेश्वरवाद, द्वैतवाद आदि तथा रहस्यवाद, छायावाद और प्रतीकवाद का अध्ययन किया गया है। दसवें भाग मे भारतीय काव्यशास्त्र के विविध वादो की विवेचना है। ग्यारहवे भाग मे लोकमगल की दृष्टि से साहित्यगत विविध वादो का मूल्याकन किया गया है। परिशिष्टरूप मे कुछ अन्य वादो (ताटस्थ्यवाद, हालावाद, प्राकृतवाद आदि) का भी सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

## ८५. उपन्यासकार प्रेमचन्द—उनकी कला, सामाजिक विचार और जीवन-दर्शन

[१९५२ ई०]

श्री शकरनाथ शुक्ल को सन् १९५२ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय से उनके प्रबन्ध 'उपन्यासकार प्रेमचन्द—उनकी कला, सामजिक विचार और जीवन-दर्शन' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। यह प्रबन्ध प्रकाश मे नही आया।

इस प्रबन्ध मे कुल मिलाकर आठ प्रकरण है। पहले प्रकरण मे प्रतिपाद्य विषय की पीठिका प्रस्तुत की गयी है। दूसरे प्रकरण मे प्रेमचन्द के आविर्भाव का निरूपण है। तीसरे प्रकरण मे उन पर पडने वाले प्रभावो का आकलन है। चौथे और पाचवें प्रकरणो मे प्रेमचन्द की कला और उनकी कलागत विशेषताओ का अनुशीलन है। छठे प्रकरण में उनके जीवन-दर्शन की विचार-चर्चा है। सातवें प्रकरण मे उनके सामाजिक विचारो (ग्रामसमस्या, नारीसमस्या, धार्मिक विचार, हिन्दू-मुस्लिम-समस्या, पूजीवाद, रियासतो की समस्या तथा स्फुट

विचार) की विवेचना की गयी है। 'उपसहार' नामक आठवें प्रकरण मे उपन्यासकार प्रेमचन्द के योगदान का मूल्याकन है।

## ८६. हिन्दी-नाटक का उद्‌भव और विकास

[१९५२ ई०]

श्री वेदपाल खन्ना 'विमल' का प्रवन्ध 'हिन्दी नाटक का उद्‌भव और विकास' सन् १९५२ ई० मे पजाव विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। मूल प्रवन्ध अग्रेजी में लिखा गया था। इसका हिन्दी-रूपान्तर 'हिन्दी-नाटक-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन' के नाम से श्री भारत भारती (प्राइवेट) लिमिटेड, दरियागज, दिल्ली-७, से सन् १९५८ ई० में प्रकाशित हुआ।

इस प्रवन्ध मे सत्ताईस अध्याय हैं। पहले अध्याय मे नाटको के अभाव के कारणो पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में हिन्दी-नाटको के पूर्वरूप रामलीला, रासलीला, नौटकी और हिन्दी-नाटक पर उनके प्रभाव पर विचार किया गया है। तीसरे अध्याय मे भारतेन्दु-पूर्व काल के हिन्दी-नाटको की विशेषताए वतलाते हुए हिन्दी-नाटक के उदय का अध्ययन किया गया है। चौथे अध्याय मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मौलिक-अनूदित नाटको, प्रहसनो तथा उनके नाटको के कला-विधान आदि की विस्तृत समीक्षा की गयी है।

पाचवें अध्याय मे उन्नीसवी शती के अन्य प्रमुख तथा सामान्य नाटककारो का विवेचन है। छठे अध्याय मे इन नाटककारो के प्रहसनो तथा अनुवादो पर विचार किया गया है। सातवें अध्याय मे रगमचीय नाटको और उनके कला-विधान तथा आठवें अध्याय मे हिन्दी-नाटक के ह्रास-काल (१८८५-१९१२ ई०) का अध्ययन है। नवें अध्याय का प्रतिपाद्य 'उन्नीसवी शती का नाट्य-विधान' है।

दसवें अध्याय में १९००-१९१२ ई० के काल को हिन्दी-नाटक का अभाव-काल मानकर तत्कालीन मौलिक तथा अनूदित नाटकों की आलोचना की गयी है। हिन्दी-नाटक के पुनरुत्थान की ओर भी सकेत किया गया है। ग्यारहवें अध्याय मे इस पुनरुत्थान-काल का व्यवस्थित अध्ययन है। प्रमुख प्रवृत्तियो का उल्लेख करते हुए रासलीला और रामलीला तथा शृगारी थिएट्रिकल नाटको पर भी विचार किया गया है। वारहवें अध्याय मे पारसी रगमच, भट्ट-धारा

तथा प्रसाद-धारा के पौराणिक नाटको का परिशीलन किया गया है। तेरहवे अध्याय मे भट्ट-धारा और प्रसाद-धारा के ऐतिहासिक नाटको का पर्यालोचन है।

चौदहवें अध्याय मे जयशकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटको, उनके कलाविधान तथा दोष आदि की विवेचना है। पन्द्रहवें अध्याय मे प्रहसन और व्यग्य तथा यथार्थवादी नाटको एव सोहलवें अध्याय मे प्रतीकवादी तथा अनूदित नाटको का अनुशीलन है।

सत्रहवें से छब्बीसवें अध्याय तक आधुनिक काल (१९३३-४८ ई०) के नाटको का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सत्रहवे अध्याय मे प्रमुख प्रवृत्तियो पर प्रकाश डाला गया है। अठारहवे और उन्नीसवें अध्यायो मे ऐतिहासिक तथा बीसवें अध्याय मे पौराणिक नाटको का अनुशीलन है। इक्कीसवें और बाईसवें अध्याय के प्रतिपाद्य समस्या-नाटक तथा गीति-नाटक हैं। तेईसवें अध्याय मे प्रतीकवादी नाटको की समालोचना है। चौबीसवें अध्याय मे हिन्दी एकाकी, उसके कला-विधान तथा प्रमुख एकाकीकारो का अध्ययन है। पच्चीसवें अध्याय मे आधुनिक नाट्यविधान पर विचार किया गया है। छब्बीसवें अध्याय मे रचमग की अवश्यकता बतलाते हुए हिन्दी-रचमग का सिहावलोकन किया गया है। हिन्दी-नाटक के भविष्य के विषय मे अपने विचार प्रस्तुत करते हुए अनुसन्धाता ने हिन्दी-जनता एव सरकार के समक्ष एक व्यावहारिक योजना प्रस्तुत की है।

सत्ताईसवाँ अध्याय मूल प्रवन्ध मे नही था। प्रवन्ध को अप-टू-डेट बनाने के उद्देश्य से यह अध्याय हिन्दी-रूपान्तर मे जोड दिया गया। इसमे १९४१ ई० से आज तक के हिन्दी-नाटको का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

## ८७. ब्रजभाषा-साहित्य को राजस्थान की देन
## (राजस्थान का पिंगल-साहित्य)

[ १९५२ ई० ]

श्री मोतीलाल मेनारिया को राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् १९५२ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। एक विद्वान् ने बतलाया कि उनके शोधकार्य का विषय था 'राजस्थान का प्राचीन डिंगल (हिन्दी) साहित्य'।

प० हजारी प्रसाद द्विवेदी से पता चला कि उनके प्रवन्ध का विषय 'राजस्थान का प्राचीन हिन्दी साहित्य' था। स्व० डा० सुधीन्द्र ने वतलाया था कि उनके प्रवन्ध का शीर्षक था 'राजस्थान का पिंगल काव्य'। प० मोहन वल्लभ पन्त से सूचना मिली कि मेनारिया जी के अनुशीलन का विषय था 'राजस्थान का पिंगल-साहित्य'। यह ग्रन्थ सन् १९५२ ई० मे हितैपी पुस्तक भडार, उदयपुर, से प्रकाशित हुआ। ग्रन्थ के निवेदन मे शोधकर्ता ने स्वीकार किया है कि पन्त जी ने उनका 'पथप्रदर्शन' किया तथा 'पुस्तक की पाडुलिपि को आद्योपान्त पढने का कष्ट उठाया और उसमे अनेक सशोधन किये'। अतएव पन्त जी का कथन ही अधिक प्रामाणिक है। डा० गायत्री देवी वैश्य ने राजस्थान विश्वविद्यालय के स्वीकृत शोव-प्रवन्धो की एक प्रामाणिक सूची भेजी है, उसमे इस प्रवन्ध का विषय दिया है 'ब्रजभाषा साहित्य को राजस्थान की देन (राजस्थान का पिंगल-साहित्य)'।

'राजस्थान का पिंगल-साहित्य' छ अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे पृष्ठभूमि का निरूपण है। राजस्थान की राजनैतिक, भौगोलिक, सास्कृतिक और साहित्यिक स्थिति का परिचय दिया गया है। इस अध्याय मे डिंगल (मारवाडी) और पिंगल (व्रजभाषा) का तुलनात्मक परिचय भी दिया गया है। दूसरे अध्याय मे राजस्थान के पिंगल-साहित्य के प्रारम्भ-काल ( स० १५५०-१७००) का अनुशीलन है। अध्याय के आरम्भ मे 'पृथ्वीराजरासो' पर विस्तार-पूर्वक और 'विजयपालरासो' पर सक्षेप मे विचार किया गया है। तत्पश्चात् राजस्थान के व्रजभाषा-कवियो (मीरावाई, कृष्णदास पयहारी, कील्ह जी, अग्रदास, नाभादास, जल्ह, पृथ्वीराज, परशुराम देव और 'तत्ववेत्ता') के साहित्यिक कृतित्व का निरूपण है। अध्याय के अन्त मे एक परिशिष्ट भी है जिसमे नौ कवियो के विषय मे सक्षिप्त सूचना दी गयी है। यह काल भक्तिकाव्यप्रधान था।

तीसरे अध्याय में राजस्थानी पिंगल-साहित्य के मध्यकाल (स० १७००-१९००) का अध्ययन है। इस काल मे भक्तिकाव्य के साथ ही रीतिकाव्य और चरितकाव्य का निर्माण हुआ। रीतिकाव्य की प्रधानता रही। इस अध्याय के आरम्भ मे रीतिकाव्यो एव चरितकाव्यों की कालक्रमानुसार सूची दी गयी है। तत्पश्चात् जसवत सिंह, विहारी, डूगरसी, केहरी, वृन्द, उदयचन्द, नदराम, नरहरिदास, मानजी, कुलपति मिश्र आदि छप्पन कवियो की सक्षिप्त समीक्षा है। इस अध्याय के परिशिष्ट मे एक सौ चवालीस कवियो के विषय मे सक्षिप्त सूचना भी दी गयी है। चौथे अध्याय मे सत-साहित्य के चौंतीस कवियों (दादू-

दयाल, सुन्दरदास आदि) की सक्षिप्त समीक्षा तथा उसके परिशिष्ट मे बावन सत-कवियो के विषय में सूचना है। पाचवें अध्याय मे आधुनिक काल (स० १९००-२००६) के पैंतीस कवियो की सक्षिप्त समीक्षा तथा परिशिष्ट मे एक सौ तेईस कवियो की सूचना है। छठे अध्याय मे ग्रन्थ का उपसहार करते हुए राजस्थान के व्रजभाषा-साहित्य एव व्रजभाषा-साहित्य के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। अन्त मे राजस्थान मे उपलब्ध व्रजभाषा की हस्तलिखित प्रतियो के उद्धार और प्रकाशन के लिए राजस्थानवासियों से अपील की गयी है।

## ८८. ध्वनिसम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त—शब्दशक्तिविवेचन

[१९५२ ई०]

'ध्वनि-सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त—शब्दशक्ति-विवेचन' पर श्री भोला-शकर व्यास को राजस्थान विश्वविद्यालय ने सन् १९५२ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इसी शीर्षक से इस प्रबन्ध का प्रकाशन सन् १९५६ ई० मे हुआ। प्रकाशक है नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

इस प्रबन्ध मे ग्यारह परिच्छेद है। सबसे पहले आमुख मे साहित्य के लिए देशकाल-मुक्त कसौटी की आवश्यकता, काव्य कला है या विद्या, काव्य की महत्ता, शब्दार्थ-सम्बन्ध के विषय मे विभिन्न विद्वानो के मत, अर्थ के प्रकार, ध्वनि की काव्यालोचन-पद्धति का मनोवैज्ञानिक आधार, पाश्चात्य काव्यशास्त्र से भारतीय काव्यशास्त्र की महत्ता आदि पर विचार किया गया है।

पहला परिच्छेद 'शब्द और अर्थ' है। मानवजीवन मे वाणी का महत्व प्रतिपादित करते हुए भाषा और शब्द तथा अर्थ के सम्बन्ध के विषय मे आदिम विचारो का विवेचन किया गया है। शब्द की उत्पत्ति के विषय मे अतिप्राचीन भारतीय विचारो का परिचय दिया गया है। शब्दार्थ-सम्बन्ध के विषय मे तीन वादो—उत्पत्तिवाद, व्यक्तिवाद तथा ज्ञप्तिवाद—पर विचार किया गया है। शब्द की प्रतीकात्मकता, शब्द का सकेत-ग्रह, शब्दसमूह के रूप, शब्द का भौतिक स्वरूप, शब्द के सम्बन्ध मे विभिन्न वाद तथा शब्द के प्रकार आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे परिच्छेद 'अभिधा शक्ति और वाच्यार्थ' के अन्तर्गत शब्द की विभिन्न शक्तियो तथा अभिधा और अभिधेयार्थ पर विचार किया गया है। 'सकेत' के

वरूप और वर्गीकरण का विवेचन है। अभिधा की परिभाषा, वाच्यार्थ-ग्रहण, त्ति-ग्रह आदि पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। तीसरा परिच्छेद नक्षणा एव लक्ष्यार्थ' है। लक्षणा की परिभाषा, हेतु, भेद आदि का आलो-नात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए पाश्चात्य विद्वानों के शब्दशक्ति-विवेचन का ी उपस्थापन किया गया है। चौथे परिच्छेद मे तात्पर्यवृत्ति और वाक्यार्थ की ववेचना है। वाक्य की परिभाषा, वाक्यार्थ, वाक्यार्थ के निमित्त के विषय मे वभिन्न मतो का आलोचनात्मक उपस्थापन इस परिच्छेद के प्रतिपाद्य विषय हैं।

पाचवें परिच्छेद 'व्यजना वृत्ति ( शाब्दी व्यजना )' के अन्तर्गत व्यजना की रिभाषा, लक्षणा से इसकी भिन्नता, व्यजना शक्ति मे प्रकरण का महत्व आदि वषयो पर प्रकाश डाला गया है। तदनन्तर शाब्दी व्यजना का विवेचन है। मिधामूला शाब्दी व्यजना और श्लेष का भेदनिरूपण करके अभिधामूला शाब्दी यजना के सम्बन्ध मे महिमभट्ट के मत की समीक्षा की गयी है। शाब्दी यजना के सम्बन्ध मे अभिनवगुप्त तथा पडितराज जगन्नाथ के मतो पर भी वचार किया गया हैं।

छठे परिच्छेद मे आर्थी व्यजना का प्रतिपादन है। इसके वाच्यसंभवा, क्ष्यसभवा और व्यग्यसभवा आदि भेदों का परिचय देते हुए अर्थव्यंजना के ाधनो का विवेचन किया गया है। व्यग्य के प्रकारो की चर्चा करते हुए ध्वनि ौर व्यजना के भेद पर प्रकाश डाला गया है। व्यग्यार्थ के विषय मे पाश्चात्य वद्वानो के मत पर भी विचार किया गया है।

सातवा परिच्छेद 'अभिधावादी तथा व्यजना' है। इस अध्याय मे दिखाया ाया है कि व्यजना और स्फोट का ऐतिहासिक विकास एक-सा है। अभिहिता-वयवादी, तात्पर्यवादी मतो तथा व्यजना के विषय मे उनकी मान्यताओ का ारिचय दिया गया है। प्रसगानुसार अभिधावादियो के खडन का अध्ययन किया ाया है।

आठवें परिच्छेद 'लक्षणावादी तथा व्यजना' मे लक्षणावादियो के मत का क्षिप्त परिचय है। मम्मट द्वारा दिए गए लक्षणावादियो के विरोध तथा व्यजना के अन्य विरोधी मतों का भी उपस्थापन तथा खडन किया गया है। नवें परिच्छेद मे अनुमानवादी मत का विवरण है। उनके लक्षणाविषयक मत का परिहार किया गया है। दसवा परिच्छेद 'व्यजना तथा साहित्यशास्त्र से इतर आचार्य' है। भर्तृहरि, कौण्ड, नागेश, गदाधर और जगदीश तर्कालकार के मतो की इस प्रसग मे समीक्षा की गयी है। ग्यारहवें परिच्छेद मे व्यजना को ही काव्य की

कसौटी माना गया है। इस विपय मे भारतीय तथा पाश्चात्य मतो का विवेचन करते हुए अनुसन्धाता ने अपना मत भी प्रस्तुत किया है। अन्त मे प्रस्तुत विषय का सिंहावलोकन किया गया है। इस प्रसग मे सस्कृत से लेकर हिन्दी के काव्य-शास्त्रियो तक के शब्दशक्ति-विवेचन की समीक्षा की गयी है।

परिशिष्ट मे भारतीय साहित्यशास्त्र के अलकार-सम्प्रदाय तथा प्रमुख आलकारिको का ऐतिहासिक परिचय है।

## ८६. भक्तवर नागरीदास : उनकी कविता के विकास से सम्बन्धित प्रभावो और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन

### [१९५२ ई०]

श्री फैयाजअली खा का प्रबन्ध 'भक्तवर नागरीदास उनकी कविता के विकास से सम्बन्धित प्रभावो और प्रतिक्रियाओ का अध्ययन' सन् १९५२ ई०। मे राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नही आया। इसकी विषय-सूची इस प्रकार है ·

१ प्रवेश
२ नागरीदास पर स्थायी प्रभाव
३ नागरीदास की कविता के विकास मे धर्म का स्थान
४ नागरीदास का व्यक्तित्व एव कविता-शक्ति
५ नागरीदास एव कतिपय धार्मिक और साहित्यिक उपकरण
६ सगीतज्ञ नागरीदास
७. नागरीदास के काव्य-विकास मे चित्रकला का महत्व
८ नागरीदास के ग्रन्थो में सामाजिक प्रभावो और प्रतिक्रियाओ के कुछ क्षेत्र
९ नागरीदास और बनीठनी
१०. उपसहार
११. परिशिष्ट
१२. पुस्तको, व्यक्तियो, स्थानो एव विशिष्ट विषयो के नामो की अनुक्रमणिका
१३ परिशीलन-ग्रन्थावली

# ६०. अपभ्रंश-साहित्य

[१६५२ ई०]

श्री हरिवंश कोछड को उनके प्रवन्ध 'अपभ्रंश-साहित्य' पर दिल्ली विश्व-विद्यालय ने सन् १६५२ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इस प्रवन्ध का प्रकाशन हिन्दी-अनुसधान-परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, की ओर से भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, ने सन् १६५६ ई० मे किया।

प्रस्तुत प्रवन्ध दो भागो मे विभक्त है। पहले भाग मे चार अध्याय हैं जिनमे अपभ्रंश भाषा का परिचय दिया गया है। पहले अध्याय मे अपभ्रंश-विषयक निर्देश उपस्थापित किये गये हैं। इसमे सस्कृत के अनेक ग्रन्थो तथा अपभ्रंश-के दानपत्रो आदि मे अपभ्रंश के निर्देशो का अनुशीलन किया गया है। दूसरे अध्याय मे अपभ्रंश भाषा का विकास प्रदर्शित किया गया है। तीसरे अध्याय मे अपभ्रंश और हिन्दी भाषा पर विचार किया गया है। वर्तमान प्रान्तीय आर्य-भाषाओ का विकास अपभ्रंश से ही हुआ है, इस अध्याय मे इन दोनो भाषाओ के विकासात्मक सम्बन्ध का अध्ययन किया गया है। चौथे अध्याय मे अपभ्रंश साहित्य की पृष्ठभूमि निर्दिष्ट की गयी है। राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियो का अवलोकन करते हुए इस पृष्ठभूमि का निदर्शन किया गया है।

दूसरे भाग के तेरह अध्यायो में अपभ्रंश-साहित्य का अनुशीलन किया गया है। पाचवें अध्याय मे अपभ्रंश-साहित्य का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। छठे अध्याय मे अपभ्रंश-महाकाव्यो का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययनक्रम मे मुख्यत 'पउम चरिउ', 'रिट्ठणेमि चरिउ', 'महापुराण', 'भविसयत्त-कहा', 'हरिवंश पुराण' आदि अपभ्रंश-महाकाव्य आये हैं। सातवें अध्याय मे अपभ्रंश के धार्मिक खडकाव्यो का विवेचन है। आठवें अध्याय में लौकिक खडकाव्यो की समीक्षा की गयी है। नवें अध्याय मे अपभ्रंश के उन मुक्तक काव्यों का परिशीलन किया गया है जो जैन कवियो ने रचे हैं। इसी प्रकार दसवे अध्याय में बौद्ध सिद्धो के मुक्तक-साहित्य की विवेचना की गयी है। ग्यारहवें अध्याय में अपभ्रंश भाषा मे रचित प्रेम, शृगार, वीर रस आदि के फुटकर पद्यो पर विचार किया गया है। बारहवें अध्याय में अपभ्रंश-रूपकाव्य की मीमासा की गयी है। तेरहवें अध्याय मे अपभ्रंश के कथा-साहित्य का अवलोकन किया

गया है। चौदहवें अध्याय मे अपभ्रंश के स्फुट साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। पन्द्रहवें अध्याय का आलोच्य विषय 'अपभ्रंश-गद्य' है। सोलहवें अध्याय मे सस्कृत-साहित्य और अपभ्रंश-साहित्य का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। सत्रहवें अध्याय मे हिन्दी पर अपभ्रंश-साहित्य का प्रभाव निरूपित किया गया है। ग्रन्थ के अन्त मे दो परिशिष्ट हैं, पहले मे ग्रन्थकार, ग्रन्थ, रचनाकाल, तथा विषय का प्रतिपादन है और दूसरे मे कतिपय प्रसिद्ध सूक्तियो, लोकोक्तियो तथा वाग्धाराओ का परिचय है।

## ९१. हिन्दी-नाटक : उद्भव और विकास

[१९५२ ई०]

दिल्ली विश्वविद्यालय ने श्री दशरथ ओझा को उनके शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी-नाटक उद्भव और विकास' पर सन् १९५२ ई० मे पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान की। हिन्दी-अनुसन्धान-परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, के तत्वावधान मे राजपाल एड सस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, ने स० २०११ मे इस ग्रथ का प्रकाशन किया।

इस प्रबन्ध मे बारह अध्याय हैं। पहले अध्याय मे कला और उसकी उपयोगिता तथा प्राचीन नाटकीय सिद्धातो एव प्रयोगो का विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय मे लोक-नाटक का अनुसधान है। स्वाग की परम्परा, यात्रा-नाटक के उद्भव और विकास, सस्कृत तथा देशी नाटको पर उसके प्रभाव आदि का आकलन करते हुए उन्नीसवी शताब्दी के यात्रा-नाटको की समीक्षा की गयी है। तीसरे अध्याय मे मैथिली नाटको की उत्पत्ति आदि पर प्रकाश डाला गया है। चौथे अध्याय मे राजस्थानी नाटको का उद्भव, 'रास' शब्द की व्युत्पत्ति, लक्षण-ग्रन्थो और सस्कृत-साहित्य मे रासक आदि विषयो का विवेचन है। पाचवें अध्याय मे हिन्दी के आदिम साहित्यिक नाटको, पश्चिमी राजस्थानी मे रास-नाटक की परम्परा, हिन्दी-नाटको मे रासशैली के विकास एव उसकी विशेषताओ का उपस्थापन है। छठे अध्याय मे वैष्णव आन्दोलन के प्रभाव तथा 'रामायण नाटक', 'हनुमन्नाटक', 'प्रबोधचन्द्रोदय' आदि नाटको की समीक्षा है। सातवें अध्याय मे सस्कृत-शैली के प्रथम हिन्दी नाटक 'आनन्द रघुनन्दन' पर

विचार किया गया है। आठवे अध्याय मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के मौलिक एव अनूदित नाटको की विस्तारपूर्वक समालोचना की गयी है। नवें अध्याय मे भारतेन्दु-युग के प्रतिनिधि नाट्यकारो एव उनकी नाट्यप्रवृत्तियों का पर्यालोचन है। दसवें अध्याय मे आधुनिककाल के प्रमुख साहित्यकार जयशकर प्रसाद की नाट्यकला की विविध दृष्टियों से परीक्षा की गयी है। ग्यारहवें अध्याय मे रग-मचीय नाटको पर विचार हुआ है। बारहवें अध्याय मे गीतिनाट्य, सास्कृतिक नाटक, एकाकी नाटक, रेडियो-नाटक, समस्यानाटक आदि के विकास और मडनशिल्प की विवेचना है। ग्रथ के उपसहार मे हिन्दी-नाटक के उत्थान के पाच सोपानो और तद्गत नवीन प्रवृत्तियो का अनुशीलन करके अन्त मे हिन्दी-नाटक के मगलमय भविष्य की ओर सकेत किया गया है। सात परिशिष्टो मे प्रस्तुत की गयी रासो, रासमडलियों, नाटको आदि से सम्बद्ध सामग्री भी उप-योगी है।

## ६२. भारतेन्दु का नाट्य-साहित्य

[ १६५२ ई० ]

श्री वीरेन्द्र कुमार शुक्ल का प्रबन्ध 'भारतेन्दु का नाट्य-साहित्य' सन् १६५२ ई० मे सागर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। सागर विश्वविद्यालय से हिन्दी-डॉक्टरेट के लिए स्वीकृत यह सर्वप्रथम प्रबन्ध है। मूल प्रबन्ध कुछ आवश्यक परिवर्तन और काटछाट के साथ उसी शीर्षक से सन् १६५५ ई० मे रामनारायण लाल, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता, प्रयाग, द्वारा प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे कुल चौदह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे भारतेन्दु काल के राजनैतिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक और साहित्यिक वातावरण का अध्ययन किया गया है। द्वितीत अध्याय 'जीवन-परिचय तथा साहित्यिक कृतिया' है। आरम्भ मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का सक्षिप्त जीवन-परिचय देकर उनकी नाट्यकृतियो का परिचय दिया गया है। अध्याय के अन्त मे भारतेन्दु की नाट्येतर रचनाओ (काव्य, इतिहास, धर्मग्रन्थ और स्फुट रचनाओ) की सूची भी दे दी गयी है। तृतीय अध्याय मे भारतेन्दु के पूर्ववर्ती हिन्दी-नाटक और

रगमच का ऐतिहासिक अनुसधान किया गया है। रगमच के विकासक्रम मे लोकनाट्य, नाटक-कम्पनियो तथा नाटक-मडलियो के योगदान पर भी प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय मे भारतेन्दु के स्वतन्त्र नाट्यविधान की चर्चा करके उस युग के नाटको का निम्नाकित छ वर्गों के अन्तर्गत अध्ययन किया गया हैं —

१ पौराणिक आख्यायिकाओ के आधार पर चलने वाला घटनाक्रम तथा उसका विकास।

२ ऐतिहासिक व्यक्तित्वो के जीवन तथा घटनाओ का राष्ट्रीय स्वरूप।

३ राष्ट्रीय भावनाओ से प्रेरित नाट्यसाहित्य।

४ उद्देश्य-प्रधान नाटक जिनका जन्म धार्मिक तथा सामाजिक उद्धार की भावनाओ को लेकर हुआ था।

५ प्रेम-प्रधान धारा से ओतप्रोत प्रेमाख्यान-नाट्य-साहित्य।

६ प्रहसन का उदय और परम्परा।

अध्याय के अन्त मे रूपान्तरित नाटको का भी सक्षिप्त विवेचन है।

पचम अध्याय मे भारतेन्दु के नाटको के क्रमिक विकास का अध्ययन है षष्ठ अध्याय मे भारतेन्दु के नाटको का वर्गीकरण किया गया है। ये दोन अध्याय एक मे ही सम्मिलित हैं। सप्तम अध्याय मे भारतेन्दु के अनूदित नाटक और अष्टम अध्याय मे उनके रूपान्तरित नाटको का विवेचन किया गया है नवम अध्याय मे उनके मौलिक नाटको का कलात्मक विकास दिखलाकर उनक वर्गीकरण किया गया है। दशम अध्याय मे भारतेन्दु जी के प्रहसनो का शास्त्री अध्ययन है। एकादश अध्याय मे उनके यथार्थवादी सामाजिक चित्र (प्रेमयोगिनी तथा प्रेमप्रधान नाटिका (चन्द्रावली) की समीक्षा की गयी है। द्वादश अध्याय मे भारतेन्दु जी के पौराणिक तथा ऐतिहासिक मौलिक नाटको 'सती प्रताप', ए 'नीलदेवी' का अनुशीलन है। त्रयोदश अध्याय मे भारतेन्दु के सामाजिक तथ राजनीतिक नाटको 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' की समालोचना कर यह निष्कर्ष स्थापित किया गया है कि इन नाटको मे भारतेन्दु की नाट्यकल का चरमोत्कर्ष पाया जाता है। चतुर्दश अध्याय मे उनके मौलिक नाटको की भाषा, सवाद और गीतों का अध्ययन है। उपसहार मे साहित्यकार भारतेन के कृतित्व का मूल्याकन है।

# ६३. हिन्दी और गुजराती कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन (१५वीं, १६वीं, १७वीं शती ई०)

[१९५३ ई०]

श्री जगदीश गुप्त का प्रबन्ध 'हिन्दी और गुजराती कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन (१५वी, १६वी, १७वी शती ई०)' सन् १९५३ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। हिन्दी-परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, ने इसका प्रकाशन सन् १९५८ ई० मे किया।

इस ग्रन्थ मे सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय का शीर्षक है 'कवि और काव्य' जिसमें कवियो के समय से सम्बन्धित प्रमाण देते हुए उनके कृष्णपरक काव्यों का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। द्वितीय अध्याय मे वर्ण्य वस्तु का विश्लेषण एव विवेचन किया गया है। सारी सामग्री ब्रजलीला, मथुरालीला तथा द्वारकालीला—इन तीन भागो मे विभाजित की गयी है। इन भागो के अन्तर्गत अवान्तर विभाजन करते हुए वर्ण्य वस्तु की सूक्ष्म तुलना करने का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक स्थिति को पूर्ण बनाने के लिए प्राचीन सस्कृत ग्रन्थो के स्रोतो का यथास्थान निर्देश भी है।

तृतीय अध्याय मे 'सिद्धान्तपक्ष' शीर्षक से दोनो भाषाओ के कवियो द्वारा ब्रह्म, जीव, जगत्, माया तथा भक्ति के सम्बन्ध मे व्यक्त की गयी मान्यताओ का उपस्थापन है। साम्प्रदायिक मान्यताओं तथा प्राचीन स्रोतो का भी आवश्यकतानुसार प्रसग के अनुकूल उल्लेख कर दिया गया है परन्तु प्रधानता कवियो के अपने विचारो को ही दी गयी है। चतुर्थ अध्याय मे कवियो के भावपक्ष का तुलनात्मक निरूपण किया गया है जिसका आधार साहित्य का स्वाभाविक मानदण्ड है, रूढिगत शास्त्रीय परिपाटी नही। पचम अध्याय का शीर्षक 'कलापक्ष' है। इसमे 'कला' का व्यापक अर्थ ग्रहण करते हुए अलकारविधान के अतिरिक्त दृश्य-चित्रण, स्वभाव-चित्रण, प्रकृति-चित्रण तथा प्रबन्ध-निर्वाह का भी समावेश कर लिया गया है जिससे दोनो भाषाओ के कृष्णकाव्य के लगभग सभी प्रमुख पक्ष सामने आ जाते हैं।

षष्ठ अध्याय मे आलोच्य कवियो के प्रबन्ध, पद और मुक्तक तीनो शैलियो मे व्यवहृत छन्दो का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। छन्दो के सूक्ष्म भेदो, लक्षणो, समानताओ एव विषमताओ के निर्देश के बाद अन्त मे दोनो भाषाओ

के काव्य मे स्थान-स्थान पर निर्दिष्ट मुख्य रागो की सूची भी दे दी गयी है। सप्तम अध्याय का विवेच्य विषय भाषा-शैली है। अध्याय के प्रारम्भ मे तत्सम, तद्भव, देशज अथवा लोक-प्रचलित शब्दो के वैभव का परिचय दिया गया है और पर्याय शब्दो के उदाहरणरूप मे कृष्ण के लिए दोनो भाषाओ मे प्रचलित शब्दो का सकलन प्रस्तुत किया गया है। लोकोक्तियो और मुहावरो की सूची देकर दोनो भाषाओ की भावाभिव्यजन-शक्ति की तुलना की गयी है। तदनन्तर भाषा की शैलीगत विशेषताओ का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस अध्याय के उत्तराश मे भाषा-मिश्रण की विवेचना करते हुए कुछ ऐसे स्थलो का उदाहरण-सहित निर्देश किया गया है जहाँ गुजराती कवियो के काव्य मे व्रजभाषा का प्रयोग मिलता है। व्रजभाषा-काव्य मे गुजराती से प्रभावित जो प्रयोग मिलते हैं उनकी ओर भी सकेत कर दिया गया है।

उपसहार मे दोनो भाषाओं के कृष्णकाव्य में मिलने वाले बहुमुखी साम्य और वैषम्य के आधार को प्रकट करने के लिए, गुजरात और व्रज के युगो पुराने सास्कृतिक सम्बन्धो पर एक विहगम दृष्टि डालते हुए उनके अनेक पहलुओ पर प्रकाश डाला गया है।

ग्रन्थ के अन्त मे गुजराती कवियो के समय को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न इतिहासकारो द्वारा दिये गये उनके समय को एक स्वतन्त्र तालिका-चित्र के रूप मे प्रस्तुत किया गया है, साथ ही तीन तालिका-चित्र और दे दिये गये हैं, जिनसे प्रत्येक शती मे गुजराती और व्रजभाषा दोनो के कवियो और काव्यो की तुलनात्मक परिस्थिति तत्काल एक ही दृष्टि मे विदित हो सकती है।

## ६४. सिद्ध-साहित्य

[१९५३ ई०]

श्री धर्मवीर भारती को उनके शोध-प्रबन्ध 'सिद्ध-साहित्य' पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् १९५३ ई० मे डी० फिल० की उपाधि प्रदान की। इस प्रबन्ध के परिवर्द्धित रूप का प्रकाशन किताब महल, प्रयाग, द्वारा सन् १९५५ मे किया गया।

प्रस्तुत प्रवन्ध पाच अध्यायो मे विभक्त है। पहला अध्याय विषय-प्रवेश है। इस अध्याय मे सबसे पहले आधार-सामग्री का विवेचन किया गया है। तदनन्तर दोहाकारो तथा पद-कर्ताओ के कालक्रम और जीवनवृत्त पर प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् इन सिद्धो के साधना-केन्द्र तथा राज्याश्रय की गवेषणा की गयी है। अन्त मे सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया है।

दूसरे अध्याय मे वज्रयान की परम्परा प्रदर्शित की गयी है। महायान के विकास पर विचार करते हुए समकालीन वौद्धेतर तान्त्रिक धर्म-साधनाओ का अनुशीलन किया गया है। पाचरात्र, पाशुपत, काश्मीरी शैवमत, वीरशैव, काल-मुख, कापालिक, रसेश्वर, शक्ति और जैन आदि सम्प्रदायो की तान्त्रिक साधनाओ का सिंहावलोकन करते हुए लेखक ने इन तन्त्रो की सामान्य प्रवृत्तियो का उल्लेख किया है। वौद्धधर्म मे तान्त्रिक प्रवृत्तियो का प्रवेश दिखाते हुए वज्रयान के विकास का विवेचन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे सिद्ध-साहित्य के सिद्धान्तपक्ष का अध्ययन किया गया है। सिद्धो के तत्व-चिन्तन, साधना-पद्धति और उपलब्धि पर विस्तार से विचार किया गया है। इस अध्याय मे सिद्धो के तत्वचिन्तन और साधना-पद्धति के अनेक महत्वपूर्ण तत्वो का विशद प्रतिपादन किया गया है।

चौथे अध्याय मे सिद्ध-साहित्य के काव्यपक्ष का अनुशीलन किया गया है। भावपक्ष के अन्तर्गत महाराग, सहजरस, नायक-नायिका, नीतिपक्ष आदि का विवेचन किया गया है। शैलीपक्ष के अन्तर्गत सिद्धो की सधा भाषा और उनके प्रतीको पर विचार किया गया है। भाषा और छन्द की दृष्टि से सिद्धो की विभिन्न भाषाशैलियो तथा छन्दो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पाचवें अध्याय मे सिद्धो की साम्प्रदायिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। इसके वाद परवर्ती सम्प्रदायो का विकास प्रदर्शित किया गया है। वज्रयानी शब्दो की परम्परा का अन्वेषण किया गया है। अन्त मे पर्याप्त विस्तार के साथ साधना-पद्धति की वज्रयानी प्रवृतियो तथा शब्दावली की समीक्षा की गयी है।

## ९५. भोजपुरी लोकगाथा का अध्ययन

[१९५३ ई०]

श्री सत्यव्रत सिन्हा को उनके प्रवन्ध 'भोजपुरी लोकगाथा का अध्ययन' पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने सन् १९५३ ई० मे डी० फिल० की उपाधि प्रदान की। सन् १९५८ ई० मे हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहवाद, ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन 'भोजपुरी लोकगाथा' नाम से किया।

भूमिका मे लेखक ने लोकसाहित्य, भोजपुरी साहित्य और भोजपुरी लोक-साहित्य का विवेचन किया है। मूल प्रवन्ध दस अध्यायों मे विभक्त है। पहले अध्याय मे नामकरण की समस्या उठायी गयी है। अनेक देशी और विदेशी विद्वानो के एतदर्थ प्रयुक्त अनेक शव्दो की छानवीन करते हुए अनुसन्धाता ने डा० कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा प्रयुक्त 'लोकगाथा' शव्द को ही समीचीन माना है। तदनन्तर जी० एल० कितरेज, फ्रॅंक सिजविक, डा० मरे तथा विभिन्न विश्वकोषो द्वारा निर्धारित लोकगाथा की परिभापाओ का विवेचन किया गया है। लोकगाथा की उत्पत्ति के विषय मे भी जैकव ग्रिम, एफ० वी० गुमरे, स्तैंन्थल, चाइल्ड, श्लेगेल आदि विदेशी तथा रामनरेश त्रिपाठी, डा० कृष्णदेव उपाध्याय आदि भारतीय विद्वानो के मतो की परीक्षा की गयी है। इसके उपरान्त लोकगाथाओ की भारतीय परम्परा का निर्देश किया गया है। लोकगाथा की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए उसके प्रकारो का भी विवेचन किया गया है, साथ ही लोकगाथा तथा लोकगीतो का अन्तर स्पष्ट किया गया है।

दूसरे अध्याय मे भोजपुरी लोकगाथाओ का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। भोजपुरी लोकगाथाओ के एकत्रीकरण का इतिहास बतलाया गया है। गाथाओ तथा गायको की कुछ समान विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है। भोजपुरी लोकगाथाओ का वर्गीकरण किया गया है और उनका उद्देश्य भी स्पष्ट किया गया है। तीसरे अध्याय मे भोजपुरी वीरकथात्मक लोकगाथा का अध्ययन किया गया है। इस वर्ग के अन्तर्गत चार गाथाए आती है—आल्हा, लौरिकी, विजय-प्रयत्न और वाबू कुवरसिंह। चौथे अध्याय मे भोजपुरी प्रेमकथात्मक लोकगाथा का अध्ययन किया गया है। इसके अन्तर्गत केवल एक गाथा 'शोभानयका वनजारा' आती है।

भोजपुरी रोमाचकथात्मक लोकगाथा का अध्ययन पाचवें अध्याय मे प्रस्तुत

गया है। सोरठी और बिहुला ऐसी ही गाथाए हैं। छठे अध्याय का
ाद्य योगकथात्मक लोकगाथा है। अनुसधाता ने ही इस वर्ग को मान्यता
। डा० कृष्णदेव उपाध्याय आदि ने इस वर्ग का उल्लेख नही किया।
धाता ने राजा भरथरी और गोपीचन्द की गाथाओ को इस वर्ग के अन्तर्गत
है। सातवें अध्याय मे भोजपुरी लोकगाथा में अकित सस्कृति एव सभ्यता
नदर्शन किया गया है। इन गाथाओ मे अपने युग के जीवन का यथार्थ
ए हुआ है।

आठवें अध्याय मे भोजपुरी लोकगाथा मे भाषा और साहित्य तथा नवें
ाय मे धर्म के स्वरूप का विवेचन किया गया है। निष्कर्षरूप मे, इन लोक-
ओ मे धर्म का समन्वितरूप ही उपलब्ध होता है। दसवे अध्याय मे
पुरी लोकगाथा मे अवतारवाद तथा अमानवतत्वो का अनुसधान किया
है। तदुपरान्त, भोजपुरी लोकगाथा मे कुछ समानता का कारणपूर्वक निर्देश
हुए अन्त मे यह सिद्ध किया गया है कि भोजपुरी लोकगाथा वस्तुत एक
ाय साहित्य है।

परिशिष्ट के अन्तर्गत प्रमुख भोजपुरी लोकगाथाओ के मौखिक रूप को
ाबद्ध किया गया है।

## ६६. आधुनिक हिन्दी कविता और कालोचना पर अंग्रेजी प्रभाव

[१९५३ ई०]

श्री रवीन्द्रसहाय वर्मा का प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी कविता और आलोचना
अग्रेजी प्रभाव' सन् १९५३ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फ़िल०
धि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध अग्रेजी विभाग के अन्तर्गत प्रस्तुत
ा गया था। इसका हिन्दी-रूपान्तर सवत् २०११ मे 'हिन्दी काव्य पर
न प्रभाव' के नाम से पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, से प्रकाशित हुआ।

इस ग्रन्थ में दो भाग हैं। प्रथम भाग मे तीन प्रकरण है। पहले प्रकरण मे
आग्ल प्रभाव से पहले के हिन्दी काव्य, उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक
परिस्थिति, सामाजिक और सास्कृतिक परिस्थिति तथा रीतिकालीन काव्य की

मुख्य प्रवृत्तियो का निरूपण है। दूसरे प्रकरण मे नवीन प्रभाव तथा उसकी प्रतिनिधि सस्थाओ—फोर्ट विलियम कालिज, शिक्षा, प्रेस तथा साहित्यिक सस्थाओ—का अध्ययन है। तीसरे प्रकरण मे सास्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनो तथा आधुनिक भारतीय साहित्य मे हुए युगान्तर का परिशीलन है।

चौथे प्रकरण से लेकर सातवें तक के चार अध्याय द्वितीय भाग के अन्तर्गत हैं। चौथे प्रकरण मे भारतेन्दु-युग की पृष्ठभूमि का विवेचन करके उस युग के काव्य के वर्ण्य विषय, रूप और भाषा पर अग्रेजी के प्रभाव की समीक्षा की गयी है। इसी प्रकरण मे अग्रेजी ग्रन्थो के अनुवाद का भी उल्लेख है। पाचवें प्रकरण मे द्विवेदी-युग की नवीन शक्तियो का दर्शन कराकर उस युग के काव्य की गतिविधि, विषयो तथा उपादानो (बुद्धिवाद, मानवतावाद, राष्ट्रीयतावाद, प्रकृति-चित्रण) रूप, छद तथा भाषा पर अग्रेजी के प्रभाव का अनुशीलन किया गया है। छठे प्रकरण मे छायावादी युग की पृष्ठभूमि का विवेचन करके पाश्चात्य रोमान्टिसिज्म, प्रतीकवाद आदि का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। तदनन्तर छायावाद-युग की कविता के विषयो, उपादानो और प्रवृत्तियो (सौन्दर्यवाद, प्राकृतिक-सौन्दर्य, नारी-सौन्दर्य, विद्रोहात्मक आदर्शवाद, निराशा-वाद, रहस्यवाद आदि), भाषा-शैली, रूप और छन्द पर अग्रेजी के प्रभाव की समालोचना है।

सातवें प्रकरण मे प्रगतिवादी युग (सवत् १९९६ के बाद का काल) की कविता पर अग्रेजी के प्रभाव का अध्ययन है। प्रकरण के आरम्भ मे नवीन वातावरण, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद आदि की विवेचना है। तत्पश्चात् उस युग की कविता के विषयो पर उपादानो (प्रगतिवादी धारा, मनोविश्लेषण-वादी धारा तथा सास्कृतिक समन्वय की धारा) एव काव्यरूपो पर अग्रेजी के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। उपसहार मे अग्रेजी के प्रभावो से प्रेरित हिन्दी-परिवर्तनो की सक्षिप्त चर्चा करते हुए अग्रेजी के अध्ययन-अध्यापन पर बल दिया गया है। अनुसन्धाता की मान्यता है कि इस प्रकार का अध्ययन-अध्यापन भारतीय भाषाओ के साहित्य को समृद्ध बनाने का कार्य करेगा और उसे नवीन रूपरेखा और दिशा प्रदान करके साहित्यकारों के दृष्टिकोण को विकसित करने मे सहायक सिद्ध होगा।

## ६७. श्रीमद्भागवत और सूरदास

[१९५३ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५३ ई० मे श्री हरवंश लाल शर्मा को पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। उनके शोध-प्रवन्ध का विषय था 'श्रीमद्भागवत और सूरदास'। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

इस प्रवन्ध मे कुल मिलाकर पाच अध्याय हैं। पहले अध्याय के आरम्भ मे श्रीमद्भागवत के स्वरूप पर विचार किया गया है। भागवत की प्राचीनता, उसकी टीकाओ एव उसमे निरूपित विषयों का अनुसन्धान किया गया है। तत्पश्चात् इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि क्या सूरसागर श्रीमद्भागवत का अनुवाद है। स्कन्धो के क्रम से सूरसागर तथा भागवत का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त भी 'सूरसागर' के आधार-ग्रन्थ हैं। अध्याय के अन्त मे उन आधारो का भी उल्लेख किया गया है। दूसरे अध्याय मे पहले कृष्ण-भावना का विकास दिखलाया गया है। भागवत मे निवद्ध कृष्ण के विभिन्न रूपो और उनकी लीलाओ का निरूपण करके सूर के गोपी-कृष्ण के स्वरूप और उनकी लीलाओ की विवेचना की गयी है। आगे चलकर सूर के राधाकृष्ण का अध्ययन है। सूर के भ्रमर-गीत और भागवत के भ्रमरगीत की तुलनात्मक समीक्षा की गयी है। इस प्रकरण मे राधा का विकास भी दिखलाया गया है। अध्याय के अन्त मे भागवत और सूर के पात्रो के चरित्र-चित्रण का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तीसरे अध्याय मे दार्शनिक सिद्धान्तो का परिशीलन है। श्रीमद्भागवत और वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तो का विवेचन करते हुए सूरदास के दार्शनिक सिद्धान्तो की व्याख्या की गयी है। सूरदास पर उनके प्रभाव का उपस्थापन करते हुए सूर की मौलिकता की परीक्षा की गयी है। चौथे अध्याय का विषय श्रीमद्भागत और सूरदास का भक्तिपक्ष है। आरम्भ मे भक्ति का विकास दिखाकर उसके स्वरूप की व्याख्या की गयी है। तदनन्तर सूरसागर मे निरूपित भक्ति की विचार-चर्चा है। सूर पर पडने वाले विभिन्न प्रभावो का निर्देश किया गया है। भागवत और सूरदास के भक्तिपक्ष की तुलनात्मक विवेचना की गयी है। अन्त मे सूर की मौलिकता का निरूपण है। पाँचवें अध्याय के आरम्भ मे पुष्टिमार्ग का व्याख्यान किया गया है। पुष्टिमार्गीय भक्ति

के सिद्धान्तपक्ष और आचरणपक्ष की मीमासा की गयी है। तत्पश्चात् श्रीमद्भागवत मे अभिव्यक्त पुष्टिभक्ति का निर्देश करते हुए सूरदास और पुष्टिमार्ग का सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है।

## ९८. आचार्य भिखारीदास

[१९५३ ई०]

श्री नारायणदास खन्ना का प्रवन्ध 'आचार्य भिखारीदास' सन् १९५३ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। स० २०१२ वि० मे इसी नाम से इसका प्रकाशन लखनऊ विश्वविद्यालय ने किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध चार खडो मे विभाजित है। पहले खड मे कवि के जीवन-वृत्त का निरूपण है। यह निरूपण अन्त साक्ष्य तथा वहि साक्ष्य दोनो दृष्टियो से किया गया है। बहि साक्ष्य के अन्तर्गत 'प्रताप सोमावली' (सोमवशियो का इतिहास) खोजरिपोर्टों तथा हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो का आधार लिया गया है।

दूसरे खड मे भिखारीदास की साहित्यिक रचनाओ का विवेचन है। पूर्वार्द्ध मे दास की समकालीन ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियो का पर्यालोचन है और उत्तरार्द्ध मे दास के ग्रन्थो तथा उनकी प्रामाणिकता का विवेचन है। इस विवेचन के तीन भाग हैं—(१) सूत्रो का विवेचन (२) ग्रन्थो की प्रामाणिकता और (३) प्रामाणिक ग्रन्थो का सक्षिप्त परिचय। प्रामाणिकता के विवेचन मे अनुसन्धाता ने भिखारीदास के प्राय प्रत्येक ग्रथ मे उपलब्ध होने वाली कुछ सामान्य विशेषताओ की खोज की है। इस खड के अन्त मे लेखक ने निष्कर्षरूप मे भिखारीदास के प्रामाणिक, सन्दिग्घ तथा अप्रामाणिक ग्रन्थो की सूची दे दी है।

तीसरे खड मे भिखारीदास की काव्यकला, भक्तिभावना और सामाजिक नीति का परिशीलनहै। लेखक ने पहले उनकी रचनाओ का मूल्याकन किया है। तदनन्तर शैलीपक्ष के विवेचन के अन्तर्गत उनकी भाषागत प्रवृत्तियो, शब्द-भडार, व्याकरण और काव्य दोषो की समीक्षा की है। तदुपरान्त उनकी

भक्तिभावना की मीमासा है। इस प्रसग में भिखारीदास के विनय तथा नीति से सम्बद्ध काव्य की विवेचना की गयी है।

चौथे खड के पूर्वार्द्ध मे लेखक ने भिखारीदास के आचार्य-रूप पर प्रकाश डाला है। काव्यशास्त्र के विविध अगो (काव्य-प्रयोजन, गुण, पदार्थ, ध्वनि, तुक, काव्यदोष, छन्द-निरूपण, रस तथा अलकार) के सम्बन्ध मे उन के विचारो का सस्कृत-हिन्दी के अन्य प्रमुख काव्यशास्त्रियो के प्रतिपादन के प्रकाश मे अध्ययन करते हुए उनकी मौलिक उद्भावनाओ, अन्य आचार्यों से साम्य तथा वैषम्य आदि का पर्यवेक्षण किया गया है। लेखक का मत है कि भिखारीदास की प्रतिभा नायिका-भेद मे विशेष रूप से निखरी है।

प्रबन्ध के अन्त मे 'उपसहार' है। इसमें लेखक ने भिखारीदास पर मिश्रबन्धुओ द्वारा लगाये गये अपहरण-विषयक आक्षेप का निराकरण किया है। अन्त मे उन की विशिष्ट साहित्यिक स्थिति का मूल्याकन किया गया है।

## ६६. आधुनिक हिन्दी-काव्य मे छन्द-योजना

[१९५३ ई०]

श्री पुत्तूलाल शुक्ल का प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी-काव्य मे छन्द-योजना' सन् १९५३ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। विश्वविद्यालय की ओर से ही इसका प्रकाशन सन् १९५८ ई० मे हुआ। प्रकाशित कृति में आधुनिकतम प्रकाशित पुस्तको का उपयोग करके यत्र-तत्र अपेक्षित परिवर्द्धन भी किया गया है।

इस ग्रंथ में चार अध्याय हैं। पहले अध्याय के प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार हैं—आधुनिक छन्दोविधान की समस्या, पूर्व परम्परा और आधुनिक छन्द, छन्दोविषयक धारणाए एव परिभाषाए, पश्चिमी धारणा, बगला छान्दसिक धारणा, मराठी छान्दसिक धारणा, हिन्दी छान्दसिक धारणाए, परिभाषा, छन्द का जन्म, छन्द स्फोट, छन्द शास्त्र और छन्द, छन्दोविषयक शेष प्रकीर्ण विचार एव गद्य और गद्यच्छन्द। दूसरे अध्याय मे भारतीय छन्दो के विकास, विभिन्न आर्य-भाषाओ की मूल लयो की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन और आधुनिक युग मे हिन्दी मे प्रयुक्त वृत्तो की विवेचना की गयी है। छन्दो का विकास और विस्तार,

प्रगति और छन्दस्वातन्त्र्य, ग्रीक छन्द, अरबी-फारसी-उर्दू के छन्द, बगला छन्द, मराठी छन्द, तमिल छन्द सस्कृत वृत्त, वृत्त-विवेचन, घनाक्षरी, सवैया छन्द, अनुष्टुप् वृत्त, वृत्तप्रयोग की आलोचना और नवीनता—इन विषयो पर इस अध्याय मे व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है।

तीसरे अध्याय के आरम्भ मे मात्रिक छन्दो के विकास और छन्दो के विभिन्न तत्वो का विवेचन है। तुकान्त के इतिहास के साथ अतुकान्त छन्द-प्रयोग का इतिहास दिया गया है। इसके पश्चात् खडीबोली मे प्रयुक्त समस्त आधुनिक छन्दो के भेदो का विश्लेषण किया गया है। अध्याय मे विवेचित विषयो का विभाजन निम्नाकित शीर्षको के अन्तर्गत किया गया है—आधुनिक काव्य मे मात्रिक छन्द, हिन्दी-छन्दो की मात्रिक परम्परा और उसका आधुनिक युग मे विकास, छन्द के विभिन्न तत्व—यति, अन्त्यानुप्रास या यति, अन्त्यानुप्रास या तुक, अन्त्यानुप्रास के क्रमायोजन, मुक्तछन्द मे अन्त्यानुप्रास,अन्तरनुप्रास और अन्तर्यति समछन्द-वर्ग, अर्द्धसम मात्रिक छन्द, त्रिसम वर्ग, मित्रवर्ग के छन्द, प्राचीन मिश्र-छन्दो का अर्वाचीन प्रयोग, नव विकर्षाधार, छन्दक और गीत, हिन्दी छन्दक और सम्पद तथा निश्चित मात्रिक छन्दो का सिहावलोकन।

चौथे अध्याय के आरम्भ मे अतुकान्त वर्णिक और मात्रिक छन्दो का विश्लेषण है। इसके पश्चात् युगातरकारी और महत्वपूर्ण मुक्तछन्दो या स्वच्छन्द छन्दो का पर्विक विश्लेषण करके उन्हे वर्गीकृत किया गया है। इस अध्याय की विषय-सूची इस प्रकार है—आधुनिक हिन्दी-कविता मे स्वच्छन्दता का आगमन, अतुकान्त छन्द, विषम-छन्द या मुक्तछन्द, मुक्तछन्द और लय, मुक्तछन्द और अन्त्यानुप्रास-कला, मुक्तछन्द और लयखड, वर्णिक लयाधार, अन्त्तमुक्त शुद्ध घनाक्षरी आधार, अक्षरमात्रिक मुक्त छन्द, मात्रिक लयाधार छन्द की प्रवह-मानता मे पर्वों का योग, त्रिक पर्व, चतुष्क पर्व, पचक पर्व, षट्क पर्व, सप्तक पर्व, अष्टक पर्व, नवक पर्व और उपसहरण। परिशिष्ट मे छन्द-पाठ, छन्द और गायन, छन्द शास्त्र की सीमा, छान्दसिक आनन्द और सस्कार तथा छन्द और ताल का सक्षिप्त निरूपण भी किया गया है।

# १००. तुलसीदास का दर्शन

[१९५३ ई०]

सन् १९५३ ई० में आगरा विश्वविद्यालय ने श्री रामदत्त भरद्वाज को उनके प्रबन्ध 'तुलसीदास का दर्शन' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। अंग्रेजी में लिखित यह प्रबन्ध 'फिलॉसफी ऑव तुलसीदास' दर्शन-विभाग के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया था। इसका हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित होने जा रहा है।

इस ग्रन्थ में चौदह अध्याय हैं। पहले अध्याय मे तुलसीदास की जीवनी और कृतियो पर विचार किया गया है। तुलसीदास की जीवनी और जन्मस्थान के विषय मे विविध मतो की परीक्षा करके अनुसधाता ने यह स्थापना की है कि सोरो (जिला एटा) ही तुलसीदास की जन्मभूमि थी। तत्पश्चात् उनकी पत्नी रत्नावली, उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली दन्तकथाओ, उनकी प्रामाणिक ग्यारह कृतियो आदि पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायो की प्रमाण-मीमासा की चर्चा करते हुए यह बतलाया गया है कि तुलसीदास को चार प्रमाण 'प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और अनुभव' मान्य हैं। गुरु की आप्तता का स्थान विशेष गौरवपूर्ण है।

तीसरे अध्याय मे ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण है। इस अध्याय के प्रथम भाग मे वेदोपनिषद्-प्रतिपादित ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन करके तुलसीदास के काव्य मे अभिव्यक्त ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूपो की विवेचना की गयी है। अन्त मे राम मे निर्गुण और सगुण का समन्वय बतलाकर राम-नाम की महिमा का उल्लेख किया गया है। चौथे अध्याय मे माया का विवेचन है। माया की विशेषताए, ब्रह्म और माया का सम्बन्ध, शकर तथा वैष्णव आचार्यों के अनुसार माया आदि की व्याख्या करके तुलसीदास की माया-सम्बन्धी मान्यताओ का अध्ययन किया गया है। पाचवें अध्याय मे त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) तथा छठे अध्याय मे अवतारवाद का निरूपण है। सातवें अध्याय मे देवी-देवता-विषयक सैद्धान्तिक चर्चा करके तुलसीदास के देवता, गन्धर्व, किन्नर, गगा आदि तथा भूसुर (ब्राह्मण) विषयक विचारों का अनुशीलन किया गया है।

आठवें अध्याय में पृष्ठभूमि के रूप मे प्राचीन आचार्यों के जीव-विषयक सिद्धान्तो का उल्लेख करके तुलसीदास के अनुसार जीव के स्वरूप, विविध प्रकार, जन्मान्तर आदि की समीक्षा की गयी है। नवें अध्याय के आरम्भ मे भारतीय

दर्शनो मे मुक्ति का स्वरूप वतलाया गया है। तत्पश्चात् तुलसीदास के अनुसार मुक्ति के स्वरूप और विधाओ पर विचार किया गया है। दसवें अध्याय मे मोक्ष-मार्गों का अध्ययन है। इस अध्याय के तीन भाग हैं। तीनो भागो मे पहले भारतीय दर्शन के अनुसार विविध मोक्षोपायो की पृष्ठभूमि वतलायी गयी है। तत्पश्चात् क्रमश कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग के विषय मे तुलसीदास के विचारो का विश्लेषण किया गया है। ग्यारहवें अध्याय मे राम-भावना के विकास एव रामभक्ति तथा नामभक्ति का उपस्थापन है। वारहवें अध्याय मे तुलसी के कर्मवाद, पाप और पुण्य की धारणा, वर्णाश्रम धर्म तथा नारीभावना का अध्ययन है। तेरहवें अध्याय मे तुलसीदास के मनोविज्ञान-विषयक विचारो की मीमासा है। प्राचीन दर्शनो की मनोवैज्ञानिक शब्दावली पर विचार करके तुलसीदास के योगदान का निरूपण किया गया है। अन्तिम अध्याय मे तुलसीदास के राजनीति-दर्शन का व्यापक अध्ययन है जिसमे राजधर्म, राजनीति, राजधानी, रामराज्य आदि का अनेक दृष्टियो से विवेचन किया गया है।

## १०१. हिन्दी साहित्य मे जीवनचरित का विकास—एक अध्ययन

[१९५३ ई०]

श्रीमती चन्द्रावतीसिंह को उनके प्रवन्ध 'हिन्दी साहित्य मे जीवनचरित का विकास—एक अध्ययन' पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने सन् १९५३ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

प्राक्कथन के अन्तर्गत जीवनी को साहित्य का एक स्वतन्त्र तथा विशिष्ट अग प्रतिपादित किया गया है। हिन्दी की अपेक्षा ससार की अन्य भाषाओ मे जीवनी-साहित्य का विकास पहले हुआ था। हिन्दी मे भी साहित्य के जन्म के साथ ही जीवनी-साहित्य का आरम्भ माना गया है। हिन्दी का सम्पूर्ण जीवनी-साहित्य चार कालो मे विभाजित किया गया है (१) १००० ई० से १८५० ई० (२) १८५१ ई० से १९०० ई० (३) १९०१ ई० से १९२९ ई० (४) १९३० ई० से वर्तमान समय तक।

पहले अध्याय में जीवन तथा साहित्य मे जीवनी-साहित्य का महत्व निरूपित

करते हुए जीवनी-साहित्य, इतिहास, नाटक और उपन्यास मे अन्तर स्पष्ट किया गया है। जीवनी-साहित्य के तत्व तथा लक्षण निर्धारित करते हुए उसके विभिन्न रूपो की चर्चा की गयी है। यह सब जीवनी-साहित्य के तात्पर्य को स्पष्ट करने के लिए किया गया है।

दूसरे अध्याय मे १००० ई० से पूर्ववर्ती भारतीय भाषाओ के जीवनी-साहित्य का परिचय एव विश्लेषण करते हुए उसका मूल्याकन किया गया है। वेदों से लेकर पुराणो तक का जीवनी-साहित्य इस अध्याय का प्रतिपाद्य है।

तीसरे अध्याय मे १००० ई० से १८५० ई० तक रचित हिन्दी-जीवनी-साहित्य का सिंहावलोकन किया गया है। देश की विविध परिस्थितियो का आकलन करते हुए प्रदर्शित किया गया है कि इस युग का जीवना-साहित्य युगीन परिस्थितियो का वास्तविक प्रतिविम्ब था। मूल्याकन करते हुए बतलाया गया है कि इस साहित्य मे विवेचन और विश्लेषण का, जीवनी-साहित्य की चेतना तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का, प्राय अभाव है। हा, आत्मकथा का वैज्ञानिक विकास अवश्य उपलब्ध होता है।

चौथा अध्याय उन्नीसवीं शती का महत्व प्रतिपादित करता है। पाश्चात्य ससार से सम्पर्क का भारत के जीवन के सभी पक्षो पर गम्भीर प्रभाव पडा। इसी काल मे हिन्दी-गद्य का विकास हुआ और अग्रेजी जीवनी-साहित्य के मूल्यवान् भडार से प्रेरित होकर भारतीयो की प्रवृत्ति जीवनी-साहित्य की ओर हुई। क्रमश इस ओर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी विकास हुआ।

पाचवें अध्याय मे भारतेन्दु-युग और जीवनी-साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी युग मे हिन्दी-साहित्य का सर्वांगीण विकास हुआ। जीवनी-साहित्य मे भी प्रगति हुई किन्तु अभी तक वैज्ञानिक रीति पर लिखी हुई जीवनी का अभाव था।

छठे अध्याय मे द्विवेदी-युग के जीवनी-साहित्य पर विचार किया गया है। द्विवेदी जी ने इस ओर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीवनी-साहित्य के सृजन का प्रयास किया किन्तु उन्हें विशेष सफलता नही मिली। फिर भी इस युग के जीवनी-साहित्य के अनुशीलन द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि जीवनी-साहित्यकारो के दृष्टिकोण मे वैज्ञानिकता का प्रवेश होने लगा था और लोगो की प्रवृत्ति भी इस ओर होने लगी थी।

सातवें अध्याय में १९३० ई० से आज तक के जीवनी-साहित्य की समीक्षा की गयी है। देश के जीवन के विविध क्षेत्रो में विविध क्रान्तियो का साहित्य-

सृजन पर गम्भीर प्रभाव पडा। इस युग मे उत्कृष्ट जीवनी-साहित्य का सृजन हुआ। देश के महान् व्यक्तियो की आत्मकथा तथा उनकी जीवनियों का प्रशसनीय भडार इसी युग मे परिपूर्ण हुआ। इसका प्रभाव यह हुआ कि हिन्दी-जीवनी-साहित्य उन्नतिशील जीवनी-साहित्य की समता करने योग्य हो चला।

आठवें अध्याय मे हिन्दी तथा अग्रेज़ी जीवनी-साहित्य की तुलना की गयी है। हिन्दी-जीवनी-साहित्य के भविष्य के विषय मे लेखिका का मत है कि वह उज्ज्वल है किन्तु यह ( जीवनी-साहित्य-सृजन ) एक बडा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है।

## १०२. तुलसीदास की भाषा

[१९५३ ई०]

श्री देवकीनन्दन श्रीवास्तव का प्रबन्ध 'तुलसीदास की भाषा' सन् १९५३ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। इसी नाम से इसका प्रकाशन लखनऊ विश्वविद्यालय ने सन् १९५८ ई० मे किया।

इस प्रबन्ध मे पाच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय विषय-प्रवेश है। लेखक का विचार है कि 'तुलसीदास का भाषा-विषयक दृष्टिकोण वर्षों से चली आती हुई लोकभाषा के व्यवहार की परम्परा मे एक महत्वपूर्ण स्थिति का द्योतक है।' तुलसीदास की भाषा-विषयक धारणा पर प्रकाश डालते हुए कबीर से उनके भाषादर्शों की तुलना की गयी है। इस विषय मे तुलसीदास को स्वयम्भूदेव और विद्यापति की परम्परा मे बतलाया गया है। केशव से उनके आदर्श भिन्न थे। तत्पश्चात् तत्कालीन साहित्यिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियो पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे व्याकरणिक विवेचन है। कवि और व्याकरण के बंधनों पर विचार करते हुए अनुसन्धाता ने पर्याप्त विस्तार के साथ सज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय, वाक्य-रचना आदि शीर्षको से तुलसी की भाषा का व्याकरणिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

तृतीय अध्याय 'भाषावैज्ञानिक विश्लेषण' है। इसमे तुलसी द्वारा प्रयुक्त ध्वनिसमूह का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। भाषावैज्ञानिक आधार पर तुलसी की शब्दावली का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश, विदेशी भाषाओ के शब्द, प्रान्तीय भाषाओ से प्रभावित प्रयोग, हिन्दी की बोलियो के प्रयोग आदि पर विचार करते हुए आधुनिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से तुलसी की भाषा मे उपलब्ध प्रणाली की आशिक उपयोगिता प्रतिपादित की गयी है।

चतुर्थ अध्याय 'कलापक्ष' मे पहले तुलसी की कलाविषयक धारणा की विवेचना है। काव्यशास्त्रीय पक्ष के अन्तर्गत शब्दशक्ति, ध्वनि, गुण और रीति, अलकार और दोष आदि दृष्टियो से तथा सामान्य पक्ष के अन्तर्गत समस्यापूर्ति की कला, काव्यशास्त्रीय विनोद, वाक्यचातुर्य, सवादो की शब्दावली, भाषण, दार्शनिक विवेचन तथा स्तुति की शब्दावली, धवन्यर्थ-साम्य, शब्दमर्यादा, मुहावरो और लोकोक्तियो का प्रयोग-कौशल आदि अनेक दृष्टियो से तुलसी की कला की समीक्षा की गयी है।

पचम अध्याय 'तुलसी की शब्दावली मे सामाजिक और सास्कृतिक सकेत' है। इस अध्याय मे तुलसी की भाषा की पृष्ठभूमि और तुलसी द्वारा मान्य सास्कृतिक विचारधारा की पृष्ठभूमि का सम्बन्ध निर्दिष्ट किया गया है। इसके अनन्तर तुलसी की लोकसस्कृति-सम्बन्धी शब्दावली का वर्गीकरण किया गया है।

उपसहार मे भाषा-सम्राट् के नाते तुलसी के व्यक्तित्व का मूल्याकन है। तुलसी की भाषा के विषय मे किये गये समस्त विवेचन के आधार पर लेखक ने अपने निष्कर्षों का सार दे दिया है और प्रस्तुत अध्ययन की उपयोगिता बतलायी है।

परिशिष्ट मे भाषा के आधार पर तुलसी की रचनाओ का वर्गीकरण तथा उनकी जीवनी और कृतियो से सम्बन्धित सकेत प्रस्तुत किये गये हैं।

## १०३. मध्यकालीन संत-साहित्य

[१९५३ ई०]

श्री रामखेलावन पाडेय को उनके प्रवन्ध 'मध्यकालीन सन्त-साहित्य' पर सन् १९५३ ई० मे पटना विश्वविद्यालय ने डी० लिट० की उपाधि प्रदान की।

पहले अध्याय मे सामग्री और आधार की चर्चा की गयी है। मध्यकाल की ऐतिहासिक सामग्री का विवरण देते हुए सन्त-साहित्य के पाठ आदि की समस्याओ पर प्रकाश डाला गया है। पद-शैली आदि का भी विवेचन किया गया है। 'आदि-ग्रन्थ' और भाषासस्कार पर विचार किया गया है। पूर्ववर्ती सन्तो के पारस्परिक सम्बन्ध का निदर्शन किया गया है। सन्तसमाज और सूफी मतवाद का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पूर्वागत धर्मसाधना का परिचय देकर सन्तमत के प्रवर्त्तको और प्रतिनिधियो के योगदान का उल्लेख करते हुए सन्तमत के अध्येताओ का उनके प्रति क्या दृष्टिकोण रहा है, इसकी समीक्षा की गयी है।

दूसरा अध्याय 'समाज और परिस्थिति' है। ऐतिहासिक स्थिति का विशद विवेचन करते हुए विस्तारपूर्वक प्रदर्शित किया गया है कि सामयिक स्थिति ने सामाजिक व्यवस्था को कितना और किस प्रकार प्रभावित किया। धार्मिक स्थिति के अन्तर्गत विभिन्न धर्मसाधनाओ का परिचय देते हुए विविध सम्प्रदायो और मतो का अध्ययन किया गया है, साथ ही सर्वसाधारण की धार्मिक भावना का भी स्पष्टीकरण किया गया है।

तीसरे अध्याय के अन्तर्गत नैतिक धारणा की चर्चा की गयी है। आधार और दार्शनिक मतवादो का सम्बन्ध-निरूपण किया गया है। नैतिक अनुशासन की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। तत्ववाद और सदाचरण, कर्म की कसौटी आदि पर विचार किया गया है। नैतिकता और सदाचार गार्हस्थ्य और वैराग्य के विषय मे सन्तमत की धारणाओ को स्पष्ट किया गय है। नाथपन्थ और सन्तमत की नैतिक भावना, वैष्णवीय अहिंसा और सन्तमत आदि की तुलनात्मक विवेचना करते हुए सन्तसमाज की धारणा और सन्त के स्वरूप आदि पर विचार किया गया है।

चौथे अध्याय का प्रतिपाद्य सास्कृतिक चेतना है। भारत का सास्कृतिक विकास प्रदर्शित करते हुए उसमे आगत नवीन सस्कारो का अनुशीलन किया

या है। भारतीय सस्कृति पर मुस्लिम विजय के प्रभाव का भी निदर्शन किया या है।

पाचवें अध्याय मे कवित्व की समीक्षा की गयी है। काव्य और उसके वरूप का विवेचन करते हुए राग, बुद्धि और कल्पना का महत्त्व प्रतिपादित कया गया है। काव्य-परम्परा और सिद्धान्त-निरूपण, कवि और पाठक, वषय का विस्तार और सीमा आदि पर विचार किया गया है। इसके पश्चात् स, शैली, भाषा, अलकारविधान, चित्रमत्ता, छन्दोविधान आदि की दृष्टि से न्तो के कवित्व की परीक्षा की गयी है।

छठे अध्याय मे प्रतीकविधान की विवेचना की गयी है। इस अध्याय के तिपाद्य विषय इस प्रकार हैं—प्रतीक और प्रतीकवाद, प्रतीक और चिह्न, तीकत्व और व्यजनाशक्ति, प्रतीक और साध्यवसान रूपक, सरूपक (अलेगरी), न्योक्ति, प्रतीकोपासना, धार्मिक प्रतीक और सामान्य प्रतीक, प्रतिनिधिक तीक, सामान्य प्रतीक, प्रतीकात्मक रूपक, साकेतिक शब्द, बीजक, सरूपक—म्बन्धनात्मक, रूपात्मक और व्यापारात्मक, उलटवासी, उलटवासी और ष्टिकूट, सन्तसाहित्य मे उलटवासी।

सातवा अध्याय 'चिन्ताधारा' है। इसके अन्तर्गत परमतत्व और सृष्टि-त्व का व्यापक विवेचन किया गया है। जीवन-लक्ष्य मुक्ति और उसके स्वरूप र विचार किया गया है। आत्म-प्रतीति के सहायक, साधन और अधिकारियो ा निर्णय किया गया है। जीव-कोटियाँ, साधन और साधना, भोग आदि की पर्यंता, प्रवृत्ति और निवृत्ति आदि विषयो पर विस्तार से विचार किया गया ़। सन्तो के व्यापक मानववाद का उपस्थापन करते हुए अन्य धार्मिक चिन्ता-ाराओ से उनकी तुलना की गयी है। अन्त मे लेखक ने सन्तमत के मूल उत्स ा विवेचन किया है।

आठवाँ अध्याय 'प्रेमदर्शन' है। प्रेम और रति पर विचार करते हुए प्रेम ा स्वरूप, विभिन्न स्थितियाँ, सोपान, प्रेममार्ग की बाधाएँ, अव्यक्त प्रेम, ाध्यात्मिक प्रेम, सन्त-प्रेम का आदर्श आदि के विवेचन द्वारा सन्तो के प्रेम-र्शन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

नवें अध्याय मे रहस्य-भावना की ऐतिहासिक भूमिका निर्दिष्ट करते हुए उसकी परिभाषा और स्वरूप आदि का निर्धारण किया गया है। आध्यात्मिक विवाह और मिलन, लोककल्याण, रहस्यवाद और काव्यात्मकता तथा सन्तो ी रहस्यात्मक कोटियाँ आदि इस अध्याय के अन्य प्रतिपाद्य विषय हैं।

दसवाँ अध्याय 'आनन्द का अन्वेषण' है। सुख के विभिन्न रूपो की चर्चा करते हुए मानव के प्रेय और श्रेय पर विचार किया गया है। दार्शनिक मतवादो मे आनन्द का निर्देश करते हुए सन्तो की आनन्द-साधना पर विचार किया गया है। आनन्द और मनोनिग्रह की विवेचना करते हुए लेखक ने आनन्द की अनुभूति और उसके स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है। प्रबन्ध के दो परिशिष्टो मे क्रमश विशिष्ट पदावली तथा सहायक ग्रन्थो का विवरण है।

## १०४. जयशंकर प्रसाद के काव्य का विकास

[१९५३ ई०]

श्री प्रेमशकर को उनके प्रबन्ध 'जयशकर प्रसाद के काव्य का विकास' पर सागर विश्वविद्यालय ने सन् १९५३ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। 'प्रसाद का काव्य' शीर्षक से इसका प्रकाशन भारती-भडार, इलाहाबाद, ने स० २००२ मे किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध तेरह अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम तीन अध्यायो मे पृष्ठ-भूमि का विवेचन किया गया है। पहले अध्याय मे प्रसाद-काव्य की पृष्ठभूमि के अन्तर्गत प्रसाद के साहित्य-प्रवेश की पूर्ववर्ती स्थिति पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे प्रसाद के व्यक्तित्व का अध्ययन किया गया है। उनके सामाजिक और वैयक्तिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे अध्याय मे 'इन्दु' की प्रगति के साथ ही साथ प्रसाद के काव्य-विकास-क्रम की खोज की गयी है।

तदनन्तर पाच अध्यायो मे प्रसाद के काव्य-विकास का विस्तृत अनुशीलन किया गया है। चौथे अध्याय में प्रसाद की उन आरम्भिक कविताओ का अध्ययन किया गया है जो उन्होने ब्रजभाषा मे रची थीं। पाचवें अध्याय मे खडी-बोली के प्रथम चरण मे लिखी गयी कविताओ ('करुणालय', 'महाराणा का महत्व', 'प्रेम-पथिक', 'कानन-कुसुम') पर विचार किया गया है। छठे अध्याय मे 'आसू' की विस्तृत विवेचना की गयी है। सातवें अध्याय मे 'झरना' से लेकर 'लहर' तक प्रसाद की गीत-सृष्टि का परीक्षण किया गया है। आठवें अध्याय मे प्रसाद के नाटकों के गीतो की समीक्षा की गयी है।

इसके बाद तीन अध्यायो (९–११) मे 'कामायनी' पर विचार किया गया है। नवें अध्याय मे 'कामायनी' के ऐतिहासिक आधार (जलप्लावन की कथाओ) और कथा-योजना पर प्रकाश डाला गया है। दसवें अध्याय मे 'कामायनी' के चिन्तन का निरूपण किया गया है। ग्यारहवें अध्याय मे 'कामायनी' के काव्यत्व की विस्तृत विवेचना की गयी है। इस अध्याय मे भाव-निरूपण, वस्तु-वर्णन, प्रकृति-चित्रण, चरित्र-चित्रण, रस, भाषा और शैली, महाकाव्यत्व आदि विविध दृष्टिकोणो से 'कामायनी' का परीक्षण किया गया है।

अन्तिम दो अध्यायो मे प्रसाद-काव्य का मूल्याकन किया गया है। बारहवें अध्याय मे भारतीय काव्य और प्रसाद पर विचार किया गया है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ आदि सस्कृत के श्रेष्ठ कवियो, सूर, तुलसी, भारतेन्दु, तथा बगला के कवियो और हिन्दी के पन्त और महादेवी, आदि आधुनिक कवियो से प्रसाद का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए अनुसधाता ने उन्हें कालिदास के समान रससिद्ध कवि माना है। तेरहवें अध्याय मे प्रसाद की तुलना होमर, वर्जिल, दान्ते, स्पेन्सर, शेक्सपियर, मिल्टन, वर्डस्वर्थ, कोलरिज, बायरन, शेली, गेटे और पुश्किन आदि पाश्चात्य कवियो से करते हुए शेली, गेटे और पुश्किन से उनका साम्य प्रतिपादित किया गया है। परिशिष्टो मे प्रसाद-काव्य की मूल चेतना, उपसहार तथा प्रसाद-पुस्तकालय आदि का विवरण है।

## १०५. दखिनी के सूफी लेखक

[१९५४ ई०]

श्री विमला वाघ्रे को उनके प्रबन्ध 'दखिनी के सूफी लेखक' पर सन् १९५४ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि प्राप्त हुई।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य के विकास को जानने के लिए दखिनी हिन्दी के लेखको का अध्ययन किया गया है। सम्पूर्ण प्रबन्ध की सामग्री छ अध्यायो मे सकलित है। प्रथम अध्याय मे दक्षिण भारत, दक्षिण की विभिन्न भाषाए, दखिनी भाषा (ऐतिहासिक तथ्य), अपभ्रश और क्षेत्रीय

बोलिया, पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी, द्राविड भाषाए, दक्षिण मे अपभ्रंशकालीन हिन्दी, दखिनी-साहित्य का क्षेत्र, दखिनी का सौष्ठव और सूफी साहित्य तथा विविध साहित्य—इन विषयो पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे सूफीवाद का अध्ययन करते हुए उसकी साम्प्रदायिक और नामकरण-विषयक विशिष्टताओ का उल्लेख है। साथ ही सूफीमत का साम्प्रदायिक और सैद्धान्तिक रूप मे भारत-आगमन एव उसकी चार प्रसिद्ध शाखाओ का इतिहास और दखिनी पर उसके प्रभाव की विस्तृत चर्चा भी इस अध्याय मे हुई है।

तृतीय अध्याय मे कुतुबशाही काल तथा आदिकालीन मुख्य दखिनी लेखको की रचनाओ का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है जिसमे ख्वाजा बदेनवाज, शाहगीराजी शमसुलशाख और शाहअली मुहम्मद गावधनी प्रमुख हैं। गौण कवियो मे सैयद मुहम्मद अकबर हुसैनी, अब्दुल्ला, राजी व बाबा शाह हुसैनी का परिचयात्मक अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे मध्यकालीन दखिनी-लेखको मे प्रमुख बुरहानुद्दीन जानम मुहम्मद कुली कुतुब शाह, मुल्ला गवासी, मुल्ला वजही आदि की काव्यपरपरा, विशिष्टता तथा रचनाकाल का परिचय दिया गया है। गौण लेखको मे मीराजी हसन खुदानामा मीरा याकूब, हजरत नूर दरया, शाहमन अर्फ, गुलामअली, आविन्द शाह और इशरवी का परिचय देते हुए उनकी रचनाओ का अध्ययन किया गया है।

पाचवें अध्याय मे परवर्ती मुख्य लेखक शाह अमीनुद्दीन आला शेखवजीह-उद्दीन वजदी व काजी मुहम्मद बहरी का परिचय देते हुए उनके काव्य-विषय की प्रतिपाद्य विशिष्टताओ का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। गौण लेखको मे अबुल हसन खरबी, सैयद मीरा हुसैनी, मौलवी मुहम्मद इसहाक बीजापुरी, मरखूम अलीशाह औरगाबादी व मुजरमी का परिचय देते हुए उनकी वश-परम्परा, रचना-काल तथा रचना-वैशिष्ट्य पर विचार किया गया है।

छठे अध्याय मे दखिनी सूफी लेखको की सूफी विचारधारा, गुरु की महत्ता, ईश्वर मे विश्वास, ईश्वर को सर्वशक्तिमान् समझना, साधना के मार्ग लौकिक और अलौकिक प्रेम, पाच तत्व तथा ईश्वर मे मानव का विलय और महामिलन जैसे महत्वपूर्ण विषयो पर व्याख्यात्मक शैली मे विचार हुआ है।

परिशिष्ट भाग मे सूफी लेखको की सूची भी दे दी गयी है।

## १०६. हिन्दी-गद्यकाव्य का आलोचनात्मक और रूपात्मक अध्ययन

[१९५४ ई०]

श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' का प्रबन्ध 'हिन्दी-गद्यकाव्य का आलोचनात्मक और रूपात्मक अध्ययन' सन् १९५४ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध १९५८ ई० मे राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, से 'हिन्दी-गद्यकाव्य' के नाम से प्रकाशित हुआ।

यह ग्रन्थ सात अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे गद्यकाव्य की परिभाषा का निरूपण है। अध्याय के आरम्भ मे सस्कृत और हिन्दी मे गद्य-काव्य के स्वरूप का सक्षिप्त उल्लेख है। रायकृष्णदास, वियोगी हरि, वृन्दावनलाल वर्मा, सद्‌गुरु शरण अवस्थी, महादेवी वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानो के गद्यकाव्य की परिभाषा के सम्बन्ध मे प्रकट किये गये विचारो का उल्लेख है। वेद, उपनिषद्, बौद्ध-जैन-साहित्य आदि मे गद्यकाव्य के विकास का विहगावलोकन करके आधुनिक काल के पूर्व हिन्दी-गद्यकाव्य के अभाव के कारणो पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् आधुनिक काल मे गद्य-काव्य के विकास के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक कारणो पर विचार करके यह बतलाया गया है कि गद्यकाव्य का विकास हिन्दी की ही विशेषता है। अध्याय के अन्त मे गद्य की अन्य विधाओ से गद्यकाव्य का भेद बतलाकर सक्षेप मे उसकी विशेषताए निरूपित की गयी है। द्वितीय अध्याय मे हिन्दी-गद्यकाव्य के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन है। लेखक की मान्यता है कि गद्यकाव्य हिन्दी की अपनी वस्तु है, यह दूसरी बात है कि उस पर बगला आदि का भी प्रभाव पडा है।

तृतीय अध्याय मे गद्यकाव्यात्मक कृतियो का प्रवृत्तिगत विभाजन प्रस्तुत किया गया है। गद्यकाव्य के पाच मुख्य विषय-विभाग किये गये हैं। प्रेमात्मक, राष्ट्रीय-भावना-समन्वित, ऐतिहासिक, प्रकृतिसौन्दर्यमूलक और स्फुट। प्रेमात्मक विषयो के अन्तर्गत लौकिक एव आध्यात्मिक (रहस्योन्मुख तथा भक्तिपरक) प्रेमपरक विषयो की विवेचना है। स्फुट विषयो के अन्तर्गत मनोवृत्तिप्रधान, व्यक्तिप्रधान, तथ्यप्रधान और सूक्तिप्रधान विषय समाविष्ट हैं। उपर्युक्त वर्गो के

अन्तर्गत हिन्दी-गद्यकाव्य के प्रतिपाद्य विषयो का अनुशीलन किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे भाषा, अलकार, रस और भावाभिव्यजन-शैली की दृष्टि से हिंदी-गद्यकाव्य का अध्ययन किया गया है। अध्याय के आरम्भ मे भाषा-शैली के विविध प्रकार शब्दसगठन और प्रवाह की समीक्षा है। उसके बाद गद्यकाव्य मे अलकारविधान पर विचार किया गया है। गद्यकाव्य मे अभिव्यक्त विभिन्न रसो और भावो का विवेचन है। अध्याय के अतिम भाग मे रूपविधान की दृष्टि से हिन्दी-गद्यकाव्य की प्रधान शैलियो (गीतशैली, कथाशैली, वर्णनशैली, स्वगत-शैली, सवादशैली और सूक्तिशैली) की समालोचना है। पचम अध्याय का शीर्षक है 'गद्य काव्य और मनोविज्ञान'। इसमे विविध प्रकार की मनोवैज्ञानिक दृष्टियो से हिन्दी-गद्यकाव्य का मनोवैज्ञानिक आधार स्पष्ट किया गया है। षष्ठ अध्याय मे हिन्दी-गद्यकाव्य मे व्यक्त दार्शनिक विचारो का सिंहावलोकन किया गया है। सप्तम अध्याय मे हिन्दी-गद्यकाव्य के महत्वपूर्ण योगदान और उसके असाधारण गौरव का मूल्याकन है।

परिशिष्ट मे दिये गये गद्यकाव्य-लेखको के परिचय, विद्वानो के पत्रो तथा गद्यकाव्य-कृतियो की क्रमानुसार सूची ने ग्रन्थ की उपयोगिता बढा दी है।

## १०७. मध्यपहाड़ी भाषा और उसका हिन्दी से सम्बन्ध—एक आलोचनात्मक अध्ययन

[१९५४ ई०]

श्री गुणानन्द जुयाल को आगरा विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९५४ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी। उनके अनुसन्धान-कार्य का विषय था 'मध्यपहाडी भाषा और उसका हिन्दी से सम्बन्ध—एक आलोचनात्मक अध्ययन'। प्रस्तुत प्रवन्ध मे उसका शीर्षक इस प्रकार दिया गया है 'मध्य-पहाडी भाषा ('गढवाली कुमाउनी') का अनुशीलन और उसका हिन्दी से सम्वन्ध'। उनका यह शोध-प्रवन्ध अभी तक प्रकाशित नही हुआ है।

यह प्रवन्ध दस अध्यायो मे विभाजित है। ग्रथ के आरम्भ मे सबले पहले एक मानचित्र दिया हुआ है जिसमे मध्यपहाडी बोलियो तथा उनकी उपबोलियो की सीमा दिखायी गयी है। पहले अध्याय मे प्रस्तावना है जिसमे मध्यपहाडी

भाषा के नामकरण, उसकी बोलियो, उसके क्षेत्र, तथा उसके विकास का ऐतिहासिक परिचय है। दूसरे अध्याय का प्रतिपाद्य ध्वनि-विचार है। इस अध्याय मे मध्यपहाडी भाषा के मूल स्वरो, अनुस्वार और अनुनासिक, सयुक्त स्वर तथा स्वर-सान्निध्य, व्यजनो और स्वराघात का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अनुशीलन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे शब्द का विवेचन है। शब्द के सामान्य रूप, शब्दसमूह और अर्थ-भिन्नता की दृष्टि मे मध्यपहाडी भाषा का अध्ययन किया गया है। चौथे अध्याय मे सज्ञाओ, लिंग, वचन और कारक पर विचार किया गया है। पाचवें अध्याय मे मध्यपहाडी भाषा के विशेषणो का अध्ययन है। छठे अध्याय मे सर्वनाम-रूपो और सातवें अध्याय मे क्रिया-रूपो की विवेचना की गयी है। आठवें अध्याय मे अव्यय ( 'क्रियाविशेषण और समुच्चयबोधक' ) का अध्ययन किया गया है। नवें अध्याय मे पहले पदक्रम का और तत्पश्चात् वाक्यविन्यास का अनुशीलन किया गया है। अन्तिम अध्याय मे मध्यपहाडी बोलियो के साहित्य का निरूपण किया गया है।

## १०८. घनानन्द और मध्यकाल की स्वच्छन्द काव्यधारा

[१९५४ ई०]

श्री मनोहरलाल गौड को उनके प्रबन्ध 'घनानन्द और मध्यकाल की स्वच्छन्द काव्यधारा' पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५४ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। 'घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा' के नाम से इस ग्रन्थ का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ने सन् १९५४ ई० मे किया। मूल प्रबन्ध के परिशिष्ट मे दिया गया रसखान, आलम, बोधा और ठाकुर सम्बन्धी विवरण प्रकाशित ग्रथ मे नही है। आशा है कि वह परिवर्धित रूप मे अलग से पुस्तकाकार प्रकाशित होगा।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे घनानन्द के जीवनवृत्त का निरूपण है। आनन्दघन, नन्दगाव के घनानन्द, जैन कवि आनन्दघन आदि पर विचार करते हुए घनानन्द का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है। दूसरे अध्याय मे घनानन्द की रचनाओ का अनुशीलन किया गया है।

पहले उनके प्रकाशन का इतिहास तथा विवरण दिया गया है, तत्पश्चात् प्रतिपाद्य विषय की विवेचना की गयी है। कर्तृत्व तथा शीर्षकी परीक्षा करके रचनाओ के पारस्परिक साम्य का निदर्शन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे उनकी भाषा की समीक्षा की गयी है। कवि के मुहावरो के प्रयोग तथा लाक्षणिक प्रयोगो का अध्ययन किया गया है और उसकी व्याकरण-व्यवस्था पर विचार किया गया है। चौथे अध्याय मे घनानन्द की शैली की चर्चा करते हुए उनकी भाषाशैली, छन्दोविधान तथा अलकार-प्रयोग का विस्तृत निरूपण किया गया है। पाचवा अध्याय 'रस और भाव' है। इसमे शृगार रस की प्राचीन परम्परा और प्रधानता का निदर्शन किया गया है। घनानद के प्रकृति-वर्णन की विवेचना की गयी है। भाव और उसकी अन्तर्दशाओ पर विचार किया गया है। छठे अध्याय मे 'प्रेम' शब्द की निरुक्ति के विषय मे विभिन्न आचार्यों के मतो का उपस्थापन करते हुए वासना, काम, इश्क आदि से उसका भेद निरूपित किया गया है। प्रेम के स्वरूप का निर्धारण करते हुए रीतिकालीन प्रकृत प्रेम और घनानन्द के प्रेम के अन्तर को स्पष्ट किया गया है।

सातवें अध्यास्य 'दर्शन और सम्प्रदाय' मे निम्बार्क और घनानन्द पर विचार किया गया है। आठवे अध्याय का प्रतिपाद्य रीतिकाल की स्वच्छन्द धारा है। पहले हिन्दी-साहित्य मे स्वच्छन्द आदि प्रवृत्तियो का चिन्तन किया गया है, तत्पचात् क्लासिकल तथा रोमान्टिक मार्गों के लक्षण बतलाये गये हैं। तदनन्तर प्रस्तुत स्वच्छन्द धारा की विशेषताओ का निदर्शन करके काव्यप्रवृत्ति का अनुशीलन किया गया है। नवें अध्याय 'भक्तिरस' मे भक्ति की आवश्यकता, श्रेष्ठता, स्वरूप, गुण, लक्षण, भेद आदि का विभिन्न आचार्यों के मतो के प्रकाश मे विवेचन किया गया है। घनानद की शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भक्ति की समीक्षा करते हुए कवि के भक्ति-दर्शन को स्पष्ट किया गया है।

दसवें अध्याय मे अनुसधाता ने घनानद की अन्य अनेक कवियो (भारतेन्दु, रत्नाकर, देव, बिहारी आदि) से तुलना की है और हिन्दी-साहित्य मे घनानद का स्थान निर्धारित किया है।

अप्रकाशित प्रबन्ध के परिशिष्ट मे रसखान, आलम, बोधा और ठाकुर के जीवनवृत्त दिये गये हैं तथा प्रेमभावना और काव्यधारा पर विचार किया गया है।

## १०९. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन
[१९५४ ई०]

श्री ब्रह्मदत्त शर्मा का प्रबन्ध 'हिन्दी कहानियो का विवेचनात्मक अध्ययन' सन् १९५४ ई० में आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। इसका प्रकाशन सन् १९५८ ई० मे सरस्वती पुस्तक सदन, मोती कटरा, आगरा, से हुआ।

यह प्रबन्ध छ: प्रकरणो मे विभक्त है। पहले प्रकरण में साहित्य के स्वरूप, साहित्य के अग, कहानी की स्वरूप-व्याख्या, साहित्य के अगो मे कहानी की स्वरूप-स्थिति, रचना के कतिपय रूपो—गीतिकाव्य, उपन्यास, काव्यात्मक गद्य, नाटकीय दृश्य, निबन्ध, कथा, पुराण तथा इतिहास, खड-कथा, परिकथा, कथानिका, गल्प और अग्रेजी स्टोरी—से कहानी के रूप-साम्य तथा स्वरूप-विकास के आधार पर कहानियो का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के अन्त मे कहानी के तत्वो (कथावस्तु, पात्र, सवाद, उद्देश्य, वातावरण, शीर्षक, आरम्भ और अन्त तथा भाषाशैली) की विवेचना है। दूसरे प्रकरण में प्राचीन और मध्यकालीन कथा-साहित्य एव बगला कहानी-साहित्य के इतिहास तथा स्वरूप-विकास का अध्ययन है। तीसरे प्रकरण मे निर्माण-काल (१८००-१९०० ई०) की कहानियो का अध्ययन है। हिन्दी के प्रथम कहानीकार इशाअल्लाखा, लल्लूलाल, सदल मिश्र, राजा शिव प्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, गौरीदत्त शर्मा आदि की कहानियो के विषय, प्रतिपादन-शैली तथा स्वरूप-विकास-सबधी विशेषताओ और उनके भिन्न-भिन्न प्रयोगो की समीक्षा की गयी है।

चौथे प्रकरण मे प्रयोगकाल (१९००-१९१० ई०) की कहानियो का अध्ययन है। आरम्भ में अग्रेजी, सस्कृत और बगला से अनूदित कहानियो के विषय, प्रतिपादन-शैली तथा स्वरूप-विकास-सम्बन्धी विशेषताओं की विवेचना है। तत्पश्चात् मौलिक कहानियो का वर्गीकरण (प्रेम तथा मनोरजन प्रधान, पौराणिक तथा ऐतिहासिक, जासूसी तथा साहसप्रधान, सामाजिक और उपदेशात्मक) प्रस्तुत करके विषय, शैली और स्वरूप-विकास की दृष्टि से उनका अनुशीलन किया गया है। पाचवें प्रकरण मे विकासकाल (प्रसाद-प्रेमचन्द-युग—१९११-१९३० ई०) की कहानियो का निम्नाकित नो विभागो के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है—विकासकाल की कहानियों का प्रारम्भ तथा उनका वर्गीकरण, भावमूलक आदर्शवादी परम्परा की कहानिया और उनके कहानी-

कार, आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा की कहानिया, हास्यप्रधान कहानि आदर्शोन्मुख यथार्थवादी वातावरण-प्रधान कहानिया, यथार्थवादी कहानि प्रतीकात्मक कहानिया, प्राकृतवादी कहानिया और विकासकाल मे हिन्दी-कहा का विकास ।

छठे प्रकरण मे उत्कर्ष-काल (१९३०-१९४७ ई०) की कहानियो अ कहानीकारो का अध्ययन है । आरम्भ मे इस काल की कहानियो का विक दिखलाकर उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है । तत्पश्चात् विभिन्न शीर्ष के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक कहानियो, पूर्वपरम्परा की कहानि समाजवादी यथार्थवाद की कहानियो, कामवासना का नग्न चित्रण करने वा कहानियो, कल्पना और भावुकताप्रधान कहानियो, भारतीय गृहस्थ और पा वारिक जीवन की कहानियो, हास्यरस की कहानियो, सास्कृतिक तथा ऐ हासिक विकास की कहानियो, वैज्ञानिक कहानियो, शिकारी जीवन की कहानि एव अनूदित कहानियो का विवेचन है । हिन्दी-कहानियो पर पश्चिमी कहानीक के प्रभाव का आकलन, उत्कर्ष-काल मे हिन्दी-कहानी के विकास का निदर्श और अन्त मे हिन्दी-कहानी के भविष्य का सकेत है ।

## ११०. हिन्दी मे पशुचारण-काव्य

[१९५४ ई०]

श्री दयाशकर शर्मा का प्रवन्ध 'हिन्दी मे पशुचारण काव्य' सन् १९५४ ई मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नही हुआ है ।

प्रस्तुत प्रवन्ध दस अध्यायो मे विभाजित किया गया है । पहले अध्याय पशुचारण और काव्य मे उसके महत्व का प्रतिपादन है । दूसरे अध्याय भारतवर्ष मे पशुचारण-प्रवृत्ति का प्रारभिक विकास दिखलाया गया है । तीस अध्याय मे सस्कृत के पशुचारण-काव्य की समीक्षा है । चौथे अध्याय मे प्राकृ और अपभ्रश के पशुचारण काव्य का सिहावलोकन है । पाचवें अध्याय प्रारम्भिक हिन्दी-कविता मे पशुचारणतत्व का निरूपण है । छठे अध्याय म अष्टछाप के कवियो की कविता मे पशुचारणतत्व की विवेचना है । सातवें

# १२४. आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रेम और सौन्दर्य

[१९५५ ई०]

श्री रामेश्वरलाल खडेलवाल को उनके प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रेम और सौन्दर्य' पर सन् १९५५ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इस प्रबन्ध का प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ९६, दरियागज, दिल्ली, ने सन् १९५८ ई० मे किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध छः प्रकरणो में विभक्त है। पहले प्रकरण मे प्रेम की व्युत्पत्ति व परिभाषा दी गयी है। उसके मूल स्वरूप का निरूपण किया गया है। प्रेम का विवेचन करते हुए उसके विविध रूपो की भी चर्चा की गयी है। इसी प्रकार सौन्दर्य की भी व्याख्या की गयी है। दूसरे प्रकरण का प्रतिपाद्य 'भारतेन्दु-काल' है। आरम्भ में यह बतलाया गया है कि इस युग मे रति की परिधि का विस्तार हुआ और सौन्दर्य की नवीन चेतना का स्फुरण हुआ। तदनन्तर इस युग की परिस्थितियो व उनके प्रभाव का विवेचन किया गया है। भारतेन्दु-युग का प्रेम-निरूपण, सौन्दर्य-भावना तथा काव्य-शैली—इस अध्याय के अन्य प्रतिपाद्य विषय हैं। प्रकरण के अन्त मे युग की देन का भी मूल्याकन है।

तीसरे प्रकरण मे दिखाया गया है कि द्विवेदी-युग मे राष्ट्रीय प्रेम-भावना अपने चरमोत्कर्ष पर जा पहुची। प्रणय-विषयक काव्य का सृजन भी इस युग मे हुआ। इस युग के काव्य मे प्रेम के अन्य रूपो (भक्ति, प्रकृति प्रेम, मानव-प्रेम, वात्सल्य प्रेम, सूक्ष्म प्रेम) की भी अभिव्यक्ति मिलती है। द्विवेदी-युग की प्रेम-भावना शुद्ध एव उसकी सौन्दर्य-चेतना सूक्ष्म तथा गम्भीर है। इस मान्यता की स्थापना करते हुए काव्यशैली व युग की देन का मूल्याकन किया गया है। चौथे अध्याय मे प्रतिपादित किया गया है कि छायावाद-काल मे प्रेम और सौन्दर्य, स्थूलता तथा यथार्थता से सूक्ष्मता एव अतिकाल्पनिकता की ओर अग्रसर होते गये। छायावाद की परिस्थितियो का उल्लेख करते हुए अनुसधाता ने छायावादी काव्य मे वर्णित प्रेम के विविध रूपों की विवेचना की है। अन्त मे युग की देन का मूल्याकन किया है।

पाचवें प्रकरण मे प्रगतिप्रयोगवाद की प्रेम और सौन्दर्य की भावना पर प्रकाश डाला गया है। काव्य की सामान्य प्रवृत्ति अब आदर्श से यथार्थ की

ओर आ रही थी। इस युग मे आदर्श और यथार्थ का समन्वय अन्तश्चेतनावाद मे हुआ। इस अध्याय मे प्रथमत पृष्ठभूमि का निर्देश करते हुए प्रगति और प्रयोग का अर्थ विवेचित किया गया है। दोनो के विषय-निरूपण को स्पष्ट किया गया है। इन युगो की आलोचनात्मक परख की गयी है। अन्त मे अन्तश्चेतनावाद की व्याख्या की गयी है। छठा अध्याय उपसहार के रूप मे है जिसमे आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्रेम और सौन्दर्य के प्रतिपादन का मूल्याकन किया गया है। परिशिष्ट मे कविता और चित्र, सगीत आदि का भी विवेचन किया गया है।

## १२५. रामानन्द-सम्प्रदाय और हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव

[१९५५ ई०]

श्री बदरी नारायण श्रीवास्तव को उनके प्रबन्ध 'रामानन्द-सम्प्रदाय और हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव' पर सन् १९५५ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली। यह प्रबन्ध सन् १९५७ ई० मे हिन्दी-परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, से प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायो मे विभक्त है। ग्रन्थ की 'भूमिका' मे रामानन्द के युग की धार्मिक पृष्ठभूमि का परिचय दिया गया है। प्रथय अध्याय मे अध्ययन-सामग्री की परीक्षा की गयी है। द्वितीय अध्याय मे रामानन्द के जीवन-वृत्त का निरूपण है। तृतीय अध्याय मे उनके ग्रन्थो तथा उनकी प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे सम्प्रदाय के इतिहास एव तत्सम्बद्ध शाखाओ का वर्णन है। पचम अध्याय मे रामानन्द के दार्शनिक सिद्धान्तो और षष्ठ अध्याय मे उनकी भक्ति-पद्धति की मीमासा की गयी है। सप्तम अध्याय मे उसके पूजा-सिद्धान्त एव कर्मकाण्ड के महत्त्व तथा स्थान का उपस्थापन है। अष्टम अध्याय मे हिन्दी-कवियो पर रामानन्दी दार्शनिक सिद्धान्तो के प्रभाव का अध्ययन है। इस अध्याय में तुलसीदास, कबीर, मैथिलीशरण गुप्त तथा अन्य कवियों की दार्शनिक विचार-धारा पर रामानन्द के प्रभाव का आकलन किया गया है। दशम अध्याय में निष्कर्षों की स्थापना की गयी है। प्रबन्ध के

ार परिशिष्ट इस प्रकार हैं—सहायक-पुस्तक-सूची, रामानन्द-सम्प्रदाय के केन्द्र, ामानुक्रमणी और स्वामी भगवदाचार्य का पत्र।

## १२६. सूरदास और उनका साहित्य

[१९५५ ई०]

डा० हरवंश लाल शर्मा का प्रबन्ध 'सूरदास और उनका साहित्य' सन् १९५५ ई० में नागपुर विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत ुआ। यह प्रबन्ध प्रकाशित रूप में ही प्रस्तुत हुआ था। प्रकाशक है—भारत ्रकाशन मन्दिर, सुभाष रोड, अलीगढ।

यह प्रबन्ध ग्यारह भागो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे सूर के जीवनचरित ा अध्ययन किया गया है। बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत 'भाव प्रकाश' 'वल्लभ-दिग्विजय', 'संस्कृत वार्ता मणिमाला', 'अष्ट सखामृत', 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम, घौल', 'भाव संग्रह', 'वैष्णवाह्निक पद' आदि ग्रन्थो पर विचार किया गया है। तदनन्तर अन्त साक्ष्य पर विचार करते हुए सूर के जन्मस्थान, जन्मतिथि, ाति तथा वंश, अन्धत्व, वैराग्य तथा सम्प्रदाय-प्रवेश और गोलोकवास आदि र प्रकाश डाला गया है। दूसरा अध्याय 'सूरदास जी का साहित्य' है। ग्रन्थ-रचना पर विचार करने के अनन्तर 'सूरसारावली', 'साहित्यलहरी' और 'सूरसागर' का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

तीसरे अध्याय मे सूर-साहित्य की पृष्ठभूमि का विवेचन किया गया है। इस क्रम के अन्तर्गत भक्ति-आन्दोलन, बौद्धमत, नाथ-सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय, सामाजिक स्थिति तथा साहित्यिक परिस्थितियो का अनुशीलन किया गया है। चौथा अध्याय 'भक्ति-आन्दोलन मे दक्षिण का योग और वैष्णव सम्प्रदाय' है। इसमे पहले दक्षिण मे हुए भक्ति-आन्दोलन की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। इसके बाद विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों ( शंकर से चैतन्य तक ) और सूर के समसामयिक सखी तथा राधावल्लभीय सम्प्रदायो का परिचय दिया गया है।

पाचवें अध्याय मे पुराण-साहित्य की प्राचीनता प्रतिपादित करते हुए पुराण-साहित्य मे कृष्ण के विकास का अध्ययन किया गया है। वैदिक साहित्य और 'महाभारत' के कृष्ण पर भी विचार किया गया है। तदनन्तर पुराणो मे

प्रतिपादित कृष्ण-चरित का अनुशीलन किया गया है। चरित की दृष्टि से भागवत के चार विभाग किये गये हैं—घटनात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक और गीतात्मक।

छठे अध्याय मे श्रीमद्भागवत और 'सूरसागर' की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। भागवत के स्वरूप-निर्धारण और रचना-काल, 'सूरसागर मे भागवत का अनुसरण करने वाली उक्तियो तथा विषय और परिमाण की दृष्टि से 'सूरसागर' और भागवत पर विचार करते हुए विभिन्न मतो की समीक्षा करने के अनन्तर निष्कर्षों की स्थापना की गयी है। सातवे अध्याय मे सूरदास के कृष्ण और गोपियो का अध्ययन किया गया है। सूर के कृष्ण और गोपियो की भागवत से तुलना करने के पश्चात् राधा के विकास की पृष्ठभूमि मे सूर की राधा पर भी प्रकाश डाला गया है।

आठवा अध्याय 'सूर के दार्शनिक सिद्धान्त' है। पहले भागवत तथा वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तो का निरूपण है। तब श्रीकृष्ण-लीलाओ के आध्यात्मिक पक्ष तथा प्रतीकार्थ पर विचार किया गया है। अन्त मे ब्रह्म, जीव, जगत् और ससार, माया, मोक्ष, रास आदि शीर्षको के अन्तर्गत सूर के दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन है। नवें अध्याय मे सबसे पहले भक्ति के विकास और स्वरूप का विवेचन है। इसके बाद सूर की भक्ति-साधना का उपस्थापन है। अन्त मे सूर के सन्दर्भ मे शान्ता, सख्य, वात्सल्य, मधुरा, आत्मनिवेदन और प्रेमाभक्ति का परिशीलन किया गया है। दसवा अध्याय 'पुष्टि-सम्प्रदाय और सूरदास' है। सम्प्रदाय का सामान्य विवेचन करते हुए पुष्टिमार्गी भक्ति, श्रीमद्भागवत मे पुष्टि-तत्त्व, पुष्टिमार्गीय सेवा तथा सूरदास और पुष्टिमार्ग पर विचार किया गया है।

ग्यारहवें अध्याय मे शैली, वर्णनात्मक आख्यान, दृश्य तथा वर्णन-विस्तार, अलकार-योजना, छन्दोविधान, भाषा, शब्दभडार, लोकोक्तिया और मुहावरे, भाव और रस, भावपक्ष, नायिका-भेद, रस-प्रतिपादन आदि अनेक दृष्टियो से सूर के काव्य की विशद समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

## १२७. आदिकालीन हिन्दी-साहित्य की प्रवृत्तियां

[१९५५ ई०]

श्री इन्द्रपाल सिंह का प्रवन्ध 'आदिकालीन हिन्दी-साहित्य की प्रवृत्तिया' सन् १९५५ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रवन्ध छ प्रकरणो मे विभक्त है। पहले प्रकरण मे सरह, गोरख और कवीर की परम महासुह निर्वाण, आनन्द, निर्वेद, ब्रह्मचर्य और योग सम्वन्धी रचनाओ, उनकी उलटवासियो के अर्थ, 'सन्देशरासक' और 'पदमावत' के विप्रलम्भ-शृगार का निरूपण है। फारसी और अग्रेजी साहित्य की रक्तपात की प्रवृत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है। दूसरे प्रकरण मे अपभ्रंश और उसकी पूर्ववर्तिनी भाषाओ का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। तीसरे प्रकरण मे देश की आलोच्यकालीन परिस्थितियो—सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सास्कृतिक आदि—का अनुशीलन करने के अनन्तर अपभ्रश के कवियो और राजाओ द्वारा उनके सम्मान पर विचार गया है।

चौथे प्रकरण मे धार्मिक पृष्ठभूमि का पर्यालोचन है। अनुसन्धाता का मत है कि इस युग के साहित्य मे धर्म और दर्शन की प्रधानता रही। धर्म की वैदिक परिभाषा और व्याख्या करते हुए वेदकालीन भारत की धार्मिक सभ्यता, यज्ञ-प्रकार और फल, स्वाध्याय, दान, तप आदि विषयो पर प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् स्मृतियो, गीता, श्रीमद्भागवत आदि में विवृत धर्म का अध्ययन है।

पाचवें प्रकरण मे दार्शनिक पृष्ठभूमि और दर्शन की परिभाषा वतला कर वैदिक धर्म और ब्रह्मचिन्तन के क्रम, साख्य, द्वैतवाद एव वेदान्त के अद्वैतवाद, ब्रह्म के निर्गुण-सगुण-रूप, उसकी प्राप्ति, उसकी अनुभवगम्यता, आत्मा-परमात्मा की एकता, आत्मा की श्रेष्ठता, ब्राह्मी स्थिति आदि का विवेचन किया गया है।

छठे प्रकरण मे वौद्ध धर्म और दर्शन, वगाल का साहित्य, उसमे व्यक्त धर्म और दर्शन, उसकी पूर्वपीठिका, अपभ्रश-पूर्व भाषा का प्रथम साहित्य, वगाल मे वौद्धधर्म का सक्षिप्त इतिहास, वौद्धधर्म के सिद्धान्त (महायान और हीनयान, वज्रयान, सहजयान आदि), महाभारत आदि उपनिषदुत्तर-काल मे धर्म का भाव-पक्ष, वेदान्त और मीमासा का परस्पर विरोध, वैष्णव धर्म की प्रवृत्ति, प्राचीन नास्तिक मतो का विरोधी भाव, वैष्णवधर्म की प्रवृत्ति, गुह्य साधना, परमानुभव की स्थिति आदि विषयो का अनुशीलन है।

## १२८. हिन्दी और मलयालम के भक्त कवियो का तुलनात्मक अध्ययन

[१९५५ ई०]

लखनऊ विश्वविद्यालय ने सन् १९५५ ई० मे श्री के० भास्करन नय्यर को उनके प्रवन्ध 'हिन्दी और मलयालम के भक्त कवियो का तुलनात्मक अध्ययन' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

## १२९. हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्णभक्ति-काव्य में संगीत

[१९५५ ई०]

श्री० उषा गुप्त का प्रवन्ध 'हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्णभक्ति-काव्य मे सगीत' सन् १९५५ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रवन्ध अभी तक अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रवन्ध आठ अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य मे कृष्णभक्ति-शाखा की स्थापना और उसके क्षेत्र पर विचार किया गया है। इस अध्याय मे वल्लभ-सम्प्रदाय, गौडीय सम्प्रदाय, राधावल्लभीय सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, निम्वार्क-सम्प्रदाय आदि सम्प्रदायो तथा सम्प्रदाय-मुक्त कृष्णभक्त कवियो और उनकी काव्यकृतियो का परिचय दिया गया है। आगे चलकर वहिस्साक्ष्य के आधार पर भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियो के सगीतज्ञान का परिचयात्मक विवरण भी दिया गया है।

दूसरा अध्याय 'सगीत और साहित्य' है। 'सगीत' क्या है, सगीत के आधार, सगीत की व्यापकता, सगीत की महत्ता, साहित्य मे सगीत का स्थान, सगीत और काव्य का पारस्परिक सम्बन्ध, सगीत-कला एव काव्यकला मे समानताए, सगीत के उपादान, काव्य के उपादान आदि विषयो पर इस अध्याय मे विचार किया गया है। इसी क्रम मे साहित्य के साथ सगीत के औचित्य का भी निर्धारण किया गया है।

विश्लेषण है । चौथे अध्याय मे कृष्णभक्ति-साहित्य मे सगीत तथा उससे सम्बद्ध सामग्री का अनुशीलन किया गया है । पाचवें अध्याय मे भक्तिकालीन कृष्णभक्ति-काव्य मे प्रयुक्त राग-रागिनियो का अनुसधान किया गया है । राग की उत्पत्ति तथा विकास, तत्कालीन प्रचलित राग-रागिनिया, रागो का वर्गीकरण आदि विषयो का विवेचन करने के अनन्तर अष्टछाप के सूरदास, परमानन्ददास आदि कवियो तथा गदाधर भट्ट, सूरदास मदनमोहन, हितहरिवश, हरिनारायण व्यास, हरिदास स्वामी, विट्ठल विपुल, श्री भट्ट, परशुराम, मीराबाई, राजा आसकरण, गग, ग्वाल आदि अन्य कृष्णभक्त कवियो द्वारा प्रयुक्त राग-रागिनियो की विवेचना की गयी है । इन राग-रागिनियो की कोटियो तथा इनके अध्ययन द्वारा प्राप्त होने वाली विशेषताओ की चर्चा भी की गयी है ।

छठे अध्याय मे सगीत के सिद्धान्तो की कसौटी पर आलोच्य काव्य की परीक्षा की गयी है । सातवें अध्याय मे भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियो की भाषागत विशेषताओ का अध्ययन किया गया है । आठवें अध्याय मे लय, ताल, और गायन प्रणाली के आधार पर कृष्णभक्ति-काव्य मे प्रयुक्त पदो की समीक्षा की गयी है ।

## १३०. राजस्थानी कहावतों का गवेषणात्मक और वैज्ञानिक अध्ययन

[१९५५ ई०]

श्री कन्हैयालाल सहल को उनके प्रबन्ध 'राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन' पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने सन् १९५५ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की । उक्त नाम से ही इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९५८ ई० मे भारती साहित्य मदिर, फव्वारा, दिल्ली, से हुआ ।

प्रस्तुत प्रबन्ध पाच अध्यायो मे विभक्त है । प्रथम अध्याय विषय-प्रवेश के रूप मे लिखा गया है । सर्वप्रथम कहावतो का महत्व प्रतिपादित करते हुए उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का निर्देश किया गया है । पृष्ठभूमि का अनुशीलन दो प्रभागो के अन्तर्गत किया गया है । 'क' प्रभाग के अन्तर्गत वैदिक वाङ्मय, इतिहास-पुराण, स्मृतियो, नीतिवाङ्मय, सस्कृत-काव्य, पाली, प्राकृत और

अपभ्रंश साहित्य की कहावतो का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 'ख' प्रभाग के अन्तर्गत विदेशी कहावतो पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे 'कहावत' का पर्यालोचन किया गया है। 'कहावत' की व्युत्पत्ति तथा उसके विदेशी एव भारतीय भाषाओ मे प्रयुक्त पर्यायवाची शब्दो का विवेचन किया गया है, परिभाषा दी गयी है तथा कहावत और मुहावरे का भेद निरूपित किया गया है। कहावत और लौकिक न्याय तथा प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति की अर्थच्छाया पर भी विचार किया गया है। तृतीय अध्याय मे कहावत के उद्भव और विकास का अध्ययन किया गया है। उद्भव की प्रक्रिया, उद्भव के आधार तथा उद्भव की प्राचीनता का दिग्दर्शन कराते हुए कहावत का विकास प्रदर्शित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे राजस्थानी कहावतो का विस्तार से वर्गीकरण किया गया है। यह वर्गीकरण रूपात्मक दृष्टिकोण से भी किया गया है और विषय की दृष्टि से भी। अध्याय के प्रभाग 'क' मे रूपात्मक दृष्टि से कहावतो को ग्यारह वर्गों मे विभक्त करके तुक, छन्द, अलकार, अध्याहार, सवाद, लौकिक न्याय आदि की दृष्टि से उनका विस्तार के साथ अध्ययन किया गया है। प्रभाग 'ख' मे राजस्थानी कहावतो का आठ वर्गों (ऐतिहासिक, स्थान-सम्बन्धी, जीवन-सम्बन्धी, सामाजिक, शिक्षा-मनोविज्ञान-साहित्य-सम्बन्धी, धर्मदर्शन-सम्बन्धी, कृषि-सम्बन्धी, वर्षा-सम्बन्धी और प्रकीर्ण—पशु-पक्षी, पेड-पौधो आदि से सम्बद्ध) मे विषयानुसार वर्गीकरण करके उनकी व्यापक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

पाचवा अध्याय उपसहार के रूप मे लिखा गया है। इसमे कहावतो के भविष्य के विषय मे भी विचार किया गया है। आजकल कहावतो का निर्माण क्यो नही होता—इसके कारणो की विवेचना की गयी है, तथा यह भी निर्धारित किया गया है कि इस विषय मे हमारा कर्तव्य क्या होना चाहिए। परिशिष्ट भाग मे राजस्थानी भाषा के कुछ लौकिक न्यायो की भी सक्षिप्त विचार-चर्चा की गयी है।

## १३१. आधुनिक हिन्दी-काव्य मे समाज (१८५०-१६५० ई०)

[१९५५ ई०]

श्रीमती गायत्री देवी वैश्य का शोध-प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में समाज (१८५०–१६५० ई०)' सन् १९५५ ई० मे राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध अभी तक प्रकाशित नही हुआ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे सामाजिक दृष्टिकोण से आधुनिक हिन्दी-काव्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समाज के रीति-रिवाजो और परम्पराओ की परिवर्तन-रेखाओ का काव्य के माध्यम से अवलोकन किया गया है। ग्रन्थारम्भ मे व्यापक भूमिका है जिसमे हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि परिस्थितियो का उपस्थापन है। प्राचीन काव्य से उदाहरण देकर तत्कालीन पारिवारिक सम्बन्धो एव सामाजिक मान्यताओ की रूपरेखा स्पष्ट की गयी है। मुख्य प्रबन्ध चार परिच्छेदो मे विभक्त है। पहले परिच्छेद के पूर्वार्ध मे भारतेन्दुयुगीन लोकगीतो मे सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति का अनुशीलन है। लोकगीतो की प्राचीन परम्परा, नवीन रूप और उसमे सामाजिक जीवन के चित्र, लोकगीतो का उद्भव, कजली, होली, लावनी, ख्याल, वारह-मासा, स्वाग, उन लोकगीतो मे सामाजिक चेतना आदि का अध्ययन है। तत्कालीन गीतो के चार वर्ग किये गये हैं। रूढिविरोधी गीत, वाहरी सभ्यता के विरोधी गीत, आर्थिक-राजनैतिक समस्याओं के गीत एव सामाजिक चेतना अथवा उद्वोधन के गीत। इस परिच्छेद के उत्तरार्ध मे भारतेन्दु-युगीन सत्कविता के दो विभाग (शृगारिक काव्यधारा तथा सामाजिक काव्यधारा) करके उसमे अभिव्यक्त सामाजिक जीवन की समीक्षा की गयी है।

दूसरे परिच्छेद मे सुधारवादी युग (द्विवेदी-युग) की काव्यगत सामाजिक प्रवृत्तियो का विश्लेषण है। भारतीय सस्कृति, पाश्चात्य साहित्य व सस्कृति के प्रसार, आर्यसमाज, भारतीय राष्ट्रीय महासभा आदि के प्रभावो एव धार्मिक पाखड, अशिक्षा, दहेज-प्रथा, ग्राम्य-जीवन, अवतारवाद, भाग्यवाद आदि की सोदाहरण विवेचना की गयी है। तीसरे परिच्छेद मे छायावादी काव्य का अध्ययन है। इसे लेखिका ने परिवर्तन-युग माना है क्योकि वीसवी शती के इस द्वितीय मोड पर काव्य ने पुरानी शृखलाए तोडकर नया स्वरूप धारण किया—स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म की, समूह के स्थान पर व्यक्ति की, सान्त को छोडकर

विहारी वनी-ठनी जी ग्रादि पन्द्रह महिलाग्रो द्वारा रचित काव्य-साहित्य की ग्रालोचना है। दसवें ग्रध्याय मे राजस्थान के राजघरानो के ग्राश्रय मे विकसित साहित्य का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। 'उपसहार' मे विभिन्न प्रवृत्तियो ग्रौर उनके महत्त्व का ग्राकलन है।

## १३४. ग्राधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य ग्रौर मनोविज्ञान

[१९५५ ई०]

श्री देवराज उपाध्याय का प्रवन्ध 'ग्राधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य ग्रौर मनोविज्ञान' सन् १९५५ ई० मे राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुग्रा। सन् १९५६ ई० मे साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहावाद, ने इसी नाम से इसका प्रकाशन किया।

इस प्रवन्ध मे चौदह परिच्छेद हैं। सर्वप्रथम ग्रामुख मे ग्राधुनिक कथा-साहित्य की प्रवृत्ति ग्रौर मनोविज्ञान पर विचार किया गया है। लेखक ने वतलाया है कि हिन्दी-कथा-साहित्य ने मनोविज्ञान से प्रभाव तो ग्रहण किया हैं पर पूर्ण रूप से नही। पहला परिच्छेद 'विषय-प्रवेश' है। इसमे पहले, निवन्ध के उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है। मनोविज्ञान ग्रौर उपन्यास पर विचार करने के ग्रनन्तर उपन्यास की परिभाषा, व्याख्या, ग्राग्लसाहित्य मे उपन्यासो की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की परम्परा, कहानी की व्याख्या, कहानी की व्याख्या की उपयुक्तता, मनोवैज्ञानिक उपन्यास का टेक्नीक ग्रादि विषयो का प्रतिपादन किया गया है।

दूसरे परिच्छेद मे ग्राधुनिक मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायो ग्रौर उनके मुख्य-मुख्य सिद्धान्तो का विवेचन है। इस प्रसग मे मनोविश्लेषण-सम्प्रदाय, ग्राचरणवादी मनोविज्ञान तथा प्रकृतिवादी मनोविज्ञान ग्रादि ग्राधुनिक सम्प्रदायो तथा जुग, गेस्टाल्ट ग्रौर वाटसन ग्रादि मनोवैज्ञानिको के सिद्धान्तो का निरूपण किया गया है। तीसरा परिच्छेद 'प्रेमचन्द के उपन्यास ग्रौर मनोविज्ञान' है। इस ग्रध्याय मे प्रेमचन्द का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उनके उपन्यासो का मनोवैज्ञानिक ग्रध्ययन प्रस्तुत करके ग्रध्येता ने सिद्ध किया है कि प्रेमचन्द एक परम्परापालक लेखक हैं ग्रौर उनके उपन्यासो मे

'आसन्नलेखकत्व' मिलता है। किन्तु प्रेमचन्द का आसन्नलेखकत्व पात्रो की मनोवृत्तियो की छानबीन का कार्य करता है। चौथे परिच्छेद मे प्रेमचन्द की कहानियो मे मनोविज्ञान का अनुशीलन किया गया है। उनकी कहानियो की विशेषताए बतलाते हुए कहानियो को विभिन्न वर्गों मे रखकर उनका अध्ययन किया गया है। चौथे परिच्छेद मे प्रेमचन्द की कहानियो में मनोविज्ञान का अनुशीलन किया गया है।

पाचवें परिच्छेद 'जैनेन्द्र के उपन्यास और मनोविज्ञान' मे जैनेन्द्र पर फ्रायड का प्रभाव दिखाते हुए उन पर गेस्टाल्ट की भी स्पष्ट झलक दिखायी गयी है। उनके उपन्यासो मे मनोवैज्ञानिक तत्त्वो का अनुसधान किया गया है। छठे परिच्छेद मे जैनेन्द्र की कहानियो मे मनोविज्ञान का परिशीलन है। सातवें परिच्छेद मे 'अज्ञेय' के उपन्यास 'शेखर--एक जीवनी' का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन किया गया है। आठवें परिच्छेद मे उनके दूसरे उपन्यास 'नदी के द्वीप' का पर्यालोचन है। नवें परिच्छेद मे उनकी कहानियो मे मनोविज्ञान पर विचार किया गया है। दसवें परिच्छेद मे इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासो और ग्यारहवें मे उनकी कहानियो मे मनोविज्ञान का अध्ययन है। बारहवा परिच्छेद 'आधुनिक हिंदी-उपन्यासो मे मनोवैज्ञानिक वस्तुसकलन' है। तेरहवें परिच्छेद 'उपन्यास-कला का अन्तर्प्रमाण' मे आधुनिक उपन्यासो मे मनोविज्ञान का सिंहावलोकन करते हुए प्रमाणो तथा तर्कों के उपस्थापन द्वारा सिद्ध किया गया है कि आधुनिक हिन्दी-उपन्यास मे आत्मनिष्ठा बढ रही है। मनोविज्ञान के आग्रह के कारण भाषा आदि में भी परिवर्तन आ रहा है। उपसहार मे यह बतलाया गया है कि मनोवैज्ञानिकता यथार्थवादी दृष्टिकोण का एक रूप है।

## १३५. हिन्दी-साहित्य को मत्स्य प्रदेश की देन

[१९५५ ई०]

श्री मोतीलाल गुप्त को राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् १९५५ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। उनका शोध-विषय था 'हिन्दी-साहित्य को मत्स्य प्रदेश की देन'। यह प्रबन्ध अभी अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे पृष्ठभूमि का निरूपण

है। उसके प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है—मत्स्य प्रदेश की परम्परा औ
प्राचीनता, आधुनिक मत्स्य प्रदेश के राज्य, प्रदेश की विशेषताए, यहा के देवता
समीपवर्ती प्रदेश का प्रभाव, अन्य प्रवृत्तिया, प्रचलित भाषा और बोलिया, प्रा
के साहित्य और सस्कृति पर प्रभाव, मत्स्य प्रदेश के राज्यो की एकता, ब्राह्मण
की प्रधानता, अन्य वर्ण, इस प्रात की साहित्यिक परम्परा, साहित्यिक सामग्र
के स्थान, कुछ पुराने साहित्यकार, लालदास, नल्लसिंह, करमा बाई, जोधराज
हस्तलिखित ग्रथो की प्रचुरता, अलवर और भरतपुर का सापेक्ष महत्व, अनुसधा
के स्थान। दूसरे अध्याय मे रीतिकाव्य का विवेचन है। अध्याय के आरम्भ
हिंदी-रीति-काव्य और काव्य-सम्प्रदायो का सक्षिप्त परिचय देकर मत्स्य के
रीतिकारो तथा उनकी प्रवृत्तियो का निरूपण किया गया है। गोविन्द कवि
शिवराम, सोमनाथ, कलानिधि, बख्तावरसिंह के राजकवि भोगीलाल ('बख
विलास', 'सिखनख'), हरिनाथ ('विनयप्रकाश'), राम कवि ('अलकारमजरी'
'छदसार'), ब्रजचद ('शृगारतिलक'), मोतीराम ('ब्रजेन्द्रविनोद') और जुगल
कवि ('रसकल्लोल', 'रसानन्द सिखनख', 'ब्रजेन्द्र विलास') के सिद्धात-निरूपण
की विशेषताओ का विवेचन करके कवि देव आदि के आगमन की भी चर्चा की
गयी है।

तीसरे अध्याय मे शृगार काव्य का अध्ययन किया गया है। शृगारसंबध
सामग्री का निर्देश करके देवीदास ('प्रेमरत्नाकर'), सोमनाथ ('प्रेम पच्चीसी')
बख्तावर सिंह ('श्रीकृष्ण लीला'), मान कवि ('शिवदान चन्द्रिका'), चतुर कवि
('त्रिलोचन लीला'), भोलानाथ ('लीला पच्चीसी'), वीरभद्र ('फागुलीला')
बद्रुनाथ ('रासपचाध्यायी'), राम कवि ('विरह पच्चीसी'), रसानन्द ('रसा
नन्दघन') आदि कवियो के शृङ्गार-वर्णन की समीक्षा की गयी है। चौथे अध्याय
मे भक्तिकाव्य का विवेचन है जिसमे बलदेव कवि, अलीबख्श, वीरभद्र, राम
नारायण, सोमनाथ आदि कवियो की भक्तिपरक रचनाओ की आलोचना है
पाचवें अध्याय मे नीति, युद्ध, इतिहास आदि विषयो से सम्बन्ध रखने वाले
साहित्य का अध्ययन किया गया है। छठे अध्याय मे कलानिधि, श्रीधरानन्द
विनयसिंह आदि साहित्यकारो की गद्य-रचनाओ का अनुशीलन है। सातवें
अध्याय मे अनुवाद-ग्रन्थो की विचारचर्चा की गयी है। आठवें अध्याय मे प्रबन्ध
का उपसहार है।

## १३६. हिन्दी में भ्रमरगीत-काव्य और उसकी परम्परा

[१९५५ ई०]

श्री० स्नेहलता श्रीवास्तव का गवेषणात्मक प्रबन्ध 'हिन्दी मे भ्रमरगीत-काव्य और उसकी परम्परा' सन् १९५५ ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। यह प्रबन्ध सन् १९५८ ई० मे भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, से प्रकाशित हुआ है।

इस ग्रथ में नौ अध्याय हैं। पहला अध्याय 'विषय-प्रवेश' है जिसमे भ्रमर-गीत के अभिप्राय, उसकी आधारभूत कथा, हिंदी के भ्रमरगीत-काव्य और उससे सम्बद्ध आलोचनात्मक साहित्य की सक्षिप्त विवेचना करके अपने दृष्टिकोण और योजना का उपस्थापन किया गया है। दूसरे अध्याय मे भ्रमरगीत-काव्य के आधार का अध्ययन है। 'भ्रमरगीत' के मूल अर्थ, वर्गीकरण, मूल रूप और उसके आविर्भाव का विवेचन है। तीसरे अध्याय मे हिंदी-साहित्य मे भ्रमरगीत-काव्य की परम्परा के क्रमिक विकास तथा एतद्विषयक सामग्री का अनुसधान किया गया है। चौथे अध्याय का प्रतिपाद्य भ्रमरगीत की धार्मिक एव दार्शनिक पृष्ठभूमि है। इस अध्याय मे दो खण्ड हैं। पहले खण्ड मे भारतीय उपासना-पद्धति के विकास तथा ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण है। वैदिक साहित्य से लेकर हिंदी-भक्तिकाव्य तक के मुख्य दार्शनिक और धार्मिक सम्प्रदायों का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। दूसरे खण्ड के अन्तर्गत 'प्रतीक' की परिभाषा, महत्व आदि पर विचार करके भ्रमरगीन-काव्य मे निबद्ध विविधप्रकारक प्रतीको का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पाँचवें अध्याय मे 'उपालम्भ' के शास्त्रीय अर्थ तथा उसके ऐतिहासिक-सामाजिक आधार की व्याख्या की गयी है। छठे अध्याय में भ्रमरगीत-काव्य की परिस्थितियो का निदर्शन करके भक्तिकालीन भ्रमरगीत-सम्बन्धी रचनाओ एव भ्रमरगीतकारो की समीक्षा की गयी है। सातवें अध्याय मे रीतिकालीन परिस्थितियो तथा उस युग के प्रमुख भ्रमरगीतकारो की रचनाओ की आलोचना है। आठवें अध्याय मे आधुनिक काल के भ्रमरगीत-काव्य का अध्ययन है। नवें अध्याय मे भ्रमरगीत-परम्परा के विकाससूत्र का सक्षिप्त निरूपण करके भ्रमरगीत-काव्य का मूल्याकन किया गया है। ग्रन्थ के परिशिष्ट मे लोकगीतो में भ्रमरगीत तथा कतिपय आधुनिक कवियो के भ्रमरगीतो का विवरण है।

# १३७. हिन्दी-नीति-साहित्य

## [१९५६ ई०]

श्री भोलानाथ तिवारी का प्रबन्ध 'हिन्दी-नीति-साहित्य' सन् १९५६ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। 'हिन्दी-नीतिकाव्य' के नाम से यह ग्रन्थ विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, से कुछ परिवर्तित रूप मे सन् १९५८ ई० मे प्रकाशित हुआ।

यह प्रबन्ध सत्रह अध्यायो मे विभक्त है। पहला अध्याय 'विषय-प्रवेश' है। इसमे नीति की परिभाषा तथा उसके वर्गीकरण के अतिरिक्त उपलब्ध सामग्री का विभाजन किया गया है। दूसरे अध्याय से पूर्ववर्ती साहित्यो सस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रश मे निरूपित नीति का सक्षिप्त परिचय है। तीसरा अध्याय 'पूर्ववर्ती साहित्यो का हिन्दी-नीति-साहित्य पर प्रभाव' है। इसमे प्रभाव के सभाव्य स्रोतो पर विचार करते हुए भाव, शैली, अलकार तथा छद के क्षेत्र मे प्रभाव का अध्ययन है। चौथे अध्याय मे हिन्दी-नीति-साहित्य मे वर्णित धर्म और आचार का विवेचन है। इसमे धर्म, ईश्वर, साधु, गुरु, ससार, शरीर मन, माया, ज्ञान, सत्य, मासभक्षण तथा मादक द्रव्यो का प्रयोग आदि धार्मिक और आचारिक विषयो के सम्बन्ध मे नीतिकारो के विचार दिये गये है। छठे अध्याय का शीर्षक है 'हिंदी-नीति-साहित्य मे व्यवहार तथा समाज-नीति'। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है इसमे समाज, पडोसी, शत्रु, मित्र, दुष्ट, सज्जन, ऋण, धन, नौकरी, आय-व्यय, मागना, क्षमा, विनय, नम्रता, लाज, विश्वास तथा निन्दा आदि विषयक व्यावहारिक और सामाजिक नीतियो के सम्बन्ध मे नीति के कवियो द्वारा व्यक्त विचार आवश्यक आलोचना के साथ दिये गये हैं। सातवें अध्याय मे नीति-साहित्य मे वर्णित राजा तथा राजनीति विषयक तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं।

आठवा अध्याय नारी-विषयक नीति से सबद्ध है। इसमे लेखक ने मध्ययुगीन भारतीय साहित्य मे नारी के प्रति विकृत दृष्टिकोण का कारण देते हुए, उसके (नारी के) सबध मे नीति-साहित्य मे व्यक्त किये गये विचारो का विवेचन किया है। नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें अध्यायो के शीर्षक, क्रम से, 'हिंदी-नीति-साहित्य मे स्वास्थ्य', 'हिंदी-नीति-साहित्य मे खेती', 'हिंदी-नीति-साहित्य में व्यापार' तथा 'हिंदी-नीति-साहित्य मे शकुन' हैं। तेरहवें अध्याय मे हिंदी-नीति-साहित्य मे प्रयुक्त भाषा का अध्ययन है। चौदहवा अध्याय शैली से सबद्ध है।

अध्याय मे 'रीतिकालीन काव्य मे पशुचारण-प्रवृत्ति' का अध्ययन है। आठवे अध्याय मे लोकगीतो मे पशुचारण-प्रवृत्ति के अभाव पर विचार किया गया है। नवें अध्याय मे आधुनिक काव्य मे पशुचारण-प्रवृत्ति की जो झलक पायी जाती है उसका पर्यालोचन है। दसवें अध्याय मे पशुचारण-प्रवृत्ति के ह्रास और यान्त्रिक सभ्यता के विकास की चर्चा है।

## १११. कृष्णकाव्य मे भ्रमरगीत

[१९५४ ई०]

श्री श्यामसुन्दर लाल दीक्षित को, सन् १९५४ ई० मे, आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। उनके अनुसन्धान का विषय था 'कृष्ण-*काव्य मे भ्रमरगीत'। यह प्रबन्ध सन् १९५८ ई० मे* विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा से प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायो मे विभक्त हुआ है। पहले अध्याय मे वैदिक साहित्य से लेकर हिन्दी-काव्य तक कृष्ण-भावना के विकास का अध्ययन किया गया है। दूसरे अध्याय मे राधा-भावना के उदय और विकास का विवेचन है। तीसरे अध्याय मे गोपी-भावना के विकास का अध्ययन है। चौथे अध्याय मे गोकुल और मथुरा की ऐतिहासिकता का निरूपण है। पाचवें अध्याय मे कुब्जा की कल्पना, उद्धव तथा भक्ति की श्रेष्ठता पर विचार किया गया है। छठे अध्याय मे गीतिकाव्य और कृष्णकाव्य का अध्ययन है। सातवें अध्याय मे व्रजभाषा के कृष्ण-काव्य के आरम्भ और विकास तथा भ्रमरगीत के विकास का अनुशीलन है। आठवें अध्याय मे नन्ददास के भ्रमरगीत की समीक्षा है। नवें अध्याय मे अनुसधाता ने कुम्भनदास से लेकर स्वरचित भ्रमरगीत तक भ्रमरगीत की परिपाटी का अनुसधान किया है। दसवें अध्याय मे सूरदास आदि के भ्रमरगीत मे किये गये कृष्ण, राधा आदि के वर्णनो का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अन्त मे भ्रमरगीत की विशेषताओ का पर्यालोचन है।

# ११२. सूरदास के (कूट-पदो के विशिष्ट सन्दर्भ मे) कूट-काव्य का अध्ययन

[१९५४ ई०]

श्री रामधन शर्मा का प्रवन्ध 'सूरदास के (कूट-पदो के विशिष्ट सन्दर्भ मे) कूट-काव्य का अध्ययन' सन् १९५४ ई० मे पजाव विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रवन्ध अभी तक अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रवन्ध मे छ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे 'कूट' के अर्थ, इतिहास और काव्यात्मक प्रयोग पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय के प्रतिपाद्य विषय हैं—कूट-काव्य की परिकल्पना, कूट के लक्षण, स्वत सिद्ध और कलात्मक कूट, कूट-काव्य मे रस और अलकार तथा कूट-काव्य का प्रयोजन। तीसरे अध्याय मे वैदिक साहित्य से लेकर सूरदास तक कूट-काव्य की परम्परा का अनुसन्धान किया गया है। लेखक ने वतलाया है कि पालि-प्राकृत-साहित्य मे कूट-काव्य का अभाव है। सिद्धो, नाथपथी योगियो, चन्दवरदायी, निर्गुण सन्तो की उलट-वासियो, विद्यापति आदि मे कूट-काव्य का प्रयोग हुआ है।

चौथे, पाँचवें और छठे अध्यायो मे सूरदास के कूट-काव्य का अध्ययन किया गया है। चौथे अध्याय मे सूरदास के दृष्टकूट-पदो का सर्वेक्षण करके 'सूरसागर', 'सूरसारावली' और 'साहित्य-लहरी' के कूट-पदो की विस्तृत विवेचना की गयी है। पाचवें अध्याय मे विविध प्रसगो मे प्रयुक्त कूट-पदो के प्रतिपाद्य विषयो—विनय, वात्सल्य, शृगार, माधुर्य, भक्ति, दानलीला, रूपासक्ति, नखशिख-वर्णन, सुरति, युगलरूप, मान, मनुहार, विरहासक्ति आदि का अनुशीलन किया गया है। छठे अध्याय मे सूर के दृष्टकूट पदो की काव्यकला की आलोचना की गयी है। राधा-कृष्ण के चरित्र-चित्रण, भक्ति, वात्सल्य और शृगार रस, सूर की सौन्दर्य-चेतना एव कल्पना-प्रवणता, चिन्मय तथा मृण्मय प्रकृति का सौंदर्यांकन, अलकार-विधान, उपस्थापन-शैली, भाषा, कूट-काव्य के प्रेरक तत्वो आदि की मीमासा की गयी है। ग्रन्थ के पाँच परिशिष्टो मे सूरदास के कूट पदो का व्यवस्थित सग्रह है।

## ११३. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफ़ी कवि
[१९५४ ई०]

श्री० सरला शुक्ल को उनके प्रवन्ध 'जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि' नखनऊ विश्वविद्यालय ने सन् १९५४ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान । इस प्रवन्ध का प्रकाशन लखनऊ विश्वविद्यालय ने 'जायसी के परवर्ती ी सूफी कवि और काव्य' के नाम से सवत् २०१३ मे किया ।

प्रस्तुत प्रवन्ध पन्द्रह अध्यायो मे विभक्त है । पहले अध्याय मे सूफीमत के द्भाव एव विकास पर प्रकाश डाला गया है । सूफ़ी सम्प्रदाय के उद्भव-न्वी विभिन्न विचारो की परीक्षा करते हुए लेखिका ने 'सूफी' शब्द की त्ति एव मान्य अर्थ पर विचार किया है । भारत मे इस्लाम तथा सूफ़ी मत चर्चा करते हुए चिश्तिया, मुहरावर्दिया, कादिरिया, नक्शवदिया आदि प्रमुख ी सम्प्रदायो का परिचय दिया गया है । दूसरा अध्याय 'सूफी दर्शन' है । र तत्व और उसका स्वरूप, सृष्टितत्व, मुहम्मदीय आलोक, इन्सानुलकामिल, र सत्ता और इन्सान, माया तथा जीवन और लक्ष्य आदि विपयो का विस्तार ववेचन करते हुए अनुसन्धात्री ने सूफी दर्शन को स्पष्ट करने का प्रयत्न ा है । तीसरा अध्याय सूफी साधना है । साधना की अवस्थाओं का र्शन करते हुए सूफी साधना-पद्धति और उस पर भारतीय प्रभाव का अनु-नन किया गया है, साथ ही सूफी साधना मे प्रेम के योग पर भी विचार ा गया है ।

चौथे अध्याय मे सूफी साहित्य के विभिन्न प्रकारो की चर्चा की गयी है । रतीय सूफी साहित्य, हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान और हिन्दी के मुक्तक सूफी ाव्य का भी विवेचन किया गया है । पाचवें अध्याय मे राजनीतिक, सामाजिक, स्कृतिक, साहित्यिक तथा धार्मिक स्थिति का निदर्शन करते हुए सूफी काव्य पृष्ठभूमि का उल्लेख किया गया है, साथ ही सूफियो की समन्वयवादिता पर विचार किया गया है ।

छठे अध्याय मे सूफियो की लोकदृष्टि का विवेचन किया गया है । गार्हस्य पारिवारिक जीवन, विभिन्न जातियो, आर्थिक स्थिति तथा विभिन्न सामाजिक वन्धो आदि अनेक तत्वो की सूफ़ी काव्य मे अभिव्यक्ति दिखलाकर सिद्ध किया ा है कि इन कवियो की लोकदृष्टि व्यापक थी ।

सातवें अध्याय मे सूफियो की प्रबन्ध-कल्पना और आठवे मे उनकी प्रतीक-योजना का पर्यालोचन किया गया है। नवे अध्याय मे रस, छन्द और अलकारो का निरूपण किया गया है। दसवे अध्याय मे भाषा-शैली की समीक्षा की गयी है, मसनवी पद्धति की विशेषताए भी बतायी गयी हैं।

ग्यारहवें अध्याय मे सूफी काव्य की सामान्य प्रवृत्तियो का उद्घाटन और सूफी प्रेम कथाओ की प्रमुख विशेषताओ का प्रतिपादन किया गया है। बारहवें अध्याय मे सूफियो की बहुज्ञता पर विचार किया गया है। तेरहवें अध्याय मे सूफियो के स्फुट साहित्य का परिचय देते हुए उसका वर्गीकरण भी किया गया है। चौदहवें अध्याय मे सूफी कवियो की देन का मूल्याकन किया गया है। पद्रहवें अध्याय मे प्रमुख कवियो और काव्यो का परिशीलन है।

## ११४. सन्त कवि रैदास और उनका पंथ—एक अध्ययन

[१६५४ ई०]

श्री भगवद्व्रत मिश्र को उनके प्रबन्ध 'सन्त कवि रैदास और उनका पथ' पर सन् १६५४ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात परिच्छेदो मे विभक्त है। पहले परिच्छेद मे चमार जाति तथा रैदास जी से सम्बद्ध सामग्री का विवरण दिया गया है। यह सामग्री प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य, जन-श्रुतियो, रैदास से सम्बन्धित स्थानो तथा आधुनिक साहित्य के रूप मे पायी जाती है।

दूसरे परिच्छेद मे चमार जाति तथा रैदासी पन्थ का विवेचन है। 'चमार' शब्द की व्युत्पत्ति, चमार जाति की प्राचीनता, उत्पत्ति, विस्तार तथा उपजातिया, सामाजिक जीवन, धार्मिक जीवन, भूत-प्रेत मे विश्वास, देवी-देवताओ मे विश्वास, जाति पर अन्य पन्थो का प्रभाव, रैदास-पथ का प्रभाव, रैदास-पन्थ का वर्तमान केन्द्र, पन्थ के प्रमुख धाम, गद्दियो तथा महन्तो के नाम व पते, रैदासी सम्प्रदाय के पर्व और त्योहार, सस्कार (सम्प्रदाय मे प्रवेश), गद्दियो की दिनचर्या तथा विशेष नियम, पथ की गद्दियो के कुछ साकेतिक शब्द आदि शीर्षको

से चमार जाति तथा रैदास-पन्थ की अनेक महत्वपूर्ण बातो का विवेचन किया गया है।

तीसरे परिच्छेद मे रैदास के जीवन तथा उनके युग का परिचय दिया गया है। रैदास जी के समय की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियो का आकलन किया गया है। तदनन्तर रैदास जी के नाम, जीवन-काल, जन्म-स्थान, जाति और गोत्र, माता-पिता, परिवार, गुरु, शिक्षा, यात्राए, आर्थिक जीवन, व्यवसाय तथा स्वभाव, चमत्कार, समकालीन (झाली रानी, कबीर, मीरा) तथा मृत्यु-स्थान के विषय मे गवेषणापूर्ण जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

चौथे परिच्छेद मे रैदास जी की रचनाओ का अनुशीलन किया गया है। 'रैदासवाणी' के छपे हुए सकलनो की चर्चा करते हुए रैदास जी की रचनाओ की प्रामाणिकता की परीक्षा की गयी है। तत्पश्चात् रैदासवाणी के हस्तलिखित सकलनो का विवरण देते हुए लेखक ने उन हस्तलिखित ग्रन्थो की साक्षरी (ऑर्थोग्राफी) भी दे दी है। पाचवा परिच्छेद है 'रैदास जी के आध्यात्मिक सिद्धात'। इसमे ब्रह्म, जीव, ब्रह्म और जीव मे अन्तर, कर्मबन्ध, स्वर्ग, नरक, माया, ससार, गुरु तथा मुक्ति आदि विषयो पर रैदास जी के विचारो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी परिच्छेद मे रैदास जी के सामाजिक सिद्धान्तो का भी विवेचन किया गया है। जाति-पाति तथा वाह्याडम्बर आदि के प्रति रैदास जी के विचारो की चर्चा की गयी है। इम विवेचना को अधिक पूर्ण बनाने के लिए लेखक ने मन की चचलता, चेतावनी आदि अन्य रैदासी विचारो का भी प्रतिपादन किया है।

छठे परिच्छेद मे रैदास जी की अष्टाङ्ग आध्यात्मिक साधना पर विचार किया गया है। गुरु, सेवा (सत्सग), सन्त, नाम, ध्यान, प्रणति (भक्ति), प्रेम, विलय अथवा समाधि तथा साधक शीर्षको से रैदास जी की अष्टाङ्ग आध्यात्मिक साधना का परिचय दिया गया है। सातवे परिच्छेद में रैदास जी की वाणी का साहित्यिक मूल्याकन किया गया है। वर्ण्य विषय, भावप्रकाशन तथा रसपरिपाक, कल्पना का उत्कर्ष, कथावस्तु और चरित्रचित्रण, रचनाशैली, छन्दों का प्रयोग तथा पदो की भाषा का अनुशीलन किया गया है। परिशिष्ट मे रैदास के पदो का मूल पाठ तथा 'प्रह्लादलीला' का पाठ दे दिया गया है।

## ११५. आधुनिक हिन्दी काव्य मे प्रतीकवाद

[१६५४ ई०]

श्री० चन्द्रकला का प्रवन्ध 'आधुनिक हिन्दी-काव्य मे प्रतीकवाद' सन् १६५४ ई० मे राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। इस प्रवन्ध मे जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा के काव्य मे प्रतीकवाद का अध्ययन किया गया है।

यह ग्रन्थ आठ अध्यायो मे विभक्त है। 'परिचय' नामक प्रथम अध्याय मे 'प्रतीक' के व्युत्पत्यर्थ, परिभाषा, व्यावहारिक जीवन मे उसकी उपयोगिता, अलकार आदि से सम्बन्ध, प्रतीक के वर्गीकरण, प्रतिष्ठा आदि का अध्ययन किया गया है। द्वितीय अध्याय का प्रतिपाद्य है—पूर्व, मध्यपूर्व और पश्चिम मे प्रतीकवाद। इस अध्याय मे वेद, उपनिषद्, षड्दर्शन, प्राकृत-साहित्य, सस्कृत-साहित्य, जैन-साहित्य, सूफी-साहित्य, योरपीय साहित्य, हिन्दी के प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य आदि मे अभिव्यक्त प्रतीक-भावना की विवेचना की गयी है। तृतीय अध्याय का शीर्षक है 'आधुनिक हिन्दी गद्य मे प्रतीकवाद'। इसमे योरप, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और सक्रान्ति काल की परिस्थितियो का आधुनिक हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव वतलाकर हिन्दी-गद्य मे प्रतीकवाद के ग्रहण, शैली-परिष्कार तथा प्रतीकवाद के मुख्य स्तम्भो का अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे जयशकर प्रसाद का अध्ययन है। आरम्भ मे उनके सस्कार, प्रकृति, सर्वतोमुखी प्रतिभा आदि का परिचय देकर उनकी रचनाओ तथा उनमे प्रयुक्त परम्परागत एव मौलिक प्रतीको और साकेतिकता की समीक्षा है। पचम अध्याय मे सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य के विविध पक्षो का उद्घाटन करते हुए उनके प्रतीक-प्रयोगो की आलोचना की गयी है। षष्ठ अध्याय मे सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के महान् व्यक्तित्व, एकान्त साधना, मौलिकता, सस्कार, भावुकता, कल्पनाशीलता आदि का निदर्शन करके उनके काव्य की अन्य विशेषताओ के साथ प्रतीकात्मकता का भी अनुशीलन किया गया है। सप्तम अध्याय में महादेवी वर्मा के काव्य की पृष्ठभूमि और विकास का निरूपण करके उनकी काव्यशैली प्रतीक-व्यजना का अनुशीलन किया गया है। अनुसन्धात्री की मान्यता है कि महादेवी प्रतीकवाद की प्रतिनिधि हैं। 'उपसहार' नामक अन्तिम अध्याय

मे प्रतीकवाद के आधार की व्याख्या करके उसके क्रमिक ह्रास पर प्रकाश डाला गया है।

## ११६. हिन्दी-गद्य का विकास (१८००-५६ ई०)

[१९५४ ई०]

कु० शारदा वेदालंकार को उनके प्रवन्ध 'हिन्दी-गद्य का विकास (सन् १८०० से १८५६ ई०)' पर लन्दन विश्वविद्यालय से सन् १९५५ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

## ११७. हिन्दी और बंगला के वैष्णव कवियों (१६वीं शताब्दी) का तुलनात्मक अध्ययन

[१९५५ ई०]

श्री० रत्नकुमारी को उनके प्रवन्ध 'हिन्दी और वगला के वैष्णव कवियो (१६वी शताब्दी) का तुलनात्मक अध्ययन' पर प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् १९५५ ई० मे डी० फिल० की उपाधि प्राप्त हुई। '१६वी शती के हिन्दी और वगाली वैष्णव कवि (तुलनात्मक अध्ययन)' शीर्षक से इसका प्रकाशन भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, ने सन् १९५६ ई० मे किया।

इस प्रवन्ध मे सात अध्याय है। पहले अध्याय मे वैष्णव साहित्य की अनुप्रेरक सोलहवी शती की पृष्ठभूमि का अनुशीलन है। इस अध्याय मे तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियो पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे सोलहवी शती के कवियो और लेखको का परिचय है। इसमे एक सौ आठ वगाली और छिहत्तर हिन्दी के साहित्यकारों की जीवनी तथा कृतियो का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। तीसरे अध्याय 'सोलहवीं शती के वैष्णव साहित्य की अनुक्रमणिका' मे सोलहवी शती मे रचित साहित्य को

(दर्शन और सिद्धान्त, काव्य, नाटक, पदावली, जीवनी, भाष्य-टीका, अनुवादादि) विविध वर्गों मे विभक्त करके प्रत्येक विभाग की प्रमुख रचनाओ का सक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

चौथे अध्याय मे दोनो साहित्यो मे उपलब्ध आध्यात्मिक विचारो की तुलना है । इस प्रसग के महत्वपूर्ण विषय इस प्रकार हैं —तर्क, श्रद्धा और शब्दप्रमाण, इष्टदेव, अवतारो के कारण, जीव, माया, भक्तिभावना, भक्तिरस आदि । पाचवे अध्याय मे हिन्दी और बगाली कवियो की पदावली का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । पहले वर्ण्य विषय का विवेचन किया गया है । इस वर्ण्य विषय की समानता और विभिन्नता पर भी दृष्टिपात किया गया है । तदुपरान्त कृष्ण-राम और चैतन्य-वल्लभ-विट्ठल-सम्बन्धी विनय के पदो की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है । गुरु-वन्दना-सम्बन्धी पदो तथा भगवल्लीला-विषयक पदो का भी तुलनात्मक विवेचन विविध दृष्टियो से किया गया है ।

छठे अध्याय मे चरित-साहित्य मे ऐतिहासिक उपादानो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । लेखिका का मत है कि हिन्दी की अपेक्षा बगाली साहित्य मे जीवनी-साहित्य अधिक है । इस क्रम मे, साहित्य मे उपलब्ध महत्व-पूर्ण व्यक्तियो, घटनाओ तथा तिथियो का ऐतिहासिक सन्धान किया गया है । सातवे अध्याय मे हिन्दी और बगाली वैष्णव कवियो की भाषा का तुलनात्मक विवेचन है । इन साहित्यो मे प्रयुक्त भाषाओ तथा उनके पारस्परिक प्रभाव का अनुशीलन किया गया है । गौडीय वैष्णव पदावली मे हिन्दी के शब्दो तथा वाक्य-विन्यास का परिशीलन करते हुए मिश्रित भाषा ब्रजबुलि के व्याकरण तथा अवधी और ब्रजभाषा के व्याकरणो की सक्षिप्त तुलना की गयी है । लेखिका ने बतलाया है कि ब्रजबुलि का अवधी से कुछ अधिक साम्य है । परिशिष्ट मे छद की विवेचना है ।

## ११८. हिन्दी मे महाकाव्य का स्वरूप-विकास

[१६५५ ई०]

श्री शम्भूनाथसिंह को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी मे महाकाव्य का स्वरूप-विकास' पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने सन् १६५५ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि

। की। इसका प्रकाशन इसी नाम से हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, र् १६५६ ई० मे किया।

प्रस्तुत प्रवन्ध दस अध्यायो मे विभक्त है। पहला अध्याय 'महाकाव्य का उद्भव और विकास' है। अनुसन्धाता का कथन है कि हिन्दी के महाकाव्य भारतीय महाकाव्य-परम्परा के अविच्छिन्न अङ्ग हे। इस अध्याय मे महाकाव्य के विकास की अवस्थाओ का विशद विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय में महाकाव्य के स्वरूप पर विचार किया गया है। प्राय सभी प्रमुख भारतीय और पाश्चात्य विचारको की महाकाव्य विषयक परिभाषाओ का विवेचन करते हुए अनुसन्धाता ने महाकाव्य की परिभाषा निर्धारित की है। इसके पश्चात् महाकाव्य के विभिन्न अवयवो का विस्तृत निरूपण किया है।

तीसरे अध्याय मे भारतीय महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन किया गया है। संस्कृत के विकसनशील (रामायण, महाभारत) और अलकृत (रघुवश आदि) महाकाव्यों की विशेषताओ और उनके विविध रूपो पर विचार किया गया है। इसके अनन्तर पालि, प्राकृत और अपभ्रश के महाकाव्यो के स्वरूप पर भी विचार किया गया है। इन भाषाओ के अनेक महाकाव्यो का विवेचन मुख्यत उनके स्वरूप के आधार पर किया गया है। शैली की दृष्टि से यह विभाजन इस प्रकार है—शास्त्रीय महाकाव्य, पौराणिक शैली के महाकाव्य, ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य, रोमाचक महाकाव्य।

चौथे अध्याय मे हिन्दी-महाकाव्य के उदय और उसके परिवेश की विवेचना की गयी है। अपभ्रश के महाकाव्यो का हिन्दी-महाकाव्यों पर गम्भीर प्रभाव पडा था। हिन्दी के महाकाव्य अपनी समसामयिक परिस्थितियो से भी बहुत प्रभावित हुए थे। इस अध्याय मे इस प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। हिन्दी के आदिकाल मे प्रशस्तिमूलक महाकाव्यो का प्रचुरता से सृजन हुआ। प्रशस्तिमूलक वर्णनात्मक ऐतिहासिक काव्य तथा रोमाचक प्रेमाख्यान-काव्य भी लिखे गये। इसके अतिरिक्त प्रशस्तिमूलक धार्मिक काव्य और वीरकाव्यो का भी निर्माण हुआ। आदिकाल के वाद का युग अलकृतमहाकाव्य-रचना के योग्य हो चुका था। उत्तरमध्यकाल महाकाव्यो के लिए अनुर्वर युग था। इसी प्रकार आज का युग भी महाकाव्य के लिए अनुर्वर है, क्योकि आजकल अन्तर्वृत्ति-निरूपण और प्रगीतात्मकता की प्रवृत्ति वढ रही है।

पंचवे अध्याय मे हिन्दी के विकसनशील महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' का विस्तृत विवेचन है। छठे अध्याय मे विकसनशील लोकमहाकाव्य 'आल्हखड' का

आलोचनात्मक अध्ययन 'महात्मा बनादास' के नाम से अलग प्रकाशित हो रहा है" ।[1]

प्रस्तुत प्रबन्ध दो खडो मे विभक्त है । प्रथम खड मे तीन अध्याय हैं । पहले अध्याय मे आलोच्य काल की परिस्थितियो और प्रवृत्तियो का विश्लेषण किया गया है । दूसरे अध्याय का प्रतिपाद्य है—रामकाव्य मे नवचेतना । इसमे राम-कथा के विविध रूपो, रामकाव्य मे शृगार की परम्परा, रामोपासना मे माधुर्य के सूत्रपात आदि का अध्ययन किया गया है । तीसरे अध्याय मे उन्नीसवी शताब्दी के रामभक्ति-साहित्य के विकास का गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

द्वितीय खड के चार अध्यायो मे बनादास (१८२१ ई०—१८९२ ई०) का विशेषाध्ययन हुआ है । पहले अध्याय मे उनके जीवनवृत्त का निरूपण है । दूसरे अध्याय मे उनके ग्रन्थो का परिचय दिया गया है । महात्मा बनादास ने कुल चौंसठ ग्रन्थो की रचना की थी । इनमे से एकसठ ग्रन्थ उपलब्ध हैं । उनका महाकाव्य 'उभयप्रबोधक रामायण' प्रकाशित हो चुका है, शेष साठ रचनाओ की हस्तलिखित प्रतिया अनुसन्धाता के पास सुरक्षित हैं । तीसरे अध्याय मे बनादास के आध्यात्मिक विचारो, उनकी दास्य और मधुर भक्ति का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । चौथे अध्याय मे उनके काव्य की समीक्षा है । रामभक्ति पर आधृत होने पर भी उनकी कृतिया निर्गुणपन्थी, सूफी और रीतिकालीन रचना-पद्धतियो से प्रभावित हैं । इस अध्याय मे उन प्रभावो का भी आकलन किया गया है ।

## १२१. गत सौ वर्षों मे कविता के माध्यम के लिए ब्रजभाषा-खड़ीबोली-सम्बन्धी विवाद की रूपरेखा

[१९५५ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५५ ई० मे श्री कपिलदेव सिंह को उनके प्रबन्ध 'गत सौ वर्षों मे कविता के माध्यम के लिए ब्रजभाषा-खडीबोली-सबधी

---

१ डा० भगवतीप्रसाद सिंह—रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, पृष्ठ ४८६

विवाद की रूपरेखा' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा, ने उनके इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९५६ ई० मे 'व्रजभाषा वनाम खडीवोली' के नाम से किया।

इस प्रवन्ध मे नौ अध्याय हैं। पहले अध्याय में खडीवोली और व्रजभाषा सम्वन्वी विवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है। इसमे व्रजभाषा की सहायक शक्तियो तथा उसके पतन के कारणो एव उन्नीसवी शताव्दी मे खडीवोली के साधक तथा वाधक तत्वो पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे खडीवोली की प्राचीनता, उसकी साहित्यिक परम्परा, उसके जनपदीय प्रयोगो तथा उसे काव्यभाषा वनाने के लिए किये गये प्रारम्भिक प्रयत्नो की शोध की गयी है। तीसरे अध्याय मे भारतेन्दु जी के एतद्विपयक विचारो, खडीवोली की कमियो, उर्दू से उत्पन्न भय, दो भाषाओ के अव्यावहारिक प्रयोग, व्रजभाषा के लालित्य आदि पर विचार करते हुए भारतेन्दु-युग मे व्रजभाषा और खडीवोली के विवाद का ऐतिहासिक दिग्दर्शन कराया गया है। चौथे और पाचवें अध्यायो मे खडीवोली और व्रजभाषा के गुण-दोपो के आधार पर पक्ष-विपक्ष की ओर से उपस्थित किये जाने वाले तर्कों की छानवीन करते हुए प्रस्तुत विवाद की ऐतिहासिक समीक्षा की गयी है। इन दोनो अध्यायो के आलोच्य काल क्रमश द्विवेदी-युग तथा छायावादी युग हैं। छठे अध्याय मे व्याकरण की दृष्टि से व्रजभाषा और खडीवोली का अन्तर स्पष्ट करके दोनो भाषाओ की काव्योपयुक्त विशेषताओ एव गुण-दोपो का आकलन है। सातवें अध्याय मे आधुनिक व्रज-लोकगीतो की रचना के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि व्रजभाषा-काव्य की परम्परा अव भी जीवित है। आठवें अध्याय मे भक्तिकाल से लेकर वर्तमान काल तक की व्रजभाषा और भारतेन्दु-युग से लेकर प्रयोगवादी रचनाओ तक की खडीवोली की सफलताओ का मूल्याकन किया गया है। नवें अध्याय मे इस माध्यम-सम्वन्धी सघर्ष मे विजय प्राप्त करने वाली खडीवोली की सफलता के कारणो की खोज करते हुए वर्तमान हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति पर इस विवाद के ऐतिहासिक प्रतिफल की निर्धारणा की गयी है। परिशिष्ट मे उद्धृत कविता ('होली मे खडीवोली') और दो प्रहसनों के साराश इस विवाद-विषयक जानकारी के लिए उपयोगी हैं।

# १२२. आधुनिक हिन्दी-काव्य में निराशावाद

[१९५५ ई०]

श्री शम्भुनाथ पाडेय ने अपने शोव-प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी-काव्य निराशावाद' पर आगरा विश्वविद्यालय से सन् १९५५ ई० मे पी-एच० डी की उपाधि प्राप्त की। यह प्रबन्ध आगरा बुक स्टोर, हास्पिटल रोड, आगरा, सन् १९५५ ई० मे प्रकाशित हुआ।

यह प्रबन्ध पाच अध्यायो मे विभक्त है। पहला अध्याय 'भूमिका' है इसमे सर्वप्रथम निराशावाद की व्याख्या की गयी है, तव निराशावादी भावना का वर्गीकरण है। यह वर्गीकरण प्रवृत्तियो, कवि की चेतना तथा अभिव्यं के प्रकारो की दृष्टि से किया गया है। इसके वाद भारतवर्ष की दार्शनि परम्परा में निराशावाद पर विचार किया गया है।

दूसरे अध्याय का प्रतिपाद्य भारतेन्दु-युग है। अध्येता ने पहले भारतेन्दु-यु के निराशावाद की सीमा निर्धारित कर ली है। उसका विचार है कि इस यु मे राष्ट्रीय निराशावाद की भावना सर्वव्यापक थी। यह राष्ट्रीय निराशावाद ए युग-परिवर्तनकारी अनुभूति था और युग की राजनीतिक, आर्थिक और साम जिक परिस्थिति से इसका गहरा सम्बन्व था। इस निराशावाद के विभिन्न रु थे—विषम परिस्थितियो का निराशावादी चित्रण, देश और समाज का निराश वादी चित्रण एव परिस्थितियो की विषमता तथा समाज की अधोगति की कवि मानस पर प्रतिक्रिया। अध्याय के अन्त मे भारतेन्दु-युग के निराशावाद व मूल्याकन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे पहले द्विवेदी-युग के निराशावाद का सीमा-निर्धारण है तव द्विवेदी-युग की राजनीतिक परिस्थितियो और राष्ट्रीय असतोष का निरूप किया गया है। यह निराशा कई प्रकार की है। कही पराजयजन्य निराशाव उपलब्ध होता है तो कहीं सामाजिक व्यवस्था पर क्षोभ। विधवा, अछूत, कृप आदि को लेकर इस युग मे समवेदनात्मक काव्य भी लिखा गया। दुर्भिक्ष महामारी आदि सकटो से प्रेरित होकर भी निराशावादी काव्य की रचना हुई अन्त मे लेखक ने द्विवेदी-युग के निराशावादी काव्य का मूल्याकन किया है।

चौथे अध्याय मे छायावाद की सीमा निर्धारित करने के वाद छायावाद युग के निर्माता तत्वो तथा युगीन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परि-

स्थितियो का अध्ययन किया गया है। तदुपरात व्यक्तिगत निराशावाद के मनोवैज्ञानिक आधार का स्पष्टीकरण किया गया है। इसके वाद रहस्यवादी गीतो (प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी, रामनाथ सुमन, रामकुमार वर्मा, तारा पाडे आदि के गीतो) मे सन्निहित निराशावादी तत्वो की विवेचना है। तदनन्तर प्रकृति-चित्रण के माध्यम से निराशावाद की अभिव्यक्ति पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् प्रणय-निराशा का सामान्य परिचय, विकास, मनोवैज्ञानिक आधार, अवस्थाए, अभिव्यक्ति के प्रकार तथा प्रणय-निराशा की अनुभूतियो का पर्यालोचन किया गया है। खैयामवादी निराशा का भी विवेचन किया गया है। स्वतन्त्र रूप से निराशावाद की अभिव्यक्ति के (अध्येता ने) तीन रूप माने हैं—(१) दार्शनिक निराशावाद, (२) व्यक्तिगत निराशावाद, (३) समष्टिगत निराशावाद। अन्त मे छायावादी युग के निराशावाद का मूल्याकन है।

पाचवें अध्याय मे प्रगतिवादी-युग की निराशा की सीमा निर्धारित करने के वाद युगपरिवर्तनकारी तत्वो का अनुसन्धान किया गया है। अध्येता ने वतलाया है कि इस युग मे व्यक्तिगत निराशावाद एक ओर समष्टिगत सघर्ष मे परिणत हुआ तो दूसरी ओर उसकी परिणति व्यक्तिगत आशावाद मे हुई। प्रणय-गीत, प्रकृति-चित्रण और जीवन-दर्शन—सभी क्षेत्रो की निराशा आशा मे परिणत हो गयी। परिशिष्ट मे प्रवन्ध काव्यो के माध्यम मे अभिव्यक्त युग-चेतना दिखाने के लिए आधुनिक युग के प्रमुख प्रवन्व काव्यो—'प्रिय-प्रवास', 'साकेत', 'कामायनी' तथा 'कुरुक्षेत्र'—का अनुशीलन किया गया है।

## १२३. रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत

[१९५५ ई०]

श्री सीताराम कपूर का प्रवन्ध 'रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत' सन् १९५५ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रवन्ध अभी तक अप्रकाशित है।

इस ग्रन्थ मे साहित्यिक दृष्टि से 'रामचरितमानस' के स्रोतो पर विचार किया गया है। प्रस्तुत प्रवन्ध में पाच अध्याय हैं। पहले अध्याय मे प्रवन्ध की प्रस्तावना है। भारतीय जीवन मे राम का स्थान, रामकथा की लोकप्रियता,

रामकथा के विकास का संक्षिप्त पर्यालोचन, तुलसी के पूर्व का राममाहि
तुलसी के प्रेरक, मानस की रचना का प्रयोजन आदि इसके प्रतिपाद्य विषय है
दूसरे अध्याय मे मूल स्रोतो से तुलसीदास के द्वारा किये गये शब्द-ग्रहण
अध्ययन है। यहा पर 'शब्द' का प्रयोग उसके व्यापक अर्थ मे हुआ है। उस
अन्तर्गत पद-ग्रहण, पाद-ग्रहण, अर्ध-ग्रहण और वृत्त-ग्रहण की समीक्षा की ग
है। शब्द-ग्रहण की विवेच्य सामग्री के विस्तार के कारण उसका शेष अ
अध्याय के अन्त मे परिशिष्टरूप मे जोड दिया गया है।

तीसरे और चौथे अध्यायो मे तुलसीदास के 'रामचरितमानस' मे मूल स्रो
से ग्रहण किये गये अर्थो का वर्गीकरण और विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है
चतुर्थ अध्याय के अन्त मे तुलसीदास की मौलिकता की भी चर्चा की गयी है
पाचवें अध्याय मे 'रामचरितमानस' मे किये गये प्रबन्ध-ग्रहण का विवेचन है
'रामचरितमानस' के सात सोपानो के नाम पर ही इस अध्याय के सात विभ
किये गये हैं। पहले मे बालकाड के स्रोतो का अनुसन्धान किया गया है। वदन
राममाहात्म्य, सतीमोह, शिव-विवाह, रामजन्म के हेतु पुत्रेष्टि तथा रामजन्म
लेकर विवाह तक की कथावस्तु की उत्तमर्ण रचनाओ की खोज की गयी है। दूस
मे रामराज्याभिषेक-प्रस्ताव से लेकर भरत के अवध-प्रत्यागमन तक उपस्थापि
सामग्री के मुख्य प्रसगो के स्रोतो की गवेषणा की गयी है। तीसरे मे अरण्यका
के सीता-जयत-प्रसग से लेकर शबरी-उद्धार तक, चौथे मे किष्किन्धा काड
अन्तर्गत राम-हनुमान-भेंट से लेकर सीता की खोज के लिए वानरो के प्रस्था
तक, पाचवें मे हनुमान-मैनाक मिलन से लेकर समुद्र-निग्रह तक, छठे मे लक
काड के अन्तर्गत रामेश्वर के स्थापन से लेकर राम के अवध-प्रत्यावर्तन त
और सातवें मे हनुमान-भरत-मिलन से लेकर कलिवर्णन तक के ग्रथित वृत्त
मुख्य-मुख्य अशो के स्रोतो का विवेचन है। अन्त मे उपसहार करते हुए तुलस
दास की मधुकरी वृत्ति का उल्लेख करके उनकी मौलिकता पर प्रकाश डाल
गया है। परिशिष्ट मे 'रामचरितमानस' के पद्यो और उनके स्रोत रूप मे गृही
सस्कृत के श्लोको की (दो सौ साठ पृष्ठो मे) निबन्धना से शोध-ग्रथ की उपय
गिता बढ गयी है।

# १३६. पृथ्वीराज रासो की भाषा

[१९५६ ई०]

श्री नामवरसिंह को उनके प्रवन्ध 'पृथ्वीराज रासो की भापा' पर सन् १९५६ ई० मे हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। यह प्रवन्ध इसी नाम से सन् १९५६ ई० मे सरस्वती प्रेस, बनारस, से प्रकाशित हुआ।

ग्रन्थ की भूमिका मे पृथ्वीराज रासो के ऐतिहासिक, साहित्यिक और सामाजिक महत्व, रासो-विषयक अध्ययन, उसकी पाठ-परम्पराओ आदि पर विचार किया गया है। प्रथम अध्याय 'ध्वनि-विचार' है। इसमे रासो के ध्वनि-समूह, छन्द सम्बन्धी ध्वनि-परिवर्तन, स्वर-परिवर्तन, व्यजन-परिवर्तन, व्यजनद्वित्व का सरलीकरण, सानुनासिकता और अनुस्वार तथा फारसी शब्दो मे ध्वनि-परिवर्तन का अध्ययन किया गया है। 'रूप-विचार' नामक द्वितीय अध्याय मे रचनात्मक उपसर्गो और प्रत्ययो, सज्ञाओ, सख्यावाचक विशेपणो, सर्वनामो सर्वनाममूलक विशेपणो, विभिन्न प्रकार के क्रियारूपो एव अव्ययो का अनुशीलन है। तृतीय अध्याय मे कारक-सम्बन्धी विशेपताओ, पदक्रम और मिश्रवाक्य-रचना पर विचार करते हुए वाक्य-विन्यास का अध्ययन किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे 'कनवज्ज समय' का सम्पादित पाठ और उसके सम्पूर्ण शब्दो का सन्दर्भ-सहित कोश दिया गया है।

'पृथ्वीराज रासो' का भापावैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तु करने वाला यह शोध-प्रवन्ध धारणोज की लघुतम रूपान्तर वाली प्रति पर आधृत है क्योकि वह प्राचीनतम (स० १६६७ वि०) प्रति है और उसमे भापा के रूप भी प्राचीनतर हैं। साथ ही काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे सुरक्षित, वृहद् रूपान्तर की प्रति से भी सहायता ली गयी है। 'कनवज्ज समय' रासो का मुख्य तथा केन्द्रीय भाग है। अत उसके लगभग साढे तीन हजार शब्दो के आधार पर ही रासो की भापा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

## १४०. रीतिकालीन कवियो की प्रेमव्यंजना

[१९५६ ई०]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९५६ ई० मे श्री बच्चनसिह को उनके प्रवन्ध 'रीतिकालीन कवियो की प्रेमव्यजना' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी। यह प्रवन्ध सन् १९५८ ई० मे नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, से प्रकाशित हुआ।

उक्त प्रवन्ध मे आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे रीतिकाल के नामकरण, तत्कालीन सामन्तीय वातावरण, रीतिकाव्य के साहित्यिक प्रेरणा-स्रोतो (काव्य-शास्त्रीय सम्प्रदाय, भक्ति-सम्प्रदाय, नायक-नायिका-भेद आदि), हिन्दी की रीति-परम्परा, रीतिकालीन काव्यो के प्रधान प्रतिपाद्य विपय (नायक-नायिका आदि) और अलकार-निरूपण पर भी विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे प्रेमके स्वरूप का व्याख्यान है। काम, सेक्स और प्रेम, शारीरिक आकर्पण, शरीर, मन और आत्मा के तादात्म्य, प्रेम की अनौपचारिकता, प्रेम के मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक स्वरूप, शृगार रस तथा प्रेमभाव और प्रेम के प्रकारो का विवेचन है। तीसरे अध्याय का आलोच्य विषय रीतिकालीन कवियो का प्रेम तथा सौंदर्य-विधान है। आलम्बन के शारीरिक आकर्षण (नेत्र, वर्ण, स्तन, मुख, केश, नितम्ब, अलकार, हाव आदि) का निरूपण करके मानसिक आकर्षण के सयोग-कालीन (शालीनता, स्वीकृति, निषेघ आदि) तथा वियोग-कालीन (मानसिक आकर्षण के अन्तर्गत पूर्वानुराग, मान और प्रवास) स्वरूप की समालोचना की गयी है।

चौथे अध्याय मे स्वच्छन्द काव्यधारा का विवेचन है। स्वच्छन्दतावादी प्रेम-निरूपण, लौकिक मर्यादा के अतिक्रमण, नये आदर्श, सयोग-वर्णन की सौन्दर्य-चेतना, प्रेममार्ग की दुस्तरता, वियोगजन्य प्रेम-पीडा की अनिर्वचनीयता तथा विविध मनोभावो का अध्ययन किया गया है। पाचवे अध्याय मे रीति-कालीन नायिकाओ की वेशभूषा (वस्त्र, अलकार, अगराग और षोडश शृगार) का अनुसधान है। छठे अध्याय मे प्रेम-चित्रण के नैतिक स्वर के अन्तर्गत स्वकीया के आदर्श (पातिव्रत, शील, पति की मर्यादा, कुटुम्ब आदि), परकीया-प्रेम के नैतिक पक्ष, पुरुष-नारी-सम्वन्ध तथा जीवन के अन्य पक्षो से सम्बद्ध प्रेम की समीक्षा है। सातवें अध्याय मे प्रेम-व्यजना की भाषा-शैली की आलोचना है। शब्दो के नये सम्बन्धो, शब्द-ध्वनि, चित्रोपम विशेषणो, मुहावरोऔर लोकोक्तियो,

चित्र-योजना तथा विविध प्रकार की अलकार-योजना का व्यापक विश्लेपण है। आठवें अध्याय मे विषय का उपसहार करते हुए रीतिकालीन कवियो की प्रेम-व्यजना के साहित्यिक मूल्य का आकलन किया गया है। ग्रन्थ के अन्त मे दो परिशिष्ट भी हैं—'रीतिकालीन कवियो की भगवद्भक्ति' और 'रीतिकालीन प्रेमाख्यानक काव्यो का प्रेम-निरूपण'।

## १४१. आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे नारी

[१६५६ ई०]

श्री रघुनाथ सिंह को उनके गवेषणात्मक प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे नारी (सन् १८५७–१६३६ ई०)' पर हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, ने सन् १६५६ ई० मे उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध अभी अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रबन्ध पाच खडो में विभक्त है। प्रथम खड प्रबन्ध की पृष्ठभूमि के रूप मे लिखा गया है। इस खड मे दो अध्याय है। पहले अध्याय में नारी के वैयक्तिक स्वरूप के अन्तर्गत नारी-विज्ञान (शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान) तथा नारी-जीवन के पारिवारिक रूपो (कन्या, पत्नी आदि) एव सामाजिक स्वरूप के अन्तर्गत नारी की सामाजिक स्थिति की पूर्व मान्यताओ तथा उनके आधुनिक परिवर्तित रूप का अध्ययन है। दूसरा अध्याय आलोच्य विषय की साहित्यिक पृष्ठभूमि के रूप में लिखा गया है। जिसमें साहित्य के रूप, साहित्य-गत आदर्श एव यथार्थ आदि का विवेचन करके हिन्दी के प्रस्तुत काल के भारतीय नारी-समाज पर विचार किया गया है।

द्वितीय खड मे भारतेन्दुयुगीन हिन्दी-साहित्य मे अकित नारी का अध्ययन किया गया है। खड के आरम्भ मे युग का सामान्य परिचय देकर उस युग के साहित्य मे अभिव्यक्त रूढियो के विरुद्ध आन्दोलन, नारी के प्रति परिवर्तित दृष्टि, परम्परागत मान्यता पर आधारित चित्रण, रीतिकालीन रूप तथा साहित्य-गत आदर्श एव वस्तुस्थिति की समीक्षा करके विवेचित साहित्यकारो और उनकी रचनाओं की सूची प्रस्तुत की गयी है।

तृतीय खड का आलोच्यकाल द्विवेदी-युग (१६००-२० ई०) है। आरम्भ में सामान्य परिचय दिया गया है। तत्पश्चात् उस युग मे नारी के सामाजिक

उत्थान के लिए किये गये व्यापक आन्दोलन, नारी के श्रेयस रूप के चित्रण, प्रेम के आलवन रूप मे नारी, नारी मे वैयक्तिकता के विकास, पुरानी शैली की परिसमाप्ति और नयी शैली के प्रारम्भ, नारी-मनोविज्ञान, नारी-जीवन के विविध रूप, तथा साहित्यगत आदर्श एव वस्तुस्थिति का अध्ययन किया गया है। खड के अन्त मे विवेचित साहित्यकारो और उनकी रचनाओ की सूची भी दे दी गयी है।

चतुर्थ खड मे छायावाद-युग (१९२०-३६ ई०) का अनुशीलन है। आरम्भ मे सामान्य परिचय है। उसके बाद उस युग के साहित्य मे चित्रित नारी का निम्नाकित शीर्षको के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है —निराश प्रेम की स्थिति, नारी-रूप का आरोप, ऐन्द्रिय-शृगार-चित्रण, नारी का प्रगतिशील रूप, नारी का सामाजिक रूप, प्रेम-कल्पना मे पूर्ववर्ती रूढियो का त्याग, नारी मनोविज्ञान, नारी-जीवन के विविध रूप, साहित्यगत आदर्श एव वस्तुस्थिति। अन्त मे इस युग के विवेचित साहित्यकारो और उनकी रचनाओ की सूची प्रस्तुत की गयी है।

पचम खड ग्रन्थ का उपसहार है। आरम्भ मे विषय की रूपरेखा और विवेचन की दृष्टि का स्पष्टीकरण है। प्रबन्ध के विवेचित काल मे नारी-सम्बन्धी धारणा का क्रमिक विकास दिखलाया गया है। प्रबन्ध की समय-सीमा के पश्चात् के साहित्य और विभिन्न साहित्यागो मे नारी-चित्रण की विशेषता का निरूपण है। अन्त मे प्रस्तुत प्रबन्ध का सामाजिक और सास्कृतिक दृष्टि से मूल्याकन है।

## १४२. आधुनिक हिन्दी-काव्य-साहित्य के बदलते हुए मानों का अध्ययन

[१९५६ ई०]

श्री रमेश प्रसाद मिश्र को 'आधुनिक हिन्दी-काव्य-साहित्य के बदलते हुए मानों का अध्ययन' नामक शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करने पर काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे मूल्यो की

परिभापा, प्रयोजन तथा उनकी व्यापकता के लिए अर्थशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र और दर्शनशास्त्र की सीमाओं का बोध कराया गया है। दूसरे अध्याय मे कला, कवि, कविता और जनता के परस्पर सम्बन्धो, समस्याओ और नवीन मूल्यांकन की विवेचना करके भारतीय और पाश्चात्य मतो की तुलना की गयी है। तीसरे अध्याय मे आधुनिकता, उसके अर्थ और कारणो की व्याख्या करके ब्रिटिश सम्पर्क के विस्तार तथा (ईसाई, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज आदि) प्रतिनिधि आन्दोलनो की विचारचर्चा है। चौथे अध्याय में संक्रान्तियुग के रूप मे भारतेन्दु-युग का विवेचन है। इसमे तत्कालीन जनता और साहित्य के परस्पर अभिन्न सम्बन्ध, नयी सभ्यता और पुरानी सस्कृति के सघर्षमय रूप और उस युग के साहित्यकारो की सरल तथा वक्रतापूर्ण शैली, ब्रजभापा-खडीबोली-सघर्ष तथा खडीबोली हिन्दी मे उर्दू शब्दो के प्रयोग विषयक विवाद की समीक्षा है। पाँचवें अध्याय मे द्विवेदी-युग (जिसे अनुसन्धाता ने 'सैद्धान्तिक शास्त्रीयता का युग' माना है) का अध्ययन है। उस काल के दो प्रभावशाली व्यक्तियो महावीर प्रसाद द्विवेदी और दयानन्द सरस्वती के योगदान, उस युग की पृष्ठभूमि, काव्य-रूप, वर्ण्य विपय और उपादान (मानव, प्रकृति तथा राष्ट्रीयता) काव्य-प्रकारो (महाकाव्य, खडकाव्य, मुक्तक, पद्यनिबन्ध, पत्रगीति, व्यग्यकाव्य, गीति-काव्य) आदि का अनुशीलन है। छठे अध्याय मे छायावाद युग की समीक्षा है। पूर्वपीठिका-रूप मे उस युग के नामकरण और परिस्थितियो पर विचार किया गया है। छायावायी काव्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वो (पाश्चात्य, वगीय, वैष्णव, सूफी आदि), छायावाद के उत्थान, उसके विपय और उपादानो (मानवप्रेम, प्रकृति, नारी-सौन्दर्य, जिज्ञासा और प्रतीकवाद, रहस्यवाद) का और छायावादी युग के काव्यरूपो (प्रबन्ध तथा मुक्तक, गाथागीत, शोकगीत, सम्बोधनगीत, गीतिनाट्य, गद्यगीत, वेणुगीत) की समालोचना है। सातवें अध्याय मे प्रगतिशील और प्रयोगवादी साहित्यकाल (सन् १९३६ से अब तक) की अभिनव चेतना (कला, राजनीति, समाज और सस्कृति मे उन्मेप) प्रगतिवाद के नामकरण, उस काल की परिस्थितियों, प्रवर्त्तनकारी विचार-धाराओं (मनोविश्लेपण, गान्धीवाद की समन्वयवादी विचारधारा, मार्क्सवाद) तथा उनके प्रभाव का आकलन है। विपय और उपादानो का विश्लेपण करके काव्य-रूपों एवं भापा-शैली की भी समालोचना की गयी है। इस शोध-प्रबन्ध मे अनुसन्धाता ने आधुनिक हिन्दी-काव्य के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए व्याख्यात सामग्री की नूतन दृष्टि से परीक्षा की है।

## १४३. हिन्दी-गद्य के विविध साहित्यरूपो के उद्भव और विकास का अध्ययन

[१९५६ ई०]

श्री बलवन्त लक्ष्मण कोतमिरे को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी गद्य के विविध साहित्य रूपो के उद्भव और विकास का अध्ययन' पर हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, ने सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध 'हिन्दी गद्य के विविध साहित्य-रूपो का उद्भव और विकास' नाम से किताब महल, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ है।

इस प्रबन्ध मे छ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे हिन्दी-गद्य के विकास का अध्ययन किया गया है। अनुसन्धाता ने इस विकास को पाँच कालो मे विभक्त किया है। सन् १८०० ई० तक हिन्दी-गद्य का आदिकाल था, जिसमे मैथिली, राजस्थानी, ब्रजभाषा और खड़ीबोली के गद्य का विकास हुआ। दूसरा काल आरम्भिक काल है जिसकी सीमा १८०० ई०-१८७३ ई० निर्धारित की गयी है। १८७३ ई० से १९०० ई० तक हिन्दी-गद्य का प्रयोगकाल माना गया है। निर्माण-काल की अवधि १९०० ई०-१९२० ई० तक रही। १९२० ई० से १९३६ ई० तक हिन्दी-गद्य का विकास-काल रहा और १९३६ ई० से १९५० तक के समय को विस्तार-काल की सज्ञा दी गयी है।

दूसरे अध्याय मे उपर्युक्त काल-विभाजन के अनुसार हिन्दी-नाटक का अध्ययन किया गया है। यह विभाजन इस प्रकार है

| | | |
|---|---|---|
| १ | आदिकाल | सन् १८५३ ई० तक |
| २ | आरम्भिक काल | सन् १८५३–७३ ई० तक |
| ३ | प्रयोग-काल | सन् १८७३–९७ ई० तक |
| ४ | निर्माण-काल | सन् १८९७–१९१५ ई० तक |
| ५ | विकास-काल | सन् १९१५–१९३४ ई० तक |
| ६ | विस्तार-काल | सन् १९३४–१९५० ई० तक |

तीसरे अध्याय मे हिन्दी-उपन्यासो का अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन निम्नलिखित विभाजन के अन्तर्गत किया गया है।

| | | |
|---|---|---|
| १ | आरम्भिक-काल | १८७२–१८९१ ई० तक। |
| २ | निर्माण-काल | १८९१–१९१८ ई० तक। |
| ३ | विकास-काल | १९१८–१९३६ ई० तक। |
| ४ | विस्तार-काल | १९३६–१९५० ई० तक। |

चौथे अध्याय मे हिन्दी-कहानी का अध्ययन किया गया है। हिन्दी-कहानी के विकास का विभाजन निम्नलिखित पाँच कालो मे किया गया है —

| | |
|---|---|
| १ आरम्भिक-काल | १८००–१९०० ई० तक। |
| २ शैशव-काल | १९००–१९१० ई० तक। |
| ३ निर्माण-काल | १९१०–१९२७ ई० तक। |
| ४ विस्तार-काल | १९२७–१९३७ ई० तक। |
| ५ आधुनिक-काल | १९३७–१९५० ई० तक। |

पाँचवे अध्याय मे निबन्ध का अध्ययन है। निबन्ध के विकास को निम्नाकित पाँच कालो में विभक्त किया गया है —

| | |
|---|---|
| १ आरम्भिक काल | सन् १७८२–१८७३ ई० तक। |
| २ शैशव-काल | सन् १८७३–१९०० ई० तक। |
| ३ निर्माण-काल | सन् १९००–१९२१ ई० तक। |
| ४ विस्तार-काल | सन् १९२१–१९३५ ई० तक। |
| ५ आधुनिक काल | सन् १९३६–१९५० ई० तक। |

छठे अध्याय मे आलोचना का अध्ययन है। विवेचन की सुविधा के लिए उसका काल-विभाजन इस प्रकार किया गया है —

| | |
|---|---|
| आरम्भिक काल | सन् १८७२–१८९७ ई० तक। |
| विकास-काल | सन् १८९७–१९३० ई० तक। |
| विस्तार-काल | सन् १९३०–१९५० ई० तक। |

अन्त मे प्रबन्ध का उपसहार है।

## १४४. हिन्दी और कन्नड़ मे भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन

[१९५६ ई०]

श्री हिरण्मय को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी और कन्नड मे भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत करने पर सन् १९५६ ई० मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध इसी नाम से सन् १९५९ ई० मे विनोद पुस्तक मदिर, हास्पिटल रोड, आगरा, मे प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे दस अध्याय है। पहले अध्याय मे विषय की सीमा निर्धारित करने के अनन्तर 'भक्ति' के अर्थ, प्रकार और साधनो पर विचार किया गया है। भागवत, सात्वत, पाचरात्र और वैष्णव मतो का भक्ति से सबध निरूपित करते हुए भक्तिवादी वेदान्ती सम्प्रदायो के मतो का सक्षिप्त विवेचन है। दूसरे अध्याय मे उत्तरमध्यकालीन भक्ति-सम्प्रदायो की पूर्वपीठिका का विवेचन करके वज्रयान, सहजयान, पाशुपतमत, योग-परम्परा और नाथमत का अनुशीलन और निर्गुण-सगुण-भक्ति तथा सूफी सिद्धातो का समीक्षण किया गया है।

तीसरे अध्याय मे हिन्दी-प्रदेश मे प्रचलित उत्तरमध्यकालीन वैष्णवो द्वारा प्रचारित भक्ति-सम्प्रदायो का विवेचन किया गया है। इस प्रकार के सम्प्रदाय चार हैं—रुद्रसम्प्रदाय, गौडीय सम्प्रदाय (अचिन्त्यभेदाभेद) राधावल्लभीय तथा हरिदासी अथवा सखीसम्प्रदाय। चौथे अध्याय मे कर्नाटक के उत्तरमध्यकालीन भक्ति-सम्प्रदाय वीरशैवमत और उसकी भक्ति-साधना का निरूपण किया गया है। पाचवें अध्याय मे वहा के उत्तरमध्यकालीन भक्ति-सम्प्रदाय की भूमिका मे माध्वमतावलम्बी भक्तो और उनकी भक्ति-पद्धति का विवेचन है। छठे अध्याय मे कन्नड के जैन-साहित्य मे निहित भक्तितत्वो का विश्लेषण करते हुए परवर्ती साहित्य पर उसके प्रभाव का आकलन किया गया है। सातवें अध्याय मे हिंदी-भाषी तथा कन्नड-भाषी प्रदेशो की राजनैतिक धार्मिक एव सामाजिक परिस्थितियो की समीक्षा की गयी है। आठवें अध्याय का प्रतिपाद्य हिंदी और कन्नड मे विविध भक्तिभावो की अभिव्यजना है। नवें अध्याय मे हिंदी और कन्नड साहित्य मे अभिव्यक्त सगुण तथा निर्गुण मतावलम्बी भक्तकवियो की विचार-धाराओ, जाति-पाति के तिरस्कार, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, नैतिक जीवन के महत्व, गुरुमाहात्म्य और नाममहिमा आदि अनेक विषयो के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दोनो के साम्य तथा वैषम्य का उद्घाटन किया गया है। दसवें अध्याय मे भक्ति-आदोलन की देन का मूल्याकन किया गया है। इस आदोलन ने भाषा और साहित्य को नवीन प्रेरणा दी, सामाजिक-नैतिक स्तर को उच्च और धार्मिक दृष्टिकोण को उदार बनाया। इस प्रकार मानवीय मूल्यो की स्थापना मे महत्वपूर्ण सहयोग दिया।

# १४५. वैदिक भक्ति तथा हिन्दी के मध्यकालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति

[१९५६ ई०]

डा० मुंशीराम शर्मा का गवेषणात्मक प्रबन्ध 'वैदिक भक्ति तथा हिन्दी के मध्यकालीन काव्य मे उसकी अभिव्यक्ति' सन् १९५६ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। 'भक्ति का विकास' नाम मे इसका प्रकाशन सन् १९५८ ई० मे चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, से हुआ।

मूल प्रबन्ध मे ग्यारह अध्याय हैं। पहले अध्याय मे वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टियो से अनेक प्राचीन एव अर्वाचीन भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानो के तत्व-चिंतन के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व का विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय मे ईश्वर के 'पर' तथा 'अवर' या निरपेक्ष और सापेक्ष रूपो की विचार-चर्चा की गयी है। ईश्वर के स्वरूप एव जगत् और जीव के सम्बन्ध से उसके गुणो का निरूपण है। तीसरे अध्याय मे भक्ति के स्वरूप, भक्तिमार्ग, भक्ति के अगो तथा उसकी विशेषताओ का विवेचन किया गया है। चौथे अध्याय मे वैदिक भक्ति का अध्ययन है—उसके स्वरूप, अग, साधन आदि की सोदाहरण मीमासा की गयी है। पाचवें अध्याय मे पाचरात्र सहिताओ, भक्तिसूत्रो, भक्तिशास्त्रीय ग्रथो, आलवार सतो एव वैष्णव भक्त आचार्यों के आधार पर भागवत भक्ति का व्याख्यान किया गया है। छठे अध्याय का आलोच्य विषय हिंदी-साहित्य का भक्तिकाल है। इस अध्याय मे भक्तिकालीन परिस्थितियो, विशेषकर धार्मिक आदोलनो और भक्ति-सम्प्रदायो की भूमिका मे तत्कालीन भक्तिकाव्य की विशेषताओ का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् चार अध्यायो मे भक्ति-काल के प्रतिनिधि कवियो की समीक्षा की गयी है। सातवें अध्याय मे निर्गुणकाव्य-धारा के प्रतिनिधि कवि कबीर के भक्ति-काव्य का विवेचन है। आठवें अध्याय मे प्रेममार्गी सूफी कवियो के प्रतिनिधि मलिक मुहम्मद जायसी की प्रेमपद्धति का अध्ययन है। नवें अध्याय में कृष्णभक्ति-शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास का समालोचन किया गया है। दसवें अध्याय मे रामभक्तिकाव्य-धारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास के भक्तिकाव्य का अनुशीलन है। ग्यारहवे अध्याय मे भजनीय भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम, कृपा आदि की विविध दृष्टियो से वैदिक भक्ति एव मध्यकालीन हिंदी-काव्य मे अभिव्यक्त भक्ति के साम्य तथा वैषम्य का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है।

# १४६. वार्ता-साहित्य का जीवनीपरक अध्ययन

## [१९५६ ई०]

श्री हरिहरनाथ टंडन को उनके प्रबन्ध 'वार्ता-साहित्य का जीवनीपरक अध्ययन' पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबन्ध ग्यारह प्रकरणो मे विभक्त है। पहले प्रकरण मे वार्ता-साहित्य के आरम्भ पर विचार किया गया है। प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रथो के सहारे भारतीय संस्कृति के आदिकाल से पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य तक के विकास का सिंहावलोकन किया गया है। दूसरे प्रकरण मे अध्ययन की आधारभूत सामग्री के रूप मे प्रकाशित और हस्तलिखित ग्रन्थो की सूची दी गयी है। तीसरे प्रकरण मे वार्ताओ मे आये हुए प्रसगो की प्रामाणिकता की परीक्षा की गयी है। चौथे प्रकरण मे वार्ता-साहित्य मे आये हुए कवियो की सूची प्रस्तुत की गयी है। साथ ही अष्टछाप के अतिरिक्त अन्य कवियो की रचनाओ के उद्धरण तथा इतिवृत्त भी दिये गये हैं।

पाचवें प्रकरण मे वार्ता के भावनात्मक और प्रसगात्मक संस्करणो मे उपलब्ध सामग्री की परस्पर तुलना करके दोनो का अतर स्पष्ट किया गया है। छठे प्रकरण मे कवियो के अतिरिक्त अन्य सेवकों और व्यक्तियो के सम्बन्ध मे विचार किया गया है। वार्ताओ की घटनाओ के अनुसार पुष्टिमार्ग के प्रसिद्ध आचार्यों का जीवनचरित भी दिया गया है। सातवें प्रकरण मे वार्ता-साहित्य मे उपलब्ध कवियो और अन्य सेवको या भक्तो के विवरण की 'भक्तमाल' के मूल और टीका मे प्राप्त इतिवृत्त के साथ तुलना की गयी है। आठवें प्रकरण मे वार्ता-साहित्य मे उपलब्ध कवियो तथा अन्य सेवको के नामो और जीवनवृत्त की हिंदी-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो मे दिये गये विवरण से तुलना की गयी है। वार्ता से प्राप्त सामाजिक और ऐतिहासिक वृत्त पर भी विचार किया गया है। साथ ही हिंदू-संस्कृति की रक्षा मे पुष्टिमार्ग की देन का भी महत्वाकन किया गया है।

नवा प्रकरण 'वार्ता-साहित्य का गद्य और गद्यभाषा का अध्ययन' है। इस अध्ययन के अन्तर्गत वार्ता-साहित्य मे प्रयुक्त ब्रजबोली, गुजराती, फारसी और साम्प्रदायिक शब्दो की सूची दी गयी है। इस प्रकरण के परिशिष्ट मे वार्ता-शब्दकोष तथा मुहावरा-कोष भी सकलित कर दिये गये हैं। दसवें प्रकरण मे

वार्ता-साहित्य की विशेषताओ का सक्षिप्त उल्लेख किया गया है। इस साहित्य का साहित्यिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक महत्व प्रतिपादित किया गया है। ग्यारहवें प्रकरण मे वार्ता-साहित्य के अनुशीलन के आधार पर कतिपय नवीन निष्कर्षो की स्थापना की गयी है, और प्रमाणो के आधार पर प्रचलित मान्यताओ की पुष्टि की गयी है।

## १४७. काव्य मे रस

[१९५६ ई०]

श्री आनन्दप्रकाश दीक्षित को उनके प्रबन्ध 'काव्य मे रस' पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध इसी नाम से राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

प्रस्तुत प्रबन्ध ग्यारह अध्यायो में विभक्त है। पहले अध्याय में सबसे पहले कवि और काव्य पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् विभिन्न आचार्यों की मान्यताओ पर विचार करते हुए काव्य की आत्मा का निर्धारण करने का प्रयास किया गया है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार पाठक या सहृदय शब्द की व्याख्या भी प्रस्तुत की गयी है। दूसरे अध्याय में सस्कृत-साहित्य मे रस-चर्चा पर प्रकाश डाला गया है। वैदिक साहित्य से लेकर कुमारस्वामी और गोविन्द ठाकुर तक 'रस' के विभिन्न अर्थों की समीक्षा की गयी है। श्रव्य काव्य मे रस-कल्पना के आधार का अनुसधान किया गया है, तदनन्तर दृश्य काव्य की रसात्मकता का भी विवेचन है। तीसरे अध्याय मे हिन्दी-रसशास्त्र का इतिहास वर्णित किया गया है। यह इतिहास नयनन्द से राजेश्वर चतुर्वेदी तक का है।

चौथे अध्याय मे रस-सामग्री के अन्तर्गत विभाव, अनुभाव, हाव, सात्विक भाव तथा सचारी भाव का अध्ययन किया गया है। इसी अध्याय मे स्थायी भाव तथा भाव की मनोवैज्ञानिक विवेचना भी की गयी है। पाचवे अध्याय मे रस-निष्पत्ति-विषयक भरत के प्रसिद्ध सूत्र तथा उसके विभिन्न व्याख्याताओ की विशद समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। छठे अध्याय मे साधारणीकरण पर विचार किया गया है। भट्ट नायक से लेकर डा० छैलबिहारी गुप्त 'राकेश' तक, जिन विद्वानो ने साधारणीकरण पर अपने मत व्यक्त किये हैं, उन सब मतो की

परीक्षा की गयी है। पाश्चात्य विद्वानो और मराठी के आचार्यों के एतद्विपयक मतो की भी छानबीन की गयी है।

सातवे अध्याय मे रसास्वाद के अधिकारी का निर्णय किया गया है। हिन्दी-कवि, सस्कृत के लेखक, दार्शनिक, मराठी आदि के विद्वान्, पाश्चात्य एव अर्वाचीन भारतीय विद्वान् आदि सभी के मतो पर अवधानपूर्वक विचार किया गया है। साथ ही, रसास्वाद मे छन्द एव लय के योग पर भी विचार किया गया है। आठवें अध्याय मे रसो की सख्या का विवेचन किया गया है, जो विद्वानो के लिए विवाद का विषय रहा है। नवे अध्याय मे प्राचीन सस्कृत आचार्यों एव आधुनिक विद्वानो के मतो के प्रकाश मे रसाभास का अध्ययन किया गया है।

दसवें अध्याय मे रसेतर सिद्धात ( अलकार, वक्रोक्ति, गुण, वृत्ति, रीति आदि ) और रस का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, रस और ध्वनि के सम्बन्ध की भी विवेचना की गयी है। ग्यारहवें अध्याय मे नवीन समीक्षा-शैलिया (प्रगतिवादी, मनोविश्लेपणात्मक, प्रभाववादी, अभिव्यजनावादी) और रस तथा नयी कविता और रस पर भी विचार किया गया है।

## १४८ हिन्दी-काव्य मे करुण रस (१४००--१७०० ई०)
[१९५६ ई०]

श्री व्रजवासीलाल श्रीवास्तव का प्रबन्ध 'हिन्दी-काव्य मे करुण रस (१४००–१७००)' सन् १९५६ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध अभी तक प्रकाशित नही हुआ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे ग्यारह प्रकरण है। आरम्भ मे विपय-प्रवेश है जिसमे मानव-जीवन के मनोवेगो की सृष्टि, मनोभावो मे करुण-भावना के विकास, जीवन की विवश एव असहाय परिस्थितियो, भाग्यवाद, सस्कृत-साहित्य की रचनाओ मे करुण रस, अपभ्रशसाहित्यगत करुण रस की परम्परा तथा चारणकालीन साहित्य मे करुण रस का विवेचन किया गया है। प्रथम प्रकरण मे करुण रस की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य मे अभिव्यक्त जीवन-दर्शन, वर्णाश्रम व्यवस्था, धर्म, समाज तथा दर्शन का अध्ययन है। दूसरे प्रकरण मे लोक-साहित्य, गीत-साहित्य और गाथा-साहित्य के आधार पर हिन्दी-साहित्य मे करुण भावो

के मूल रूपो की विवेचना है। तीसरे प्रकरण मे मनोविज्ञानाश्रित करुण रस की शास्त्रीय समीक्षा की गयी है। चौथे प्रकरण मे पौराणिक कथाओ, भक्तिनिरूपण, आध्यात्मिक स्रोत और रहस्यवाद पर प्रकाश डालते हुए धार्मिक काल मे करुण रस का अध्ययन किया गया है।

पाचवे प्रकरण मे विद्यापति के विरह-वर्णन मे करुणभावना की छानवीन की गयी है। छठे प्रकरण मे करुण रस की दृष्टि से कवीर की विरह-भावना का अनुशीलन है। सातवें प्रकरण मे सूर के भ्रमरगीत मे अभिव्यक्त करुण-भावना का निरूपण है। आठवे और नवें प्रकरणो मे क्रमश तुलसीदास के 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' मे प्राप्त करुण तत्वो की मीमासा की गयी है। नवें प्रकरण मे मीरा के विरह गीतो, और दसवे प्रकरण में केशव की 'रामचन्द्रिका' मे पायी जाने वाली करुणभावनाओ का अध्ययन है। ग्यारहवे प्रकरण मे प्रवन्ध का उपसहार करते हुए विभिन्न परिस्थितियो की भूमिका मे करुण रस के विकासक्रम का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रवन्ध मे शोधकर्ता ने करुण रस का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, उसकी सुखान्तता का निर्णय, करुण रस तथा विप्रलम्भ शृङ्गार की सीमारेखा का निर्धारण, करुण रस की दृष्टि से मध्ययुगीन काव्य की समीक्षा, आध्यात्मिक शोक की उद्भावना तथा प्रतिष्ठा का अनुशीलन एव साहित्यिक धार्मिक एकता का उद्घाटन करने का प्रयास किया है।

## १४६. आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त

[१६५६ ई०]

सन् १६५६ ई० मे श्री जयराम मिश्र को उनके प्रवन्ध 'आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिव जी के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त' पर आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली। यह प्रवन्ध अभी अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रवन्ध मे भूमिका और उपसहार के अतिरिक्त वारह अध्याय हैं। पहले अध्याय मे सिक्ख-धर्म तथा अन्य भारतीय धर्मो मे उसके स्थान का प्रतिपादन है। दूसरे अध्याय मे गुरुग्रन्थ साहिव के अनुसार परमात्मा के स्वरूप का निरूपण है। तीसरे अध्याय मे सृष्टिक्रम की विवेचना की गयी है। चौथे

अध्याय मे हउमे (अहकार) का विवेचन है। पाचवे अध्याय मे माया की व्याख्या है। छठे अध्याय मे जीव, मनुष्य और आत्मा का अध्ययन किया गया है। सातवे अध्याय का आलोच्य विषय मन है। आठवे से ग्यारहवे अध्याय तक हरिप्राप्ति के चार पथो (धर्ममार्ग, योगमार्ग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग) का अनुशीलन है। बारहवे अध्याय मे श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी के सर्वोपरि तत्व सद्गुरु और नाम का निरूपण है।

## १५०. हिन्दी साहित्य में हास्य रस (१८७०-१९५० ई०)
[१९५६ ई०]

*श्री बरसानेलाल चतुर्वेदी को उनके प्रबन्ध* 'हिन्दी साहित्य मे हास्य रस (सन् १८७०–१९५० ई०)' पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रकाशन हिन्दी साहित्य ससार, नई सडक, दिल्ली, ने इसी नाम से सन् १९५७ ई० मे किया

यह प्रबन्ध पन्द्रह अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे जीवन मे हास्य का स्थान निर्धारित किया गया है। हास्य का महत्व सामाजिक तथा व्यक्तिगत दोनो दृष्टियो से प्रतिपादित किया गया है। दूसरे अध्याय मे भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टिकोणो से हास्य का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। तीसरे अध्याय मे सस्कृत और हिन्दी साहित्य में हास्य की परम्परा का उद्घाटन किया गया है। चौथे अध्याय में हास्य रस के अभाव के कारणो का उल्लेख किया गया है।

पाचवें अध्याय मे हिंदी के नाटक-साहित्य में हास्य रस का विवेचन किया गया है। छठे अध्याय में हिंदी के कहानी-साहित्य का अनुशीलन करते हुए उसमें हास्य रस की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। उपन्यास में हास्य—सातवें अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है। निबन्ध-साहित्य मे हास्य रस का विवेचन आठवें अध्याय मे दिया गया है। नवें अध्याय में काव्य में हास्य रस का अध्ययन किया गया है। दसवें अध्याय में हास्य रस की पत्र-पत्रिकाओ पर विचार किया गया है।

हिन्दी-साहित्य मे हास्य की बहुत कुछ रिक्तिपूर्ति प्रातीय तथा विदेशी

भाषाओ के गद्य-साहित्य से हिन्दी मे अनुवाद करके की गयी। अनूदित साहित्य मे हास्यरस की विवेचना ग्यारहवे अध्याय मे की गयी है। इस दिशा में रेडियो-रूपको का योग भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इसका अध्ययन बारहवें अध्याय मे किया गया है। तेरहवें अध्याय में अग्रेजी के समृद्ध साहित्य में हास्य का अनुशीलन किया गया है। चौदहवें अध्याय में व्यग्यचित्र (कार्टून)-साहित्य पर विचार किया गया है जिसका सर्जन ही हास्य-व्यग्य के लिए होता है। पन्द्रहवा अध्याय उपसहार के रूप में लिखा गया है।

## १५१. हिन्दी मे आरम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य और विशेषतः पं० श्रीधर पाठक की कृतियो का अनुशीलन

[१८७५ ई० से १९२५ ई०]

[१९५६ ई०]

श्री रामचन्द्र मिश्र को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी मे आरम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य (सन् १८७५ ई० से १९२५ ई०) और विशेषत प० श्रीधर पाठक की कृतियो का अनुशीलन' पर आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि दी।

प्रस्तुत प्रबन्ध चार खडो मे विभक्त है। ये चार खड ग्यारह अध्यायो मे विभक्त हैं। प्रथम अध्याय मे भूमिका है और विषय का परिचय दिया गया है। स्वच्छन्दतावादी काव्य की पृष्ठभूमि का निर्देश करते हुए उसकी प्रेरक परिस्थितियो तथा प्रवृत्तियो और परिभाषा का विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय मे यूरोप मे स्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन की पृष्ठभूमि निर्दिष्ट की गयी है। तीसरे अध्याय में अग्रेजी साहित्य मे स्वच्छन्दतावादी काव्य की पूर्ववर्ती प्रगति तथा पूर्वयुग के कुछ प्रतिनिधि कवियों की समीक्षा की गयी है।

चौथे अध्याय मे आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे स्वच्छन्दतावाद की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग और छायावादी-युग पर विचार किया गया है। पाचवें अध्याय मे भारतेन्दु-युग की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो को स्पष्ट किया गया है। छठे अध्याय मे दिखाया गया है कि इन

इस प्रवन्ध मे उन्नीस अध्याय है। पहला अध्याय 'साहित्य और समाज' है। इस अध्याय मे साहित्य और समाज के सम्बन्ध पर व्यापक रूप मे विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे सस्कारो का विवेचन किया गया है। तीसरे अध्याय मे मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य मे भोजन और मादक द्रव्यो का अनुशीलन किया गया है। चौथे अध्याय मे आमोद-प्रमोद एव उनके साधनो की तथा पाचवे अध्याय मे उत्सव और त्योहारो की विवेचना की गयी है। छठे अध्याय मे रोगो और उनकी चिकित्सा की मध्ययुगीन साहित्यिक अभिव्यक्ति की समीक्षा की गयी है। आठवे अध्याय में यह दिखाया गया है कि मध्ययुग मे आध्यात्मिक उन्नति के साधनो को किस प्रकार साहित्यिक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। नवें अध्याय मे जातियो पर विचार किया गया है। दसवें अध्याय मे मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य का अनुशीलन करते हुए तत्कालीन समाज की रहन-सहन, मकान आदि की व्यवस्था का अनुसधान किया गया है।

ग्यारहवें अध्याय मे समाज और शिष्टाचार की विवेचना की गयी है। बारहवे अध्याय मे सामाजिक जीवन मे नित्यप्रति काम आने वाली वस्तुओं की गवेषणा की गयी है। तेरहवे अध्याय में प्रतिपादित किया गया है कि जनता के विश्वासो को किस प्रकार समकालीन साहित्य में अभिव्यक्ति मिल सकी। चौदहवें अध्याय में ग्राम्य जीवन की साहित्यिक अभिव्यजना का अध्ययन किया गया है। पन्द्रहवें अध्याय में मध्ययुगीन साहित्य के आधार पर नगरो के तत्कालीन जीवन पर प्रकाश डाला गया है। सोलहवें अध्याय का प्रतिपाद्य राजनैतिक जीवन है। सत्रहवें अध्याय मे धार्मिक स्थिति का स्पष्टीकरण किया गया है। अठारहवें अध्याय में १६वी और १७वी शताब्दी में गद्य-साहित्य और समाज पर विचार किया गया है। उन्नीसवा अध्याय उपसहार के रूप में लिखा गया है।

## १५४. सन्त सुन्दरदास

[१९५६ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे श्री महेशचन्द्र सिंघल का प्रवन्ध 'सन्त सुन्दरदास' पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत किया।

इस प्रवन्ध के पहले अध्याय मे सुन्दरदास की जीवन-सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री पर विचार करके उनके जीवनचरित पर प्रकाश डाला गया है और

उसके बाद उनके सम्प्रदाय की चर्चा की गयी है। दूसरे अध्याय मे सुन्दरदास के समय की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि परिस्थितियो का विवेचन किया गया है। तीसरे अध्याय मे सुन्दरदास के द्वारा प्रणीत कुल मिलाकर छोटे-बडे बयालीस ग्रन्थो का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। चौथे अध्याय मे सुन्दरदास के आध्यात्मिक विचारों की मीमासा है। उनके साहित्य मे प्रतिपादित ज्ञान, योग और भक्ति का विवेचन किया गया है। पाचवें अध्याय मे अवतार, देवता, स्वर्ग-नरक आदि से सबध रखने वाले मतो के ( सुन्दरदास द्वारा किये गये ) खडन का निरूपण है। छठे अध्याय मे सुन्दरददास के गुरु, सत्य, झूठ, वैराग्य आदि विषयक उपदेशो का विवेचन है। सातवें अध्याय में सुन्दरदास की भाषा और उस पर पडने वाले राजस्थानी, सस्कृत, अपभ्रंश, खड़ीबोली, पजाबी, गुजराती तथा फारसी के प्रभावो की समीक्षा की गयी है। आठवें अध्याय मे सुन्दरदास की शैली का विवेचन है। नवें अध्याय मे उनके काव्य मे अभिव्यक्त रसो और भावो की, दसवें मे शब्दालकारो और अर्थालकारो की तथा ग्यारहवें अध्याय मे उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दो की आलोचना की गयी है। बारहवें अध्याय में उनके व्यक्तित्व की कतिपय विशेषताओ ( पाडित्य, अनुभव, मौलिकता आदि ) का उद्घाटन किया गया है। तेरहवें अध्याय मे कबीर, दादू और सुन्दरदास का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अन्तिम अध्याय मे सुन्दरदास के काव्य का मूल्याकन है।

## १५५. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन

[१९५६ ई०]

प० विनयमोहन शर्मा को उनके प्रबन्ध 'हिदी को मराठी सन्तो की देन' पर सन् १९५६ ई० मे नागपुर विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इस प्रबन्ध को इसी नाम से बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, ने सन् १९५७ ई० मे प्रकाशित किया।

प्रबन्ध का उद्देश्य दक्षिणापथ के मराठी सन्तो द्वारा की गयी हिन्दी-सेवा का महत्वाकन करना है। इस प्रबन्ध मे आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे हिन्दी और मराठी भाषाओ के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना की गयी है। दोनो के मूल स्रोत की चर्चा करते हुए हिन्दी की उपबोलियो और मराठी के परस्पर

सम्वन्ध पर सोदाहरण प्रकाश डाला गया है। साथ ही हिन्दी और मराठी ने परस्पर एक दूसरे को कितना और किस रूप मे प्रभावित किया है, इसका भी निर्देश किया गया है।

दूसरे अध्याय मे दक्षिणापथ मे हिन्दी के सचार का व्यापक विवेचन है। लेखक यह नही मानता कि मुसलमानो के ससर्ग से दक्षिण मे हिन्दी का प्रवेश हुआ। उसका विचार है कि राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक आदि अनेक कारणो से मुसलमानो के दक्षिण-प्रवेश से पूर्व ही हिन्दी वहा की प्रादेशिक भाषा वन चुकी थी। हा, इतना अवश्य है कि मुसलमानो के शासन से दक्षिण मे हिन्दी की एक शैली ( दक्खिनी हिन्दी ) का प्रादुर्भाव हुआ, और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी का प्रचार हुआ।

तीसरे अध्याय मे महाराष्ट्र के प्रमुख सन्त-सम्प्रदायो ( नाथ, महानुभाव, वारकरी, दत्त और समर्थ ) का सिंहावलोकन किया गया है जिससे साम्प्रदायिक-विचार-प्रचुर सन्तवाणियो को समझने मे सुविधा हो सके।

चौथे अध्याय मे दक्षिण मे मुसलमानो के आक्रमण से पूर्व यादवकालीन सन्तो की हिन्दीवाणियो का अध्ययन किया गया है। चक्रधर, महदायिसा, दामोदर पडित, ज्ञानेश्वर और मुक्तावाई के सक्षिप्त परिचय के साथ उनके हिन्दी-पदो पर विचार किया गया है। यह अध्ययन वारहवी से लेकर चौदहवी शती तक दक्षिण मे प्रचलित हिन्दी के अध्ययन मे विशेष सहायक हैं। इसी काल मे हिन्दी की पदशैली के विकास के प्रमाण मिलते हैं।

पाचवें अध्याय मे महाराष्ट्र के मुसलमानकालीन नामदेव, त्रिलोचन, सेना, एकनाथ, जनजसवन्त आदि सन्तो के हिन्दी-पदो पर विचार किया गया है। लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि नामदेव ही उत्तर भारत मे निर्गुण भक्ति के प्रथम उन्नायक थे। मराठी सन्त जनजसवन्त गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य थे। इससे लेखक का अनुमान है कि दक्षिण मे भी तुलसी की शिष्य-परम्परा रही होगी। इस काल की अन्य अवेक्षणीय विशेषताएँ हैं सन्त भानुदास के पदो मे प्रतिपादित बालकृष्ण-लीला और सन्त एकनाथ के व्यग्य-काव्य भारुडो का सर्जन।

छठे अध्याय मे शिवाजीकालीन प्रमुख मराठी सन्तो तुकाराम, रामदास, कल्याणस्वामी, रगनाथ, केशवस्वामी आदि के पदो पर विचार किया गया है। इस अध्याय मे तुकाराम की 'अस्सल गाथा' के आधार पर तत्कालीन व्यावहारिक हिन्दी-भाषा के रूप की विवेचना करते हुए लेखक ने सिद्ध किया है कि हिन्दी का किंचित् परिवर्तन के साथ प्राय वही रूप आज भी प्रचलित है। लेखक ने

उसे 'मराठी हिन्दी' की सज्ञा दी है।

सातवें अध्याय मे पेशवा और पेशवा-उत्तर काल के मध्य मुनीश्वर शिवदिन केसरी, अमृतराय, देवनाथ, दयालनाथ, गुरावराव आदि सन्तो के जीवन और कर्तृत्व पर प्रकाश डाला गया है। इन सन्तो की भाषा मे अरबी-फारसी के शब्दो का प्राचुर्य है, भावो मे सूफियाना रग भी है।

आठवें अध्याय मे मराठी सन्तो द्वारा प्रयुक्त छन्दो और काव्य प्रकार ( ओवी, अभग, भारुड, आरुढ आदि ) की चर्चा है। सन्त कवियो के पद स्वच्छन्द हैं। परिशिष्ट मे कुछ सन्तो की वाणिया सकलित हैं। लेखक ने उन्हे प्राचीन पाडुलिपियो से सकलित किया है।

## १५६. भक्तिकालीन हिन्दी-कविता में दार्शनिक प्रवृत्तियां—रामभक्ति शाखा

[१९५६ ई०]

श्री रामनिरजन पाडेय को उनके प्रबन्ध 'भक्तिकालीन हिंदी-कविता मे दार्शनिक प्रवृत्तिया—रामभक्ति-शाखा' पर नागपुर विश्वविद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध अभी अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रबन्ध ग्यारह अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे रामभक्ति-शाखा की पूर्वपीठिका निर्दिष्ट की गयी है। इस अध्याय मे गोस्वामी तुलसीदास के समय की कुछ पूर्व प्रचलित परम्पराओ तथा उनमे वर्णित रामभक्ति आदि प्रवृत्तियो का अनुशीलन किया गया है। अथर्ववेद से लेकर रामानुज और रामानन्द तक के विचारको की साधना-पद्धति पर विचार किया गया है। अगदास तथा कील्हदास आदि कवियो की भी सक्षिप्त चर्चा की गयी है।

दूसरे अध्याय मे सर्वप्रथम रामभक्त कवि तुलसीदास के जीवन-दर्शन का उपस्थापन किया गया है। इस अध्याय मे तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के प्रथम सोपान मे प्रतिपादित 'विमल सन्तोष' का विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। तीसरे अध्याय मे 'रामचरितमानस' के द्वितीय सोपान मे प्रतिपादित 'विमल विज्ञान वैराग्य' पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

चौथे अध्याय का प्रतिपाद्य 'रामचरितमानस' के तृतीय सोपान मे तुलसीदास द्वारा निरूपित 'विमल वैराग्य' है। पाचवे अध्याय मे विशुद्ध-सन्तोषमय जीवन का स्वरूप-निरूपण है। जीवन के विविध पक्षो पर विशुद्ध-सन्तोष का क्या प्रभाव पडता है, इसका भी दिग्दर्शन कराया गया है। सामाजिक और दार्शनिक मर्यादाओ, परमार्थ आदि पर विशुद्धसन्तोष के प्रभाव का आकलन किया गया है। इस अध्याय के अध्ययन का आधार 'रामचरितमानस' का 'विशुद्धसन्तोषसम्पादनो नाम' चतुर्थ सोपान है। छठे अध्याय मे 'मानस' के पचम सोपान मे प्रतिपादित 'विमल ज्ञान' और सातवे अध्याय मे 'मानस' के षष्ठ सोपान मे प्रतिपादित 'विमल विज्ञान' का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार आठवे अध्याय मे, 'मानस' के सप्तम सोपान मे उपस्थापित 'अविरल हरिभक्ति' का पर्यालोचन किया गया है।

नवे अध्याय मे तुलसीदास की अन्य कृतियो का अनुशीलन किया गया है। दसवें अध्याय मे विभिन्न प्रकरणो के अन्तर्गत डा० निकल का खण्डन किया गया है तथा तुलसी-साहित्य मे साभिप्राय विशेषण की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

ग्यारहवे अध्याय मे तुलसीदास के अतिरिक्त रामभक्ति-शाखा के अन्य भक्तिकालीन साहित्यिको का विवेचन है। इस क्रम के अन्तर्गत स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचन्द चौहान, हृदयराम, केशवदास, रहीम, सेनापति, बाबा रामचरणदास और जीवाराम जी के साहित्य का सक्षिप्त अध्ययन किया गया है।

## १५७. मालवी लोकगीत

[१९५६ ई०]

नागपुर विश्वविद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे श्री चिन्तामणि उपाध्याय को उनके प्रबन्ध 'मालवी लोकगीत' पर पी-एच० डी० की उपाधि दी।

## १५८. चरनदास, सुन्दरदास और मलूकदास के दार्शनिक विचारों का अध्ययन

[१९५६ ई०]

डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित का प्रवन्ध 'मलूकदास, सुन्दरदास और चरनदास के दार्शनिक विचारो का अध्ययन' सन् १९५६ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की डी० लिट० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रवन्ध मे आठ अध्याय हैं। सर्वप्रथम उपक्रम मे भारतीय दर्शन की विचारधारा का सामान्य विवेचन है। पहले अध्याय का प्रतिपाद्य मलूकदास, सुन्दरदास और चरनदास का युग है। तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि परिस्थितियो का अनुशीलन करते हुए उन कवियो पर युग की प्रतिक्रिया का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे अध्याय मे सुन्दरदास और चरनदास के विषय मे पूर्वी तथा पश्चिमी विद्वानो के मतो का उल्लेख करते हुए दोनो कवियो का जीवनवृत्त दिया गया है। तीसरे अध्याय मे सुन्दरदास तथा चरनदास के साहित्य का परिशीलन है। सुन्दरदास के ग्रन्थो की सख्या तथा उपलब्ध ग्रन्थो की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। चरनदास के साहित्य का विषयानुसार विभाजन किया गया है और ग्रन्थो का परिचयात्मक विवरण दिया गया है।

चौथा अध्याय 'मलूकदास, सुन्दरदास तथा चरनदास की धार्मिक विचारधारा' है। निर्गुण ब्रह्म, नाम, सद्गुरु, सन्त, सत्य, आत्मा, माया, जगत्, शून्य, मन, विश्वास और ज्ञान आदि शीर्षको के अन्तर्गत इन कवियो की धार्मिक विचार-धारा का अध्ययन किया गया है। पाचवा अध्याय 'प्रवोधन' है जिसमे इन कवियो के विरहानुभूति, नारी, सूरमा, तृष्णा, दु ख और चेतावनी से सम्बद्ध विचारो की समीक्षा है।

छठे अध्याय मे मलूकदास, सुन्दरदास तथा चरनदास की रहस्यानुभूति का विवेचन है। रहस्यवाद व रहस्यवादी की परिभाषा, रहस्यवाद के प्रकार, रहस्यानुभूति का विकास, रहस्यानुभूति की विभिन्न स्थितिया इस अध्याय के अन्य प्रतिपाद्य हैं।

सातवें अध्याय 'मलूकदास, सुन्दरदास तथा चरनदास के आध्यात्मिक साधन' मे योग का महत्त्व एव परिभाषा निर्धारित करते हुए योगी के भेदो का उल्लेख किया गया है। मलूकदास के योग-विषयक ग्रन्थो का परिचय देते हुए उनके योग-

वर्णन के आधार का अनुसन्धान किया गया है। इसी प्रकार सुन्दरदास और चरनदास के योग-विषयक ग्रन्थो पर भी दृष्टिपात किया गया है। सुन्दरदास द्वारा वर्णित अनेक प्रकार के योगो का भी निरूपण है।

आठवा अध्याय 'दादूपन्थ एव चरनदासी पन्थ' है। परिशिष्ट मे मलूकदास का जीवनवृत्त, रचनाए तथा सुन्दरदास एव चरनदास की काव्य-दृष्टि पर विचार किया गया है।

## १५६. शिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका हिन्दी-काव्य

[१९५६ ई०]

श्री रामचन्द्र तिवारी को उनके प्रबन्ध 'शिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका हिन्दी-काव्य' पर लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

प्रस्तुत शोध-कृति मे उपर्युक्त सम्प्रदाय का ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, सास्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। पूरा अध्ययन आठ अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे निर्गुणधारा की सास्कृतिक पृष्ठभूमि उपस्थित की गयी है और प्रस्तुत सम्प्रदाय को भारतीय चिन्तन की क्रमिक विकास-शृखला की एक कडी के रूप मे देखा गया है। दूसरे अध्याय मे शिवनारायणी सम्प्रदाय से सम्बद्ध आधारभूत सामग्री की परीक्षा की गयी है। इसी अध्याय मे लेखक ने चन्दवार, ससना, बडसरी, रतसडपरसिया, गाजीपुर, कानपुर आदि सम्प्रदाय के प्रमुख धाम-घरो मे बिखरी हुई हस्तलिखित साम्प्रदायिक सामग्री की ऐतिहासिक परीक्षा करके सन्त शिवनारायण की प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।

तीसरे अध्याय मे सम्प्रदाय के अन्य प्रमुख सन्त कवियो के जीवन और कर्तृत्व का प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय की समस्त सामग्री लेखक के निजी खोज पर आधृत है। सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त कवियो मे रामनाथ साहब, लखनराम साहब, गेदाराम साहब, जुवराज और लेखराज उल्लेखनीय हैं। चौथे अध्याय मे सन्त शिवनारायण की रचनाओ का परिचय दिया गया है और उनकी प्रामाणिकता की जाच की गयी है। पाचवें अध्याय मे इस सम्प्रदाय का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रसग मे भारत मे

ाम्प्रदायिक भावना के विकास का सक्षिप्त इतिहास भी दिया गया है। इस ाध्याय मे सम्प्रदाय के स्वरूप और सगठन के अध्ययन के साथ ही उसके पर्वो, ग्रोहारो, सस्कारो और पूजा-प्रवृत्तियो का भी अध्ययन किया गया है।

छठे अध्याय मे सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तो, साधनाओ और धार्मिक श्वासो का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है। लेखक ने आवश्यकतानुसार पर्युक्त अध्ययन मे तुलनात्मक पद्धति का आधार भी ग्रहण किया है। सातवें ाध्याय मे सम्प्रदाय के सन्त कवियो के काव्य का कलात्मक मूल्याकन किया या है। लेखक का दावा है कि लोक-जीवन की सरल सरस अनुभूतियो की तनी मधुर अभिव्यक्ति कदाचित् ही किसी अन्य सन्त-सम्प्रदाय के कवियो ारा की गयी होगी। विशेषत 'सोहर' छन्द तो अपने सौष्ठव मे वेजोड हैं। ाठवें अध्याय मे सम्प्रदाय के कवियो की भाषा-शैली एव छन्दोयोजना पर विचार किया गया है। इन सन्तो के गीत तो भोजपुरी वोली मे हैं, किन्तु दोहा-चौपाई ा रचित कृतियो मे अवधी भाषा का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार इस कृति मे आठ अध्यायो के अन्तर्गत शिवनारायणी सम्प्रदाय का ूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। लेखक की दृष्टि मे इस सम्प्रदाय ी सबसे बडी आध्यात्मिक उपलब्धि 'सन्तदेश' की भावना की उद्भावना है। ान्त शिवनारायण के अनुसार काल और कर्म के बन्धनो से मुक्त होकर ससारी ीव अन्तत सन्तदेश मे पहुचकर 'वेलास' करता है। यह सन्तदेश मे वेलास की ावना वस्तुत. अद्वैतवादियो की 'मुक्ति', वौद्धो की 'निर्वाण', योगियो की 'समाधि', ौद्ध-सिद्धो की 'महासुह' और अवतारी पुरुषो के नित्यलोक की 'लीला-विलास' ी परम्परागत भावना का समन्वित विकास है। इस सम्प्रदाय के सभी कवियो ा सन्तदेश का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। सम्प्रदाय का पूरा सगठन ही ामन्वय की भावना से प्रेरित है।

## १६०. नाथपन्थ के हिन्दी-कवि

[१९५६ ई०]

श्री शान्तिप्रसाद चन्दोला का प्रवन्ध 'नाथपन्थ के हिन्दी-कवि' सन् १९५६ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत

प्रस्तुत प्रवन्ध छ अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे नाथ-परम्पर की भूमिका निर्दिष्ट है। नाथमत का वैशिष्ट्य बतलाते हुए शिव-शक्ति-योग सम्प्रदायो मे 'नाथ' शब्द का अनुसन्धान किया गया है। पुरातत्त्व तथा साहित्यिक सामग्री मे शिव-शक्ति-योग के सकेत और विवरण दिये गये है। विदेशी भाषाओ के भी एतद्विषयक विवरण दिये गये है और आदि नाथ आदि पर विचार किय गया है।

दूसरे अध्याय मे कुछ एक नाथसिद्धो की ऐतिहासिकता पर विचार किय गया है। इस क्रम मे मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, भर्तृहरि, हाजी बाबा, चर्पटनाथ नागार्जुन, कृष्णपाद, सत्यनाथ, अजयपाल आदि सिद्धो की ऐतिहासिकता क विवेचन किया गया है। तीसरा अध्याय 'नाथ-पन्थ' है। इस अध्याय मे नाथ पथ का विस्तृत परिचय दिया गया है। विभिन्न प्रकार के योगियो, पन्थ वे विविध सस्कारो, मठो और तीर्थस्थानो, वर्तमान नाथ-गद्दियो और उनके अधि कारियो आदि का अनुसन्धान प्रस्तुत किया गया है।

चौथे अध्याय 'दर्शन' मे पिडोत्पत्ति, जीव, जगत् और ईश्वर, परमपद पूर्णत्व अथवा शिवत्व, देहतत्त्व-विज्ञान, पिड-सवित्ति आदि शीर्षको के अन्तर्गत नाथ-पथ के दर्शन का उपस्थापन है। पाचवा अध्याय 'साधनाप्रणाली' है। इसमे पुरुषकार-तत्त्व की विवेचना है। सर्वाधिष्ठानरूप सद्गुरु और गुरुत्व नादानुसन्धान और नाथ की चार दशाओ आदि की व्याख्या तथा शून्य-साधन का अध्ययन है। कामसिद्धि का परिचय प्रस्तुत करते हुए वियोग और योग मार्ग पर प्रकाश डाला गया है। विन्दुयोग, वायुयोग, वनस्पतियोग, खेचर योग आदि का प्रतिपादन है। रसवाद तथा खेचरी तत्त्व की भी चर्चा की गयी है।

छठे अध्याय 'नाथवाणियो का साहित्यिक मूल्याकन' मे नाथ-सम्प्रदाय वे साहित्य की भाषा, छन्द, कथोपकथन-शैली और गद्य, सामाजिक चेतना, काव्या त्मकता, उलटवासी अथवा विपर्यय, रस-अलकार, मर्म की अभिव्यक्ति, रहस्यवाद आदि अनेक दृष्टियो से समीक्षा की गयी है। परिशिष्ट मे कुछ अप्रकाशित नाथ वाणिया सकलित है। आधारभूत सामग्री प्रस्तुत की गयी है तथा प्रमुख नाथ तीर्थों के मानचित्र दिये गये हैं।

## १६१ आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे गांधीवाद—एक अध्ययन

[१९५६ ई०]

कु० शकुन्तला वर्मा को उनके प्रवन्ध 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे गाधीवाद—एक अध्ययन' पर लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि मिली। यह प्रवन्ध अभी तक अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रवन्ध मे सात अध्याय हैं। विषय-प्रवेश मे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का दिग्दर्शन है। जिसमे महात्मा गाधी के पूर्व धार्मिक और राष्ट्रीय आन्दोलनो, भारतीय राष्ट्रीय महासभा के जन्म और विकास, महात्मा गाधी की जीवनी और उनके महासभा के साथ सहयोग की सक्षिप्त चर्चा की गयी है। पहले अध्याय मे निम्नाकित शीर्षकों के अन्तर्गत गाधीवाद का विश्लेपरण है

१ गाधीवाद के मुख्य सिद्धान्त, अहिंसा, अहिंसा का इतिहास, गाधीजी का अहिंसा-सिद्धान्त।

२. गाधीवाद का आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण, सत्य।

३ गाधीवाद के धार्मिक सिद्धान्त—रामनाम और प्रार्थना, उपवास, नैतिक दृष्टिकोण, सत्याग्रह।

४ गाधीवाद के सामाजिक सिद्धान्त—साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता, मद्य-निपेध, स्त्रियों का उन्नयन।

५ गाधीवाद के राजनैतिक सिद्धान्त—स्वतन्त्रता-आन्दोलन, असहयोग, सविनय अवज्ञा, रामराज्य भावना, पचायतराज, राष्ट्रीय ध्वज।

६ गाधीवाद के आर्थिक सिद्धान्त—गाधीवाद और समाजवाद, खादी और चरखा, गृह-उद्योगो का प्रसार, सहकारिता, शिक्षा-विपयक सिद्धान्त, भापा-साहित्य-सम्बन्धी विचार, ग्राम-सुधार।

दूसरे अध्याय मे गाधी-युग के पूर्व आधुनिक हिन्दी-साहित्य की रूपरेखा प्रस्तुत करके उसकी विकासकारिणी प्रगतिशील शक्तियो और उस पर पडने वाले गांधीवाद के प्रभावो का निरूपण है। तीसरे अध्याय मे आधुनिक हिन्दी-कविता मे अभिव्यक्त गाधीवादी विचारधारा का, पहले अध्याय मे वतलायी गयी विशेपताओ के आधार पर, अध्ययन किया गया है। चौथे अध्याय मे उपन्यास का सक्षिप्त विकास प्रदर्शित करके उसमे गाधीवादी विचारो की खोज की गयी है। पाचवें अध्याय मे उसी क्रम और दृष्टि से आधुनिक हिन्दी-कहानियो मे गाधीवाद के प्रभावो का आकलन है। छठे अध्याय मे नाटको का विकास-क्रम

दिखलाकर उन पर गाधीवादी अहिंसा, समाज-सुधार, ग्राम-सुधार आदि सम्बन्ध रखने वाले प्रभावो की विवेचना की गयी है। सातवे अध्याय मे हिन्दी साहित्य के अन्य रूपो (निबन्ध, आलोचना, जीवन-चरित और सामाजि साहित्य) पर पडने वाले गाधीवादी प्रभावो का अनुशीलन है।

## १६२. सूर की काव्यकला

[१९५६ ई०]

श्री मनमोहन गौतम को उनके प्रबन्ध 'सूर की काव्यकला' पर दिल्ल विश्वविद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इस नाम से इसका प्रकाशन हिन्दी-अनुसन्धान-परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ल की ओर से भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, ने सन् १९५६ ई० म किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात प्रकरणो मे विभक्त है। सर्वप्रथम पृष्ठभूमि के अन्तर्ग काव्य और कला के सम्बन्ध मे विभिन्न मतो की परीक्षा की गयी है। काव्य शिल्प के उपकरण तथा सूर की आधारभूमि की विवेचना की गयी है। सूर व ग्रन्थो तथा उनके वर्ण्य विषयो की भी निर्धारणा की गयी है।

पहला प्रकरण 'सूर का गीतिकाव्य' है। गीतिकाव्य का स्वरूप-निर्धार करने के अनन्तर सूर के गीतिकाव्य का वर्गीकरण किया गया है। सूर के गीति काव्य मे वस्तुगत आधार की गवेषणा की गयी है। प्रबन्धात्मक गीतात्मकत को स्पष्ट किया गया है। सूर के गीतिकाव्य का स्वरूप-विश्लेषण करते हु उनके गीतो के सहज गुणो का वर्णन किया गया है। दूसरे प्रकरण मे वर्ण योजना, वर्ण-सगीत, वर्ण-मैत्री, वर्ण-सगति, गुण (माधुर्य, प्रसाद, ओज) शब्द शक्ति, ध्वनि, चित्रणकला आदि के आधार पर सूर के अभिव्यजना-कौशल क विशद समीक्षा की गयी है।

तीसरे प्रकरण मे सूर की अप्रस्तुतयोजना और उक्तिवैचित्र्य पर विस्तार विचार किया गया है। इस विवेचन के उपरान्त अनुसन्धाता ने सर्वेक्षण द्वार कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। सूर ने अप्रस्तुतयोजना मे प्राय कवि-परम्परा का ही अनुसरण किया है, परन्तु कही-कही वे स्वतन्त्र भी हो गये हैं। उन्होने प्राय अलौकिक उपमानो का आश्रय लिया है। ग्रामीण उपमानो का प्रयोग सूर की

अपनी विशेषता है। अन्त मे, यह योजना रसोत्कर्ष मे साधक है या बाधक—इस पर भी विचार किया गया है।

चौथा प्रकरण 'सूर की भाषा' है। सबसे पहले ब्रजभाषा के स्वरूप-निर्माण के विकास मे सूर के योग का महत्वांकन किया गया है। इसके उपरान्त सूर की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भाषा के गुणो के साथ-साथ दोषो का भी वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। अन्त में दिखाया गया है कि भाषा पर सूर का पूर्ण अधिकार था।

पाचवे प्रकरण में सूर की पदरचना का अनुशीलन किया गया है। सूर न केवल कवि थे बल्कि सगीतज्ञ भी थे और इस सगीतात्मक मनोवृत्ति का उनकी पद-रचना पर गम्भीर प्रभाव पडा। इस प्रकरण में रागरागिनी-पद्धति के प्रकाश मे सूर के पदो का अवलोकन किया गया है, साथ ही इस पद-रचना के अन्तर्गत छन्द-विधान का भी अध्ययन किया गया है।

छठे प्रकरण मे सूर का कला पर पूर्ववर्ती कवियो की कला के प्रभाव का आकलन किया गया है। अपने परवर्ती अथवा समसामयिक कवियो पर सूर की काव्यकला का प्रभाव भी निरूपित किया गया है। इस प्रसग में भक्तिकाल से लेकर आधुनिक युग तक के ब्रजभाषा के अनेक कवियो का सूर से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सातवें प्रकरण में सूर की काव्यकला का मूल्यांकन किया गया है। परिशिष्ट में गीतिकाव्य की परम्परा विस्तार से प्रदर्शित की गयी है।

## १६३. हिन्दी-रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य

### [१९५६ ई०]

श्री सत्यदेव चौधरी का प्रबन्ध 'हिन्दी-रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य' सन् १९५६ ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, मे सन् १९५९ ई० मे प्रकाशित हुआ।

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्य-कवि, वर्ण्य विषय की दृष्टि से, तीन प्रकार के हैं—रसनिरूपक, अलकारनिरूपक और विविधकाव्यागनिरूपक। प्रस्तुत प्रबन्ध में अन्तिम प्रकार के आचार्यो को 'प्रमुख आचार्य' कहा गया है। और तद-

नुसार निम्नाकित पाँच आचार्यो का काव्यशास्त्रीय विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत किया गया है—चिन्तामणि, कुलपति, सोमनाथ, भिखारीदास तथा प्रतापसाहि ।

इस ग्रन्थ मे ग्यारह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय का नाम 'विषय-प्रवेश' है। इसमे सस्कृत-काव्यशास्त्र का सर्वेक्षण, उद्देश्य और निरूपणशैली की दृष्टि से रीतिकालीन हिन्दी-काव्यशास्त्र की सस्कृत-काव्यशास्त्र से तुलना, अनुसन्धेय विषय पर उपलब्ध सामग्री का विहगावलोकन, प्रस्तुत प्रबन्ध की आवश्यकता तथा उसकी विषयनिरूपण-प्रणाली, विशिष्टता एव मौलिकता, विवेच्य आचार्यो के उपलब्ध जीवनवृत्त और उनके ग्रन्थो के वर्ण्य विषय पर विचार किया गया है।

द्वितीय से दशम तक के अध्यायो मे विभिन्न काव्यागों को लक्ष्य मे रखकर उक्त पाँच आचार्यो द्वारा निरूपित सामग्री का विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्याय की पृष्ठभूमि के रूप मे सस्कृत आचार्यों द्वारा विवेचित काव्यागो का निरूपण भी किया गया है। इस प्रकार द्वितीय अध्याय मे काव्य के स्वरूप, हेतु और प्रयोजन का अध्ययन किया गया है। उसके बाद के अध्यायो मे शब्द-शक्ति, ध्वनि और गुणीभूतव्यग्य, रस, नायक-नायिका-भेद, दोष, गुण, रीति और अलकार की विवेचना की गयी है। इस अध्ययनक्रम मे यह भी दिखलाया गया है कि इन आचार्यों पर पूर्ववर्ती सस्कृत तथा हिन्दी आचार्यों का कहाँ तक प्रभाव पडा है। प्रत्येक आचार्य के प्रत्येक काव्यागनिरूपण के अन्त मे इन आचार्यो का तुलनात्मक सर्वेक्षण भी प्रस्तुत किया गया है।

अतिम अध्याय 'उपसहार' है जिसमे इन आचार्यों के विषय-विस्तार, मूल-स्रोत, निरूपण-पद्धति और मौलिक विवेचना पर विहगम दृष्टिपात करने के उपरान्त इनके पारस्परिक तुलनात्मक समवलोकन के आधार पर इन सबका मूल्याकन किया गया है। यदि हम इन आचार्यों की विशिष्टताए एक-एक वाक्य मे कहना चाहे तो, प्रबन्धकार के शब्दो मे, कह सकते हैं कि "चिन्तामणि की प्रवृत्ति अधिक सामग्री के सकलन की ओर है। कुलपति उल्था को सुबोध रूप मे प्रस्तुत करने मे निपुण हैं। सोमनाथ की प्रतिपादनशैली अत्यन्त सरल, सक्षिप्त और 'बालाना सुखबोधाय' है। दास मौलिकता की ओर अपेक्षाकृत अधिक बढे हैं। प्रतापसाहि 'व्यग्यार्थकौमुदी' मे जितने सफल कवि हैं, 'काव्य-विलास' मे वे उतने सफल आचार्य नही हैं।"

## १६४. राधावल्लभ सम्प्रदाय के सन्दर्भ मे हितहरिवंश का विशेष अध्ययन

[१९५६ ई०]

श्री विजयेन्द्र स्नातक को उनके शोध-प्रबन्ध 'राधावल्लभ सम्प्रदाय के सन्दर्भ मे हितहरिवश का विशेष अध्ययन' पर दिल्ली विश्वविद्यालय ने सन् १९५६ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। प्रस्तुत प्रबन्ध 'राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' के नाम से हिन्दी-अनुसन्धान-परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, के निमित्त नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, ने सन् १९५७ ई० मे प्रकाशित किया।

यह प्रबन्ध दो खडो मे विभक्त है। पूर्वार्द्ध (सिद्धात-खड) मे सात अध्याय हैं। पहले अध्याय मे पृष्ठभूमि के रूप मे वैष्णव धर्म और भक्ति के उदय का सिंहावलोकन किया गया है। वैदिक युग से लेकर मध्ययुग तक भक्ति के क्रमिक विकास पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे चतु सम्प्रदाय और राधावल्लभ सम्प्रदाय का अध्ययन किया गया है। माध्व या गौडीय और निम्बार्क सम्प्रदाय से राधावल्लभ सम्प्रदाय की पृथक्ता का निर्देश किया गया है। धार्मिक तथा साहित्यिक ग्रथो मे राधावल्लभ सम्प्रदाय के उल्लेख का विवेचन किया गया है। इस विषय मे हिन्दी-साहित्य के अनेक इतिहासकारो के मतो का उल्लेख भी किया गया है।

तीसरे अध्याय मे सम्प्रदाय-प्रवर्तक श्री हितहरिवश का अध्ययन है। उनकी जन्मकालीन सामाजिक, साहित्यिक और धार्मिक परिस्थितियो का पर्यालोचन करते हुए उनके जीवन के विषय मे विविध सूचनाए एकत्र की गयी हैं। चौथे अध्याय मे भक्ति-सिद्धान्त का विवेचन है। पाचवें अध्याय मे नित्य-विहार के विधायक तत्त्वो (राधा, कृष्ण, वृन्दावन और सहचरी) पर विचार किया गया है। इनमे से प्रत्येक तत्त्व की विशद ऐतिहासिक समीक्षा करते हुए राधावल्लभ सम्प्रदाय मे गृहीत उनके स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। छठे अध्याय मे भक्ति के बाह्य विधान [गद्दी-सेवा, नाम-सेवा, समाज, अष्टयाम-सेवा, साम्प्रदायिक नैमित्तिक उत्सव, तिलक और कठी] की चर्चा की गयी है और सातवें अध्याय मे रासलीला के स्वरूप और महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध [साहित्य खड] मे ग्यारह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे

## १६६. हिन्दी के पौराणिक नाटको का अध्ययन

[१९५६ ई०]

श्री देवर्षि सनाढ्य को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी के पौराणिक नाटको का अध्ययन' पर सन् १९५६ ई० मे अलीगढ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे उस पौराणिक कथा-साहित्य का सक्षिप्त परिचय कराया गया है जिसकी पृष्ठभूमि पर ये पौराणिक नाटक निर्मित हैं। 'पुराण' शब्द से गृहीत भाव, उनके निर्माण-काल मे सम्बन्ध रखने वाले मत, उनका मूल स्रोत और उनके विषय का उल्लेख किया गया है। तृतीय अध्याय मे प्रमुख हिन्दीतर भारतीय भाषाओ के पौराणिक नाटको की चर्चा की गयी है। हिन्दी के नाट्य-साहित्य का सबध बगला, मराठी गुजराती और उर्दू के नाटको से अधिक रहा है। इसलिए विशेषरूप से इन भाषाओ के मुख्य-मुख्य पौराणिक नाटको, उनके इतिहास और शैली एव शिल्प पर सक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। साथ ही कुछ अन्य भाषाओ के पौराणिक नाटको का सिंहावलोकन है। चतुर्थ अध्याय मे हिन्दी के प्रारम्भिक पौराणिक नाटको की चर्चा के साथ-साथ हिन्दी-नाटको के आरंभ मे पौराणिक कथा का योग एव उल्लिखित नाटको पर एक दृष्टि डालने का प्रयत्न किया गया है। भारतेन्दु-युग से पूर्व लिखे गए पौराणिक नाटको की चर्चा भी की गयी है। पचम अध्याय को हिन्दी के पौराणिक नाटको का प्रथम युग मानकर भारतेन्दु के नाटको से आरम्भ करते हुए १९११ ई० तक लिखे गये पौराणिक नाटको का उल्लेख किया गया है। षष्ठ अध्याय मे १९१२ ई० से १९३१ ई० तक लिखे गये पौराणिक नाटको का उल्लेख है। प्रारम्भ एव अन्त मे इस युग मे विभिन्न परिवर्तनो की चर्चा की गयी है। सप्तम अध्याय मे १९४४ ई० तक लिखे गये पौराणिक नाटको का विवरण है। यह तृतीय युग है। इस युग मे पौराणिक नाटको ने एक नवीन रूप पाया है। अष्टम अध्याय मे उन नाटको का उल्लेख है जो नाटक-सस्थाओ द्वारा प्रदर्शित होने के लिए लिखे गये हैं। नवम अध्याय मे सस्कृत, बगला, मराठी एव गुजराती भाषाओ से अनूदित नाटको का परिचय दिया गया है। दशम अध्याय मे हिन्दी के नाटको की शिल्प-विधि पर विचार किया गया है। इस अन्तिम अध्याय मे पौराणिक नाटको की कथावस्तु,

चरित-चित्रण, भाषा, कविता आदि का विवेचन करके पौराणिक नाटको की शिल्प-विधि पर हिन्दी मे प्राप्त मतो का भी उल्लेख किया गया है।

## १६७. कबीर की कृतियों के पाठ और समस्याओ का आलोचनात्मक अध्ययन

[१६५७ ई०]

श्री पारसनाथ तिवारी का शोध-प्रबन्ध 'कबीर की कृतियो के पाठ और समस्याओ का आलोचनात्मक अध्ययन' १६५७ ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे कबीर की रचनाओ की जितनी भी प्रतिया हस्तलिखित अथवा मुद्रित रूप मे प्राप्त हुई हैं और जो भी सामग्री टीका-टिप्पणियो के रूप मे प्राप्त हो सकी है, उनके माध्यम से कबीर की वाणी का प्रामाणिक और वैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित किया गया है।

विभिन्न हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियो मे कबीर के नाम से कुल मिलाकर लगभग सोलह सौ पद, साढे चार हजार साखियाँ और एक सौ चौंतीस रमैनिया मिलती हैं। इसके अतिरिक्त भी कबीर-कृत पदो और रचनाओ का एक विपुल भडार बतलाया जाता है। इन पदो की विपुलता के अतिरिक्त विभिन्न पद-पाठो के मिलान मे कठिनाई पडती है। प्रस्तुत सम्पादन में जिन प्रतियों का विस्तृत पाठ मिलान किया गया है उनमें से पद सात प्रतियो मे, साखिया नौ में और रमैनिया पाच प्रतियों मे मिलती हैं। इस प्रकार वह अश जो समस्त प्रतियो मे समान रूप से मिलता है सुगमता से मान्य कहा जा सकता है। लेकिन कबीर के पाठो मे समानता की दृष्टि से बडी विषमता पायी जाती है। इस प्रकार गन्तव्य स्थान तक पहुचने के लिए इस निरापद मार्ग का अनुकरण किया गया है कि विभिन्न प्रतियो का पाठ-सम्बन्ध स्थिर किया जाय और तदनन्तर उन्ही पाठियो को प्रामाणिक स्वीकृत किया जाय जो किन्हीं भी दो या अधिक ऐसी प्रतियो मे मिलती हैं जिनमे किसी प्रकार का सकीर्ण सम्बन्ध नही है अर्थात् जिनमे पाठ-सम्बन्धी ऐसी विकृतिया समान रूप मे नही पायी जाती जिनका आविर्भाव कवि के मूल पाठ के अनन्तर का सिद्ध होता हो और इसी आधार पर इन वाणियो का पाठ भी निर्धारित किया जाय।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे दो खड है। प्रथम खड मे सर्वप्रथम नाना सस्थाओ तथा व्यक्तिगत सग्रहो मे सुरक्षित हस्तलिखित प्रतियो तथा विभिन्न रूपान्तरो मे प्राप्त मुद्रित ग्रन्थो का सक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी प्रस्तुत सामग्री का विश्लेषण करके कबीर की तथाकथित रचनाओ से प्रमुख आधारभूत प्रतियो को पृथक् किया गया है। टीका-टिप्पणी आदि के रूप मे उपलब्ध सहायक सामग्री का भी निर्देश किया गया है जिससे पाठ-निर्धारण मे वास्तविक सहायता मिलती है। इसके पश्चात् सम्पादन के हेतु प्रमुख रूप से चुनी हुई प्रतियो का विस्तृत विवरण देते हुए पाठ-विकृतियो के आधार पर उनका पारस्परिक सकीर्ण सम्बन्ध स्थिर किया गया है और उनकी समस्त विशेषताओ को दृष्टि मे रखते हुए कबीर-वाणी की पाठ-परम्परा भी निर्धारित की गयी है। आगे इसी आधार पर कबीर-वाणी की प्रामाणिक रचनाओ की सख्या निर्दिष्ट कर उन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है जिनका प्रयोग वाणी के पाठ-निर्धारण मे हुआ है। एक पृथक् अध्याय मे रचनाओ के क्रम के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रतियो के साक्ष्यो की विवेचना करते हुए प्रस्तुत निबन्ध मे अपनाये जाने योग्य क्रम का निर्धारण किया गया है। अन्तिम अध्याय मे कुछ ऐसे स्थलो का निर्देश किया गया है जहा पर पाठ-निर्णय के उपर्युक्त सिद्धान्तो द्वारा पाठ-समस्या का समाधान न होते देखकर विशेष सशोधनो का प्रस्ताव किया गया है। द्वितीय खड मे उन पदो, रमैनियो और साखियो को सकलित कर उनका पाठ-निर्धारण किया गया है जो उपर्युक्त सिद्धान्तो के आधार पर निश्चित रूप से प्रमाणित सिद्ध हुए हैं।

परिशिष्ट मे अनुक्रमणिका, विकृति-सूची और सहायक साहित्य का महत्त्व-पूर्ण विशद सकलन है।

## १६८. मध्ययुगीन हिन्दी-काव्य में नारी-भावना (१५००-१७५० ई०)

[१९५७ ई०]

श्री० उषा पाडेय को सन् १९५७ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय से उनके प्रबन्ध 'मध्ययुगीन हिन्दी-काव्य मे नारी-भावना [१५००–१७५०]' पर डी० फ़िल० की उपाधि प्राप्त हुई।

आलोच्य काल [१५००–१७५० ई०] का समय भारत के राजनीतिक तथा सास्कृतिक इतिहास मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके प्रारम्भ का युग भक्तिकाल हिन्दी-साहित्य मे स्वर्ण-युग की सज्ञा से अभिहित होता है। आलोच्य काल का उत्तर भाग रीतिकाव्य का युग है, किन्तु इसका राजनीतिक और सास्कृतिक महत्व भी न्यून नही है। भारत के राजनीतिक इतिहास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि यह सक्रान्ति का युग है। इस समय मुग़ल शासन की केन्द्रीय दुर्बलता और परवर्ती शासको की शक्तिहीनता से विदेशी शक्तिया प्रवल हो रही थी। मध्ययुग समाप्त हो रहा था, आधुनिक युग की सीमा-रेखाए स्पष्ट हो रही थी।

आलोच्य काल की इन्ही विशेषताओ को दृष्टिपथ मे रखते हुए मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य की नारी-भावना का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। सम्पूर्ण प्रवन्ध के दो भाग हैं। प्रथम भाग मे पहले अध्याय 'पूर्वपीठिका' के अन्तर्गत आलोच्य काल से पूर्व की नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय मे इस्लाम से भारत का सम्पर्क, इस्लामी सस्कृति के सम्पर्क से प्रभावित आलोच्य काल की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो मे नारी की स्थिति का विवेचन किया गया है। इस्लाम ने भारतीय नारी के जीवन मे कोई मौलिक क्राति न प्रस्तुत करते हुए भी प्रत्यक्षत एव अप्रत्यक्षत उसे प्रभावित अवश्य किया है। भारतीय राजपूती सामन्तवाद से इस्लामी सस्कृतियो के सगम और उनकी सामन्तवादी परम्परा के योग ने किस प्रकार वैभव एव विलास की अतिशयता का ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया, जिसमे नारी का स्थान केवल विलास के एक उपकरण के रूप मे रहा, इस पर भी द्वितीय अध्याय मे विचार किया गया है।

सम्पूर्ण प्रवन्ध मे किये गये विवेचन के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुग का कवि सामान्य नारी को श्रद्धा एव आदर की दृष्टि से नही देखता है। नारी-आदर्श के विषय मे उसकी निजगत व्याख्याए हैं। सन्तकाव्य से रीतिकाव्य की परिवर्तित होती हुई परिस्थितियो मे उद्भूत काव्य में सैद्धान्तिक मतभेद तथा व्यावहारिक विषमताए होने पर भी इस विषय मे एकरूपता है। सभी कवियो ने समवेत स्वर मे उसे कामवासना का मूल वताया तथा उसी रूप मे देखा है।

## १६६. हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पुराणो का प्रभाव
[१९५७ ई०]

कुमारी शशि अग्रवाल को सन् १९५७ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि मिली। उनके प्रबन्ध का विषय था 'हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पुराणो का प्रभाव'। यह प्रबन्ध अभी अप्रकाशित है। इसकी सामग्री आठ अध्यायो मे सकलित की गयी है। पहले अध्याय मे हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य को प्रभावित करने वाले तथा अन्य महापुराणो का परिचय दिया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध मे पार्जिटर, विल्सन आदि कतिपय प्रसिद्ध विद्वानो के विचारानुसार महापुराणो की सूची दी गयी है। कृष्णकाव्य को प्रभावित करने वाले वैष्णव पुराणो का परिचय अलग से दिया गया है तथा शैव और ब्राह्मण ग्रन्थो का अलग।

दूसरे अध्याय मे हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य का सक्षिप्त परिचय देते हुए १५०० ई० से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी कृष्णभक्त कवियो की जीवनी तथा काव्य पर सक्षेप मे प्रकाश डाला गया है। तीसरे अध्याय मे हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य की दार्शनिक विचारधारा पर पौराणिक काव्य के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के ब्रह्म, जीव, जगत्, राधा, रास और ब्रज-वृन्दावन के वर्णन मे पुराणो की दार्शनिक विचारधारा के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। दार्शनिक विवेचन मे वेदान्त तथा उपनिषदो के अध्ययन का भी आश्रय लिया गया है। चौथे अध्याय मे हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य की भक्ति और उस पर पुराणो की भक्ति के प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

पाचवें अध्याय मे राधा के आविर्भाव तथा सस्कृत-साहित्य, पौराणिक साहित्य और उपनिषदो आदि मे राधा के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। साथ ही भक्ति के विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायो मे राधा का जैसा स्वरूप है उसका भी उपलब्ध सामग्री के आधार पर अध्ययन किया गया है। छठे अध्याय में भगवान् विष्णु के विभिन्न अवतारो का अध्ययन किया गया है। पुराणो के चौबीस अवतारो के स्थान पर सूर ने केवल सत्रह अवतारो का वर्णन किया है। इस अध्याय मे इन सत्रह अवतारो के वर्णन पर पौराणिक प्रभाव का आकलन किया गया है।

सातवें अध्याय मे हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य मे जो सृष्टि-उत्पत्ति और

राजवशो का वर्णन किया गया है उस पर पौराणिक प्रभाव का अध्ययन किया गया है। आठवें अध्याय मे कृष्णभक्ति-काव्य पर पौराणिक काव्य के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इस प्रसग मे नददास के काव्य पर श्रीमद्भागवत के विशेष प्रभाव का अध्ययन हुआ है। परिशिष्ट भाग मे हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्यो, हिन्दी के सहायक ग्रन्थो, सस्कृत के सहायक ग्रन्थो, अग्रेजी के सहायक ग्रन्थो तथा पौराणिक साहित्य के ग्रन्थो की सूची दी गयी है।

## १७०. डिंगल-पद्यसाहित्य का अध्ययन

### [ १९५७ ई० ]

श्री जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव का प्रबन्ध 'डिंगल-पद्यसाहित्य का अध्ययन' सन् १९५७ ई० मे इलाहाबाद मे विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ अभी प्रकाशित नही हुआ। इस प्रबन्ध के भूमिका भाग मे डिंगल-साहित्य के सदर्भ मे उसके नामकरण, काल-विभाजन तथा सक्षिप्त इतिहास पर अध्यवसायपूर्ण प्रकाश डाला गया है। इसी प्रसग मे डिंगल-साहित्य का हिन्दी-साहित्य मे स्थान निरूपित किया गया है। साथ ही डिंगल साहित्य को हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत रखने मे हिन्दी-साहित्य तथा इसके इतिहास पर क्या प्रभाव पडता है इस पर भी विचार किया गया है।

सम्पूर्ण प्रबन्ध छः अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे नौ रचनाओ 'ढोला मारु रा दूहा', 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री', 'हाला झाला रा कुडलिया', 'वीर सतसई', 'छद राउ जैतसी रउ', 'वचनिका राठौड रतनसिह जीरी महसदानोत्तरी', 'रघुनाथ रूपक गीतारी', 'नीति मजरी' एव 'धवल पचीसी' का विषयानुसार आलोचनात्मक विवेचन कर डिंगल-साहित्य की श्रेष्ठता एव सपन्नता का प्रकाशन किया गया है। द्वितीय अध्याय मे डिंगल-पद्यसाहित्य मे उपलब्ध सामग्री का विषयानुसार विभाजन, प्रत्येक विषय का विवेचन एव प्रत्येक विषय की उपलब्ध रचनाओ का कालक्रम के अनुसार परिचय प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय मे डिंगल के अलकार-ग्रन्थो का परिचय, वैण सगाई तथा डिंगल मे प्रयुक्त अलकारो का उल्लेख और प्रथम अध्याय मे उल्लिखित नौ रचनाओ मे प्रयुक्त अलकारो का निदर्शन है। चतुर्थ अध्याय मे छद-सम्बन्धी

रचनाओ का उल्लेख, नवीन एव मौलिक छन्दो के नाम तथा विशिष्ट छन्द परिचय और प्रथम अध्याय मे उल्लिखित नौ रचनाओ मे प्रयुक्त छदो की व है। पचम अध्याय मे डिंगल भाषा का अभ्युदय, विकास एव प्रत्येक काल प्रमुख विशेषताओ का निरूपण तथा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से शा विवेचन है।

षष्ठ अध्याय मे ऐतिहासिक सामग्री के मूल्याकन के आधुनिक दृष्टिको प्रकाश डालते हुए छ रचनाओ 'राज जैतसो रो छन्द', 'विरह छिय 'वचनिका राठौड रतनसिह जी री', 'राय रूपक', 'विरह सिगार' और प्रकाश' मे प्राप्त सामग्री का परीक्षण किया गया है। परिशिष्ट भाग मे ि साहित्य के प्रकाशित व अप्रकाशित ग्रथो, सहायक ग्रथो और पत्र-पत्रिकाओ निबन्धो का विवरण है।

## १७१. ब्रजबुली

[१९५७ ई०]

सुश्री कनिका विश्वास को सन् १९५७ ई० मे हिन्दू विश्वविद्यालय, ने 'ब्रजबुली' का अध्ययन प्रस्तुत करने पर पी-एच० डी० की उपाधि की।

## १७२. आधुनिक आलोचना की प्रवृत्तियाँ

[१९५७ ई०]

श्री रामदरश मिश्र को उनके प्रबन्ध 'आधुनिक आलोचना की प्रवृ पर सन् १९५७ ई० मे हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, से पी-एच० डी० की र प्राप्त हुई।

# १७३. कविसमय-मीमांसा

## [१९५७ ई०]

श्री विष्णुस्वरूप को उनके शोध-प्रबन्ध 'कविसमय-मीमासा' पर सन् १९५७ ई० मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे पी-एच० डी० की उपाधि मिली। प्रबन्ध के आरम्भ मे प्रस्तावना है जिसमे विषय के महत्त्व, सीमा-विस्तार, इस क्षेत्र मे अब तक किये गये कार्य और प्रस्तुत अध्ययन के लक्ष्य एव अनुसधान-प्रणाली का उपस्थापन किया गया है।

मुख्य प्रबन्ध दो खडो मे विभाजित है। प्रथम खड मे सैद्धान्तिक पक्ष 'कवि समय के स्वरूप' का निरूपण है। सस्कृत-काव्य शास्त्रियो द्वारा प्रयुक्त 'कवि-समय' शब्द तथा इसके पर्यायवाची 'काव्यसमय', कविसम्प्रदाय' 'कविमत' आदि शब्दो की व्याख्या की गयी है। 'कविसमय' के प्रमुख लक्षणो (कवियो द्वारा उपनिबद्ध अर्थ, अशास्त्रीय और अलौकिक अर्थ-निबन्धन, तथा परम्परायात अर्थनिबन्धन) की विवेचना की गयी है। 'कविसमय' की मुख्य प्रवृत्तियो (असत्-निबन्धन, सत्-निबन्धन एव नियम-निबन्धन) तथा उपप्रवृत्तियो का व्याख्यान करके यह बतलाया गया है कि 'कविसमय' मे गृहीत वस्तु नितात अस्तित्वहीन अथवा काल्पनिक नही होती, 'कविसमय' का मूल उद्देश्य वस्तु को चारुत्व से मडित करना है। खड के अन्त मे काव्यशास्त्र मे 'कविसमय' का स्थान निर्धारित करते हुए उसके पाच रूपों की चर्चा की गयी है—कविशिक्षा रूप, अलकार-साधन रूप, दोषापहार एव गुणत्व रूप, ध्वनिव्यजना रूप और औचित्य रूप।

द्वितीय खण्ड मे 'कविसमय' के व्यावहारिक पक्ष 'कविप्रसिद्धियों' का अध्ययन है। 'वनस्पति-वर्ग' के अन्तर्गत पद्म, नीलोत्पल, कुन्द, मालती, शेफालिका, भूर्जपत्र, चन्दन, वृक्षदोहद, प्रियगु, बकुल, अशोक, तिलक, कुरवक, मन्दार, चम्पक, सहकार और कर्णिकार से सम्बद्ध, 'पक्षिवर्ग' के अन्तर्गत हस, मयूर, कोकिल, चक्रवाक, चकोर और चातक से सम्बन्ध रखने वाली, 'रत्नवर्ग' के अन्तर्गत सुवर्णरत्नादि और मोती विषयक, 'वारिवर्ग' के अन्तर्गत समुद्र, मकर और शेवाल सम्बन्धिनी, 'आकाशवर्ग' के अन्तर्गत ज्योत्स्ना और तिमिर सम्बन्धिनी, 'वर्णवर्ग' के अन्तर्गत शुक्ल गौर, पीतरक्त, नील-हरित-कृष्ण और आखो के रग सम्बन्धिनी, 'सख्यावर्ग' के अन्तर्गत भुवन, समुद्र, दिशा, विद्या और शृगार सम्बन्धिनी, 'स्वर्ग्यवर्ग' के अन्तर्गत नारायण, लक्ष्मी, आदित्य, चन्द्रमा और कामदेव सम्बन्धिनी, 'पातालीयवर्ग' के अन्तर्गत दैत्य-दानव-असुर

श्रौर नाग-सर्पसम्बन्धिनी तथा खण्ड के अन्त मे कतिपय सकीर्ण कवि-प्रसिद्धियो का अध्ययन किया गया है।

उपसहार मे हिन्दी-काव्य मे 'कविसमय' की स्थिति का निदर्शन है। परिशिष्ट मे लक्षण-ग्रन्थो से 'कविसमय' के विवेचनपरक अशो के उद्धरण एव प्रसिद्ध उपमान भी दे दिये गये है।

## १७४. हिन्दी में गद्यकाव्य का विकास

[१९५७ ई०]

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ने श्री अष्टभुजा प्रसाद पाडेय को उनके प्रबन्ध हिन्दी मे गद्यकाव्य का विकास' पर सन् १९५७ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

## १७५. सूर-पूर्व की ब्रजभाषा

[१९५७ ई०]

श्री शिवप्रसाद सिंह का प्रबन्ध 'सूरपूर्व की ब्रजभाषा' सन् १९५७ ई० मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत हुआ। हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, ने इसका प्रकाशन 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' नाम से किया है।

यह प्रबन्ध ग्यारह परिच्छेदो मे विभक्त है। 'प्रास्ताविक' नामक पहले परिच्छेद में ब्रजभाषा के उदय-काल के सम्बन्ध मे विभिन्न विद्वानो की धारणाओ, प्रस्तुतविषय-सम्बन्धी कार्य, आदिकालीन तथा भक्तिकालीन काव्य की पृष्ठभूमि, विषय की आधारभूत सामग्री और उसके पुनर्निरीक्षण आदि की चर्चा करके साहित्यिक प्रवृत्तियो और काव्यरूपो के अध्ययन के लिए दसवी से सोलहवी शताब्दी के व्रज-साहित्य के अनुसन्धान की आवश्यकता बतलायी गयी है।

दूसरे परिच्छेद मे ब्रजभाषा के रिक्थ के रूप मे मध्यदेशीय भारतीय आर्य-

भाषा के विकास और विशेषताओ का भाषावैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तीसरे परिच्छेद मे व्रजभाषा के उद्गम शौरसेनी अपभ्रंश (वि० १०००-१२००) का अध्ययन करके सूरदास की भाषा से इस भाषा का पूर्वापर-सम्बन्ध निरूपित किया गया है। चौथे परिच्छेद मे ग्राम्य अपभ्रंश, नागर अपभ्रंश, पिंगल, डिंगल, अवहट्ठ आदि का विवेचन करके सक्रान्तिकालीन आरम्भिक व्रजभाषा ( वि० १२००-१४०० ) का ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है। पाचवें परिच्छेद मे यह प्रतिपादित किया गया है कि औक्तिक व्रज से उसके परिनिष्ठित रूप का निर्माण हुआ (वि० १४००-१६००)। इस परिच्छेद मे तत्कालीन अप्रकाशित सामग्री का परिचय और परीक्षण भी है। प्रद्युम्नचरित (वि० १४११), हरिचन्द पुराण वि० १४५३), लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा (वि० १५६१), डूगर बावनी (वि० १५३८), वेतालपचीसी (वि० १५४६), छिताई वार्ता (वि० १५५०) गीता भाषा (वि० १५५७), मधुमालती कथा (वि० १५५७) आदि की समीक्षा है।

छठे परिच्छेद मे 'गुरुग्रन्थ' मे उल्लिखित व्रजकवियो (नामदेव, त्रिलोचन, वेनी, रामानन्द, कबीर, रैदास, पीपा, धन्ना और नानक) का अध्ययन है। सातवें परिच्छेद मे अन्य कवियो (हरिदास निरजनी, निम्बार्क-सम्प्रदाय के कवियों, नरहरि भट्ट, मीरा, खुसरो, बैजू बावरा आदि) का अनुशीलन है। परिच्छेद के अन्त मे हिन्दीतर प्रान्तो के व्रजभाषा-कवियो की विवेचना है। आठवे परिच्छेद मे तेरह शिलालेखो (१४ वी से १६ वी शती) के आधार पर प्राचीन व्रजभाषा के स्वरूप का विवेचन किया गया है। नवें परिच्छेद मे व्रजकाव्य की मूल प्रवृत्तियो (भक्ति, शौर्य, शृगार, नीति) की समीक्षा है। दसवें परिच्छेद मे आरम्भिक व्रजभाषा काव्यरूपो (चरितकाव्य, कथाकाव्य, लीलाकाव्य, षड्ऋतु और बारहमासा, वेलिकाव्य, बावनी, विप्रमतीसी, गेय मुक्तक और मगलकाव्य ) का अध्ययन है।

'उपसहार' नामक ग्यारहवें परिच्छेद मे भाषा और साहित्य के उपर्युक्त विवेचन से प्राप्त निष्कर्षों तथा उपलब्धियो का उपस्थापन है। परिशिष्ट मे चौदहवी से सोलहवी शती वि० में लिखी गयी रचनाओ के हस्तलेखो से उद्धृत अश भी दे दिये गये हैं।

# १७६. हिन्दी की निर्गुणमार्गी काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि

[१९५७ ई०]

डा० गोविन्द त्रिगुणायत का प्रवन्ध 'हिन्दी की निर्गुणमार्गी काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि' सन् १९५७ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रवन्ध नौ अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम चार अध्यायो मे विषय का सामान्य परिचय देते हुए दार्शनिक और साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि का निर्माण किया गया है। अन्तिम पाच अध्यायो मे निर्गुणकाव्य-धारा की प्रवृत्तियो का विश्लेषण करके उनके स्वरूप की व्याख्या की गयी है। प्रथम अध्याय 'विषय-प्रवेश' है। उसमे सर्वप्रथम भारत के सास्कृतिक विकास मे निर्गुणकाव्य-धारा के योग एव महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। 'अभिधान की सार्थकता' शीर्षक से *वैदिक और लौकिक साहित्य मे प्रयुक्त 'निर्गुण' शब्द का ऐतिहासिक अध्ययन* प्रस्तुत किया गया है। निर्गुणियो द्वारा स्वीकृत रूप का भी निदर्शन है। इसके बाद प्रस्तुत अध्ययन की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। चौदहवी से लेकर उन्नीसवी शती तक के प्रमुख निर्गुणियो (कवियो) के कालक्रम और जीवनवृत्त का निर्देश करते हुए तात्कालिक राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों एव घटनाओ का खोजपूर्ण उल्लेख करने के अनन्तर उनकी चिन्तना की समुचित पीठिका निर्दिष्ट की गयी है।

द्वितीय अध्याय मे हिन्दी की निर्गुणकाव्यधारा को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाली प्राचीन धार्मिक और दार्शनिक पद्धतियो का उल्लेख किया गया है। सन्तो पर पडे हुए श्रौत तथा औपनिषदिक प्रभावो का सविस्तार विवेचन है। सन्तो पर उपनिषदो के आत्मवाद का सर्वाधिक प्रभाव पडा था। सन्त लोग वैष्णवो की सदाचरण-प्रियता, सात्विकता, जन्मान्तरवाद प्रपत्तिभाव आदि से भी वहुत प्रभावित हुए थे। सन्तो ने षड्दर्शनो मे से वेदान्त के अतिरिक्त किसी के प्रति अपनी निष्ठा नही दिखलायी है, कारण, उनका अध्ययनपक्ष नितान्त दुर्वल था। वेदात का उन पर गम्भीर प्रभाव है। शकर के मायावाद, ज्ञानवाद और विवर्तवाद आदि ने उन्हें विशेष प्रभावित किया है। अद्वैत वेदान्त के प्रमुख ग्रन्थ 'गीता' के कर्मयोग तथा समत्वयोग आदि का भी सन्तो पर गम्भीर प्रभाव पडा है। सन्त लोगों पर शब्दाद्वैत का भी प्रभाव पडा था।

आलोचक के अनुसार कबीर आदि का 'शब्दसुरतियोग' शब्दाद्वैत के 'प्रणववाद' की ही परिणति है। सन्त कवि तान्त्रिको तथा नाथपथियो से भी प्रेरित हुए थे। नास्तिक दर्शनो मे सन्त कवि जैन और बौद्ध मतो से प्रभावित हुए थे। आचरण मे वे जैनमत से विशेष प्रभावित थे। सन्त लोग बौद्ध दर्शन की भाति बुद्धिवादी तथा प्रतिक्रियावादी थे। अनात्मवाद और नास्तिकवाद के अतिरिक्त वे बौद्धधर्म के प्राय सभी सिद्धान्तो से प्रभावित हुए थे। इस अध्याय मे इन सब प्रभावो का विश्लेषण किया गया है।

तृतीय अध्याय मे भी दार्शनिक पृष्ठभूमि की ही चर्चा की गयी है। इस अध्याय मे निर्गुणकाव्यधारा को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले धार्मिक और दार्शनिक सम्प्रदायो की चर्चा की गयी है। तन्त्रमत की शैव, शाक्त और बौद्ध नामक लुप्तप्राय शाखाओ ने सन्तो की विचारधारा को सर्वाधिक प्रभावित किया था। इन दोनो शाखाओ का प्रामाणिक परिचय और सन्तमत पर उनके प्रभाव का सम्यक् निरूपण इस अध्याय मे किया गया है। इसके पूर्व ही पृष्ठभूमि के रूप मे अप्रत्यक्ष रूप से सन्त कवियो की विचारधारा को प्रभावित करने वाली शैवदर्शन-पद्धतियो का प्रभाव निर्दिष्ट किया गया है। शैव-शाक्त तन्त्रो के साम्यवाद, वाह्याचार-विरोध, भुक्ति-मुक्ति की समरसता के ज्ञान का महत्व, रहस्यवाद एव अध्यात्मचिन्तन आदि तथा बौद्ध तान्त्रिको के धर्मग्रन्थो की समानता, सहजावस्था की धारणा, शून्यवाद, नाद-विन्दु-साधना एव योगसाधना आदि अनेक तत्वो के प्रभाव-निरूपण द्वारा निर्गुणकाव्यधारा की दार्शनिक पृष्ठभूमि का स्पष्टीकरण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि का निर्माण किया गया है। इसमे मध्यकालीन देशी-विदेशी साधु-परम्पराओ और उनके प्रभाव का विवेचन किया गया है। कापालिक, कालमुख, लकुलीश, नाथपथी, दक्षिण के तामिल शैव सन्त आदि अनेक साधुवर्गों की प्रवृत्तियो की व्याख्या की गयी है। इसके अनन्तर अक्रियावादी, उच्छेदवादी, अकृततावादी, चतुर्यामसवरवादी, आजीवक बौद्ध और जैन आदि नास्तिक ब्राह्मणेतर साधु-परम्पराओ और उनके प्रभाव का उल्लेख किया गया है। अन्त मे मध्ययुगीन साधु-सन्त-परम्पराओ को स्पष्ट करके निर्गुणकाव्यधारा के सन्तो से उनका सबन्ध-निर्देश किया गया है।

पाचवे और छठे अध्याय अध्यात्म-चिन्तन से सम्बद्ध हैं। सन्तो के आध्यात्मिक विचारो के मूल, उनकी अनुभूति का स्वरूप-निरूपण तथा ब्रह्म के लिए सन्तो द्वारा प्रयुक्त अभिधानो की व्याख्या की गयी है। तत्पश्चात् उनके ब्रह्म-निरूपण तथा उस पर ज्ञान, भक्ति और योग के प्रभाव का विवेचन है।

इसके वाद मायावाद के ऐतिहासिक विकासक्रम के प्रकाश मे सन्तो की जीव सम्वन्धी धारणाओ का निदर्शन किया गया है। तत्पश्चात् जगत्-सम्वन्धं सन्त-धारणाओ का स्पष्टीकरण किया गया है। मोक्ष-सम्वन्धी धारणाओ पर भी प्रकाश डाला गया है। अन्त मे सन्तो की दार्शनिक पद्धति की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

सातवें अध्याय मे सन्तो की रहस्य और सहज साधनाओ का स्पष्टीकरण किया गया है। उनके साम्यवाद और सामाजिक सुधारो पर विचार किया गया है। आठवें अध्याय मे सन्तवाणी की अभिव्यक्ति और साहित्यिकता पर विचार किया गया है। सन्तो के काव्य का प्राण 'आत्मरस' सिद्ध किया गया है। सन्तो की शैलियो के भेद-प्रभेदो की छानवीन की गयी है। भाषा, प्रतीक, छन्द, सगीत आदि की विस्तृत समीक्षा की गयी है।

नवा अध्याय उपसहार है। विविध प्रेरणाओ और परिस्थितियो के वीच उदित एव विकसित सन्तमन की प्रमुख प्रवृत्तियो और चेतनाओ की समीक्षा की गयी है। परिशिष्ट मे सन्तो की पारिभाषिक शब्दावली का ऐतिहासिक विकास-क्रम दिया गया है।

## १७७. मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य के प्रेमगाथाकाव्य और भक्तिकाव्य मे लोकवार्ता-तत्व

[१९५७ ई०]

डा० सत्येन्द्र का प्रबन्ध 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की प्रेलगाथाओ और भक्तिकाव्य मे लोकवार्ता-तत्त्व' सन् १९५७ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। उसकी रूपरेखा इस प्रकार है —

अध्याय १ पूर्व पीठिका—लोकवार्ता—मूल्य—लोकगीत के मूल तत्त्व—लोक-गीत-साहित्य—लोकगीतो के विविध प्रकार—साहित्य पर लोकगीत का क्यो और कव प्रभाव पडता है—विश्व का लोकगीत साहित्य और उसकी शाखाए—भारत भारत की लोकगीत-प्रवृत्तियो का आकलन—इसमे हिन्दी-क्षेत्र का स्थान—हिन्दी साहित्य के विकास की लोकगीत-पृष्ठभूमि वौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध, सहजिया, वैष्णव, शैव आदि, विभिन्न सम्प्रदाय तथा ऐसे तत्त्व और लोकगीत—

—हिन्दी-साहित्य के विकास मे उनका योगदान—हिन्दी-साहित्य का सूत्रपात —वीरगाथाकाल—भक्ति एव प्रेमगाथा काल मे परिणति—लोकतत्त्व का उत्थान ।

**अध्याय २ :** प्रेमगाथा काव्य—प्रेमगाथाए—उनकी मूलवर्ती कथाए—इन कथाओ का विश्लेपरण—वैदिक, बौद्ध, ब्राह्मरण, जैन-साहित्यो एव युगो से वर्तमान समय तक इन कथाओं के विविध अभिप्रायों का ऐतिहासिक विकास—इन कथाओ की पौराणिक एव लोकगीतात्मक विशेषताए—बौद्ध एव जैन परपरागत कथाए—हिन्दी लोक-कथाओ और उनकी कला के प्रति धर्म एव धर्मेतर तत्वो का योगदान—उनका प्रभाव ।

**अध्याय ३** निर्गुणभक्ति-काव्य—निर्गुणसम्प्रदाय के काव्य का वस्तुतत्त्व —विभिन्न दार्शनिक अवधारणाए—ब्रह्म, माया, सहज आदि, उनका उद्भव तथा इन धाराओ मे विकास, १ ज्ञानमूल दर्शन की धारा, २ इतर प्रभाव की धारा, ३ लोकविश्वास की धारा—निर्गुणसम्प्रदाय के दर्शन की उपर्युक्त लोकशैली को प्रभावित करने मे इनका योगदान—भक्तिमूलक प्रतीकवाद, उसकी लोकतात्विक विशेषताए—रूपविधान—उनका उद्भव—भाषा—उसकी प्रकृति ।

**अध्याय ४** सगुणभक्ति-काव्य कृष्णभक्ति-सम्प्रदाय—कृष्ण—एक भव्य पौराणिक व्यक्तित्व—उसका मूलस्वरूप और विकास—कृष्ण-कथा के विकास के विभिन्न युग—उसके विकास मे लोकतत्त्वो का योगदान—भागवत में उसका चरम स्वरूप—लोकदेवता एव लोकप्रचलित कथाओ की पुराणकथाओं के रूप मे परिणति—लोकगीत-तत्त्व—परवर्ती लोकप्रचलित कथा की पुराणकथा मे परिणति—उसमें लोकगीत-तत्त्व—भागवत और सूरदास —सूरदास मे नये अभिप्रायो का उद्भव—परवर्ती कृष्णकाव्य और लोकतत्त्व—लोककला की प्रमुखता के कारण—वस्तुतत्व और स्वरूपविधान ।

**अध्याय ५** सगुणभक्ति-काव्य रामभक्ति-सम्प्रदाय—राम—एक महान् पौराणिक व्यक्तित्व—उसका मूलस्वरूप विभिन्न अभिप्रायो का विश्लेपरण—वस्तुतत्व, अवधारणाओ, रूपविधानो एव लोकसूत्रो मे से प्रत्येक का सक्षिप्त ऐतिहासिक विकास—लोक-उद्देश्य एव लोक-कला ।

**अध्याय ६** ' काव्यकला मे लोकरूप—लोक-कविता—विभिन्न रूप—पिंगल, मात्रिक छन्द, दोहो, चौपाइयो, कवित्तो, पदो का विकास कैसे हुआ—लोकतत्त्वो मे उनके सूत्र—ऐतिहासिक विवेचना—अलकार उपमाए और शैली—उनका लोकतात्त्विक स्वरूप—उनकी अगीकृति के कारण ।

**अध्याय ७** लोक-विश्वास, लोक-सस्कृति, कहावतें, पहेली, लोक-दर्शन

लोक-मनोविज्ञान, लोक-कला ।

अध्याय ८ उपसहार ।

## १७८. पं० बालकृष्ण भट्ट : उनका जीवन और साहित्य

[१९५७ ई०]

श्री राजेन्द्र प्रसाद शर्मा को उनके प्रबन्ध 'प० बालकृष्ण उनका जीव और साहित्य' पर सन् १९५७ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय ने पी-एच० ड की उपाधि प्रदान की। यह प्रबन्ध विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, से १९५८ मे प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे आधुनि हिन्दी-साहित्य के विकास मे भारतेन्दु-युग के योगदान पर विचार किया गया है प० बालकृष्ण भट्ट का इस युग से घनिष्ठ सम्बन्ध था। दूसरे अध्याय मे भट्ट का जीवनचरित प्रस्तुत किया गया है। उनका प्रामाणिक जीवनवृत्त देते उनके चरित्र की विशेषताओ का सम्यक् उद्घाटन किया गया है। ती अध्याय मे भट्ट जी के पत्रकार-रूप का विवेचन किया गया है। भट्ट जी अत्य निर्भीक प्रकृति के सुधारवादी पत्रकार थे। वे कट्टर राष्ट्रवादी व्यक्ति थे अ एक बुद्धिमान् सम्पादक भी थे। हिन्दी-पत्रकारिता भट्टजी की ऋणी रहेगी

चौथे अध्याय मे भट्ट जी को एक निबन्ध-लेखक के रूप मे देखा गया उनके निबन्धो का वर्गीकरण (राजनैतिक, समाजसुधार-सम्बन्धी, साहित्यि किया गया है। उनकी भाषा तथा शैली विषयक विशेषताओ का विवे किया गया है। परवर्ती निबन्धकारो (प० महावीर प्रसाद द्विवेदी, अध्या पूर्णसिह, प० रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, ड रामविलास शर्मा आदि) पर भट्ट जी का प्रभाव निरूपित किया गया पाचवें अध्याय में भट्ट जी के आलोचक रूप की समीक्षा की गयी है। भट्ट की आलोचना के मूल सिद्धान्तो का विवेचन किया गया है। उनकी आलोच के विविध पक्षो पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी-आलोचना-साहित्य में उन स्थान निर्धारित किया गया है।

छठे अध्याय मे भट्ट जी के उपन्यासो, नाटकों और कहानियों की आलोच करते हुए हिंदी के कथाकारो मे उनका स्थान निर्धारित किया गया है। इस

अध्याय मे भट्ट जी के सात उपन्यासो, ग्यारह नाटको और अनेक कहानियो का खोजपूर्ण विवरण देते हुए उनकी व्यापक समीक्षा की गयी है। सातवें अध्याय मे भट्ट जी के अप्रकाशित साहित्य का विवरण दिया गया है। उनके एक अप्रकाशित निबन्ध का नाम 'निस्सहाय हिन्दू' है। इसी प्रकार, भट्ट जी के हस्त-लेख के प्राप्त ३६४ पृष्ठ अप्रकाशित हैं जो सस्कृत के विभिन्न कवियो की आलोचना के रूप मे लिखे गये हैं।

प्रबन्ध के अन्त मे पाच परिशिष्ट इस प्रकार हैं —

१ भट्ट जी का अप्रकाशित लेख।
२ प्रदीप के ग्राहको की मूल सूची।
३ भट्ट जी के प्रतिनिधि साहित्यिक निबन्धो की तालिका।
४ भट्टजी की मृत्यु पर सवेदना मे प्राप्त पत्र आदि।
५ सहायक-ग्रन्थो की सूची।

## १७९. भारतेन्दुकालीन नाटक-साहित्य

[१९५७ ई०]

श्री गोपीनाथ तिवारी का प्रबन्ध 'भारतेन्दुकालीन नाटक-साहित्य' सन् १९५७ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध हिंदी भवन, जालन्धर, से प्रकाशित हुआ है।

यह प्रबन्ध चार खडो मे विभक्त है। पहले खड के प्रथम तीन अध्यायो मे भारतेन्दुपूर्व युग ( १६१०–१८५० ई०) के मौलिक तथा अनूदित नाटको का अनुशीलन है। इस प्रसग मे इस काल के नाटको को नाटक न मानने वाले विद्वानो के विचार प्रस्तुत किये गये हैं। चौथे और पाचवें अध्यायो मे इन विद्वानो के मतो का निराकरण करते हुए सप्रमाण यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि इस काल के नाटको मे नाटकीय तत्त्व विद्यमान हैं। केवल 'सभासार' या 'समयसार' को छोडकर इन सभी मे शृखलित कथानक, चरित्रचित्रण, अन्तर्द्वन्द्व, नाट्यकला या अभिनय के सकेत आदि गुण पाये जाते है। लेखक का मत है कि ये नाटक जन-नाट्य-शैली ( स्वाग, लीला, रास आदि ) के अनुकरण पर लिखे गये हैं।

दूसरे खड का विवेच्य सन्धि-काल (१८५७–१८६७ ई०) है। इस काल की

शैलिया ही उत्तराधिकार के रूप मे भारतेन्दु एव उस काल के अन्य नाटककारो को प्राप्त हुई। यह काल भारतेन्दु-काल के नाटको का जनक है। इस काल के प्रमुख नाटक 'प्रद्युम्न विजय' या 'प्रभावती नाटक' मे सस्कृत-नाटक की सधिया ही नही चौंसठ सध्यग भी प्राप्त होते हैं।

तीसरे खड के पहले पाच अध्यायो मे भारतेन्दु-काल के नाटको की समालोचना है जिसमे इस काल के नाटको की अनेक प्रमुख धाराओ-उपधाराओ का विवेचन किया गया है। मौलिक नाटको की तीन प्रमुख धाराएँ मानी गयी हैं। (१) पौराणिक (२) प्रेमप्रधान और (३) सामाजिक-धार्मिक। इस खड के अन्तिम तीन अध्यायो मे अनूदित एव जननाटको का अध्ययन किया गया है। अनुवाद प्रमुखत बगला, सस्कृत एव अग्रेजी से किये गये। जन-नाटको के दो वर्ग माने गये हैं (१) स्वाग नाटक और (२) इन्द्रसभा का थियेट्रिकल नाटक। इन दोनो धाराओ की परम्परा, विकास तथा शैलियो पर विचार किया गया है।

चतुर्थ खड 'तत्त्व-विवेचन' है। इस खड मे हिन्दी-नाटको के आधार पर नाटकीय तत्त्वो की चर्चा हुई है। भारतेन्दुकालीन नाटको मे नाटक के नौ तत्त्व मिलते हैं (१) प्रस्तावना (२) कथानक (३) पात्र (४) सवाद (५) भाषा (६) देशकाल (७) शैली (८) उद्देश्य एव (९) अभिनय। इस खड के प्रथम दो अध्यायो मे प्रस्तावना के पाच अगो (मगलाचरण, प्रस्ताव, सुझाव, परिचय और अन्त) एव दो प्रकार के कथानको (भारतीय नाट्यशास्त्र के लक्षणो से युक्त एव पश्चिमी सकलनत्रय आदि सिद्धान्तो के अनुसार निबद्ध) का विवेचन है। तीसरे अध्याय मे पात्रो के चरित्रचित्रण का अध्ययन किया गया है। चौथे अध्याय मे भारतीय एव पाश्चात्य शैलियो की दृष्टि से सवादो की समीक्षा की गयी है। पाचवें एव छठे अध्यायो मे नाटको की भाषा तथा देश-काल पर विचार किया गया है। सातवें अध्याय मे नाटको की शैली की समीक्षा की गयी है। अन्तिम दो अध्यायो मे नाटक के उद्देश्य ( उपदेश और रसानुभूति ) अभिनय, रग-सकेत आदि की विवेचना की गयी है।

## १८०. बाबू बालमुकुन्द गुप्त—उनके जीवन और साहित्य का अध्ययन

[१९५७ ई०]

श्री नत्थन सिह का शोध-प्रबन्ध 'बाबू बालमुकुन्द गुप्त—उनके जीवन और साहित्य का अध्ययन' सन् १९५७ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ विनोद पुस्तक मदिर, हास्पिटल रोड, आगरा, से सन् १९५८ ई० मे प्रकाशित हुआ।

इस प्रबन्ध मे आठ अध्याय हैं। भूमिका मे गुप्त जी विषयक विवेचन का मूल्याकन तथा उनके जीवन और साहित्य के विशद अध्ययन की उपादेयता आदि पर विचार किया गया है। प्रथम अध्याय मे उनके जन्म, शिक्षा, बाल्य-कालीन प्रतिभा आदि का गवेषणात्मक विवेचन, 'कोहेनूर' (लाहौर) 'अखबारे चुनार' आदि उर्दू-पत्रो द्वारा उर्दू-साहित्य-सर्जन, 'हिन्दोस्थान', 'हिन्दी बगवासी' तथा 'भारत मित्र' आदि हिन्दी-पत्रो के सम्पादन, उनके व्यक्तित्व तथा साहित्यिक यात्राओ के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

दूसरे अध्याय मे उर्दू-लेखक के रूप मे गुप्त जी का मूल्याकन किया गया है। तीसरे अध्याय मे उनके प्रारभिक गद्य की समीक्षा है। 'हिन्दोस्थान', 'हिन्दी बगवासी' तथा 'भारतमित्र' कालीन उनके कार्य का विवेचन और अन्य पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशनार्थ लिखे गये उनके साहित्य का उल्लेख कर के 'भारतमित्र' द्वारा हिन्दी पत्रकारकला में किये गये नव विकास का महत्व निर्धारित किया गया है। इनके अतिरिक्त इस अध्याय के विवेचित तत्व हैं—गुप्त जी की भाषा-नीति का अनुशीलन, उनके ऊपर 'भारतेन्दु' की पत्रकारिता के प्रभाव का अध्ययन तथा सामयिक पत्रो पर उनकी नीति के प्रभाव का विवेचन। चौथे अध्याय मे प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ हुए भाषा-सुधार-आन्दोलन का ऐतिहासिक एव साहित्यिक अध्ययन, 'शेष' शब्द पर प० लज्जाराम मेहता के साथ हुए विवाद की समीक्षा तथा व्याकरण एव शैली के विषय मे गुप्त जी के विचारो की विवेचना है।

पाचवा अध्याय आलोचक गुप्त जी की समीक्षा-शैली का विवेचन प्रस्तुत करता है। आपने उर्दू, हिन्दी, अग्रेजी तथा बगला आदि भाषाओ के साहित्य-कारो के जीवनचरित-प्रकाशन की अभूतपूर्व शैली का श्रीगणेश किया था, आलोचना की तुलनात्मक तथा लोकमगल की साधना वाली समीक्षापद्धतियो

का प्रारम्भ किया था, साहित्य मे पुन प्रविष्ट शृगारिक प्रवृत्ति का प्रवल खडन तथा अरुचिकर एव कुरूप अनुवाद की रीति का निरसन किया था। प्रस्तुत अध्याय मे उनकी आलोचकीय विशेषता का मूल्याकन तथा नवीन लेखको को दिये गये प्रोत्साहन का आकलन है। छठे अध्याय मे गुप्त जी के व्यग्यात्मक लेखो का विवेचन है। शिवशम्भु के चिट्ठो के ऐतिहासिक महत्व का प्रतिपादन, बगाल के गवर्नर लार्ड मिन्टो और लार्ड मार्लो को लिखे गये पत्रो की कलात्मक विशेषता की समीक्षा तथा व्यग्यात्मक लेखो मे अन्तर्हित राष्ट्रीयभावना तथा साहित्यिकता आदि का मूल्याकन किया गया है।

सातवें अध्याय मे गुप्तजी के पद्य-साहित्य का अध्ययन है। उनकी उर्दू-कविता की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए उर्दू-काव्य मे उनके स्थान का निर्धारण किया गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी मे देशभक्तिपरक रचना, धार्मिक कविता, हास्य एव व्यग्यात्मक काव्य का कलात्मक मूल्याकन करते हुए जोगीडा तथा जनगीतो (टेसू) की विशेषताओ का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही 'भारतेन्दु' तथा प्रतापनारायण मिश्र द्वारा प्रवर्तित व्यग्यकाव्य की परम्परा की शृखला के रूप मे गुप्तजी की कविता की समीक्षा की गयी है।

आठवें अध्याय मे हिन्दी-उर्दू-विवाद मे गुप्तजी के योगदान, नागरी आन्दोलन तथा उसमे गुप्तजी द्वारा किये गये कार्य का मूल्याकन है। हिन्दी उर्दू-आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे अग्रेजो की कूटनीतिज्ञता तथा जातिगत भेदभाव की नीति के प्रोत्साहन का रहस्योद्घाटन गुप्तजी ने बडी निर्भीकता तथा प्रामाणिकता के साथ करके राष्ट्रभाषा के रूप की स्थापना और हिन्दी भाषा एव नागरी लिपि की उपादेयता सप्रमाण सिद्ध की थी। प्रस्तुत अध्याय मे उनके राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी महान् कार्यों और मान्यताओ की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

उपसहार मे गद्य-निर्माता बालमुकुन्द गुप्त पर विचार किया गया है। गद्यशैली-निर्धारण के क्षेत्र मे गुप्तजी तथा प० महावीरप्रसाद द्विवेदी की तुलनात्मक समीक्षा की गयी है। परवर्ती गद्यलेखको पर भाषाशैलीगत प्रभाव का अकन तथा शैलीकार के रूप मे उनका मूल्याकन किया गया है। अन्त मे दो परिशिष्ट है। प्रथम परिशिष्ट मे अनुवादक गुप्तजी पर विचार किया गया है और द्वितीय परिशिष्ट मे उनके प्रमुख अप्रकाशित लेखो की तालिका प्रस्तुत की गयी है।

## १८१. 'शिवसिंह सरोज' में दिये कवियों सम्बन्धी तथ्य एवं तिथियों का आलोचनात्मक परीक्षण

[१९५७ ई०]

श्री किशोरीलाल गुप्त का प्रबन्ध 'सरोज सर्वेक्षण' सन् १९५७ ई० में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रबन्ध हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, से प्रकाशित हो रहा है।

यह शोधग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग भूमिका है। यह भूमिका भी सात अध्यायों मे विभाजित की गयी है। पहले अध्याय मे 'सरोज', 'सरोजकार' (शिवसिंह) तथा 'सरोज'कार के पुस्तकालय का परिचय दिया गया है और 'सरोज' के रचना एवं प्रकाशनकाल पर भी विचार किया गया है। दूसरा अध्याय 'सरोज' का महत्त्व है। इसमें गार्सां द तासी, महेशदत्त तथा मातादीन मिश्र आदि 'सरोज' के पूर्ववर्ती (हिन्दी-साहित्य के) इतिहासकारों एवं ग्रियर्सन आदि परवर्ती इतिहासकारों के ग्रन्थो से 'सरोज' की तुलना करते हुए उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है। तीसरे अध्याय मे 'सरोज' के आधार-ग्रन्थों का विवेचन है। चौथे अध्याय मे 'सरोज' की भूलो पर प्रकाश डालते हुए इसके सुसम्पादित संस्करण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। पांचवें अध्याय मे सरोज के सन्-संवतों की परीक्षा की गयी है। छठे अध्याय मे 'सरोज' के अध्ययन की आवश्यकता बतलायी गयी है तथा इस अध्ययन के सीमा-विस्तार पर प्रकाश डाला गया है। सातवें अध्याय मे सर्वेक्षण के प्रमुख सहायक सूत्रों की चर्चा की गयी है।

प्रबन्ध के दूसरे भाग मे मुख्य ग्रन्थों और ग्रन्थकारों का परीक्षण है। 'सरोज' मे उल्लिखित सामग्री की खोज-रिपोर्टों और शोधग्रन्थों के आधार पर आलोचनात्मक परीक्षा की गयी है। विवेच्य कवियों के विषय में जो नवीन सूचनाएं सुलभ हुई हैं, उन सबका भी समावेश यथास्थान कर लिया गया है। उपसंहार में तीन अध्याय हैं। पहला अध्याय तिथि-निर्णय है। इसमे दिखाया गया है कि 'सरोज' में दी गयी ६८७ तिथियां मे से ४८२ की जांच की जा चुकी है। इन तिथियों में से तीस तिथियां ईस्वी सन् मे है, शेष विक्रम संवत् मे। ३९ संवत् ग्रन्थविशेषों के रचना-काल हैं। २४५ संवत् विभिन्न प्रमाणों से उपस्थिति-काल सिद्ध होते हैं। ३२ संवत् तर्क के सहारे उपस्थिति-काल सिद्ध होते हैं, केवल २४ संवत् जन्म-काल सिद्ध होते हैं (यद्यपि ग्रियर्सन ने सभी को

जन्मकाल मान लिया था) और ११३ सवत् अशुद्ध सिद्ध होते हैं। 'सरोज' के २०५ सवतो की जाच नही हो सकी। इन सवतो को तब तक उपस्थिति-काल ही मानना चाहिए जब तक ये भविष्य मे अन्यथा न सिद्ध हो जायें। 'सरोज' मे २६३ अज्ञाततिथि कवि हैं। इनमे से १२४ के सम्बन्ध मे नयी तिथिया ज्ञात हुई हैं।

दूसरे अध्याय (कवि-निर्णय) मे दिखाया गया है कि 'सरोज' मे एक ही कवि कई-कई कवियो के नाम से उल्लिखित हो गया है। इस प्रकार ५६ कवि १२४ कवियो के रूप मे आये है और ६५ कवियो की मिथ्या सृष्टि हो गयी है। इसी प्रकार १२ और ऐसे कवि हैं जो सरोजकार की विशुद्ध सृष्टि हैं, किसी दूसरे कवि के प्रतिरूप नही हैं। लगभग दस कवि ऐसे हैं जिनका नाम अत अस्तित्व सन्दिग्ध है। ठीक इसके विपरीत कई-कई कवियो को भी मिलाकर सरोजकार ने एक कर दिया है। कई कवियो का उल्लेख उनके (कवियो के) आश्रयदाताओ के नाम से हो गया है। इस सर्वेक्षण मे सात-आठ ऐसे कवियो के वास्तविक नामो का भी अनुसधान किया गया है। तीसरे अध्याय मे तथ्यो का परीक्षण किया गया है। जन्मस्थान, जाति, ग्रन्थ, उद्धरण आदि से सम्बद्ध तथ्यो की आलोचनात्मक परीक्षा करते हुए उसमे वाछित सुधार किया गया है।

## १८२. कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन

[१९५७ ई०]

श्री द्वारिका प्रसाद सक्सेना का प्रबन्ध 'कामायनी मे काव्य, सस्कृति और दर्शन' सन् १९५७ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। पुस्तक-रूप मे इसका प्रकाशन विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, ने सन् १९५८ ई० मे किया।

यह प्रबन्ध आठ प्रकरणो मे विभक्त है। प्रथम प्रकरण मे प्रसाद-काव्य को (विशेष रूप से 'कामायनी' को) अनुप्राणित करने वाली मूल प्रवृत्तियो एव प्रेरणाओ का अध्ययन किया गया है। द्वितीय प्रकरण मे 'कामायनी' की कथा-वस्तु के विभिन्न स्रोतो की गवेषणा की गयी है। 'कामायनी' की कथावस्तु मे सम्बन्ध स्थापित करते हुए उसके प्रबन्धकाव्यत्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

तृतीय प्रकरण मे 'कामायनी' के महाकाव्यत्व, रूपकत्व आदि का विवेचन करते हुए उसके सौन्दर्य-दर्शन, सौन्दर्य एव रस आदि का पाश्चात्य एव भारतीय दृष्टि-कोण से अध्ययन किया गया है। चतुर्थ प्रकरण मे लेखक ने 'कामायनी' के कलापक्ष की सागोपाग समीक्षा प्रस्तुत की है। 'कामायनी' का मूल्याकन करते हुए विश्व-साहित्य मे उसका स्थान निर्धारित किया गया है। इस प्रसग मे 'कामायनी' के मूल्याकन का आधार तुलनात्मक अध्ययन न होकर विश्व-काव्य की विशेपताए है।

पचम प्रकरण मे 'कामायनी' के सास्कृतिक पक्ष के विवेचन एव उसके सास्कृतिक योगदान का अध्ययन किया गया है। पष्ठ प्रकरण मे 'कामायनी' के मनोवैज्ञानिक स्वरूप का उपस्थापन है। मन, काम, इच्छा, क्रिया, ज्ञान आदि का भारतीय एव पाश्चात्य दृष्टिकोणो से अध्ययन करते हुए लेखक ने मन के क्रमिक विकास मे श्रद्धा तथा इडा (बुद्धि) के सापेक्ष महत्त्व का अध्ययन प्रस्तुत किया है। सप्तम प्रकरण मे 'कामायनी' की दार्शनिकता का विवेचन है। 'कामायनी' मे अभिव्यक्त प्रत्यभिज्ञादर्शन की विवेचना करते हुए 'कामायनी' की दार्शनिक देन के महत्वाकन का प्रयास किया गया है। 'कामायनी' की पारि-भापिक शब्दावली पर भी विचार किया गया है। अष्टम प्रकरण 'कामायनी' पर लिखित आलोचनाओ की आलोचना है। विस्तृत आलोचना के उपरात 'कामायनी' के काव्य, सस्कृति और दर्शन मे निहित जीवन-सन्देश का स्पष्टीकरण किया गया है। इस स्पष्टीकरण का प्रयोजन काव्य की उपयोगिता और उसके नैतिक मूल्य को उद्घाटित करना है।

## १८३. अपभ्रंश-साहित्य

### [१९५७ ई०]

श्री देवेन्द्र कुमार जैन को 'अपभ्रंश-साहित्य' का गवेपणात्मक अध्ययन [स्त]ुत करने पर सन् १९५७ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की [उपा]धि मिली।

प्रस्तुत प्रवन्ध के प्रतिपाद्य विषय का उपस्थापन निम्नाकित ग्यारह अध्यायो [मे कि]या गया है —

अध्याय १—अपभ्रंश भापा · प्राकृत और —

आदि)। लोकगीतो के साथ ही प्रबन्धगीत एव कथाओ का विवेचन भी किया गया है। यही पर गूजरो की ऐतिहासिक परम्पराओ का निदर्शन भी किया गया है।

तीसरे अध्याय मे पहले मालवी-लोकसाहित्य की धार्मिक परम्पराओ का अनुशीलन किया गया है। इस साहित्य मे दो धाराए पायी जाती हैं—(क) कलगी तुर्रा (ख) मालवी-सन्तसाहित्य। दूसरी धारा के अन्तर्गत प्रचुरमात्रा मे साहित्य-सर्जन हुआ है। इस अध्याय मे इस साहित्य का विस्तृत परिचय दिया गया है। इसके उपरान्त इन गीतो मे वर्णित देवी-देवताओ, शीतला, गगामाता, देवमहाराज आदि का अध्ययन किया गया है। चौथे अध्याय मे माच (मालवी लोकनाट्य) पर विचार किया गया है। माच के प्रवर्त्तक बालमुकुन्द गुरु थे। यह परम्परा खूब फली-फूली और इसमे विशाल मात्रा मे साहित्य-निर्माण हुआ। इस अध्याय मे इस साहित्य का विस्तारपूर्वक शास्त्रीय विश्लेषण किया गया है।

पाचवें अध्याय मे वार्ता-लोककथा-साहित्य का विवेचन किया गया है। पहले भारतीय और हिन्दी के लोककथा-साहित्य का परिचय देते हुए उपलब्ध भारतीय लोककथा-साहित्य की मौलिक समानताओ का निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् मालवी लोककथा-साहित्य के सग्रह-कार्य का विवरण एव महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उसका वर्गीकरण एव अध्ययन किया गया है। छठा अध्याय 'लोकोक्ति-साहित्य' है। लोकोक्ति-साहित्य की रूपरेखा देकर उसकी प्रकृति एव विशेषताओ का निरूपण किया गया है। उनका वर्गीकरण भी किया गया है। साथ ही मालवी-प्रहेलिका-साहित्य की विशेषताओ और प्रवृत्तियो का भी विस्तृत परिचय दिया गया है। सातवा अध्याय उपसहार है। इसमे लोक-साहित्य की शैली और अन्य विशेषताओ का प्रतिपादन करके मालवी-लोक-साहित्य का हिन्दी-साहित्य से सम्बन्ध निरूपित किया गया है।

## १८५. आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे आलोचना का विकास ( १८६८-१९४३ ई० )

[१९५७ ई०]

श्री राजकिशोर कक्कड को उनके प्रबन्ध 'आधुनिक-हिन्दी-साहित्य मे आलोचना का विकास' (सन् १८६८-१९४३ ई०) पर सन् १९५७ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

प्रस्तुत प्रबन्ध नौ प्रकरणो मे विभक्त है। प्रथम प्रकरण मे भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्यालोचन मे आलोचना-सम्बन्धी साहित्य के विकास का दिग्दर्शन कराते हुए आलोच्यकाल मे हिन्दी मे आलोचना-सम्बन्धी साहित्य के विकास का अध्ययन किया गया है। इस विकास के अन्तर्गत गगाप्रसाद अग्निहोत्री, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, पद्मसिह शर्मा, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास, प्रेमचन्द, जयशकर प्रसाद, नन्ददुलारे वाजपेयी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामशकर शुक्ल 'रसाल', शिवनाथ, रामकुमार वर्मा, गगा प्रसाद पाडेय आदि आलोचको पर विचार किया गया है।

द्वितीय प्रकरण मे काव्य-सम्प्रदायो के विकास पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकरण मे काव्य के वाह्य उपकरण तथा स्वरूप का विवेचन करने वाले सम्प्रदायो के विकास का निदर्शन किया गया है। साथ ही अनुमिति तथा औचित्य सम्प्रदाय के विकास पर भी प्रकाश डाला गया है। तृतीय प्रकरण मे काव्य के अन्तरग तत्त्व का विवेचन करने वाले रस-सम्प्रदाय का अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ प्रकरण मे साहित्य-सम्बन्धी आलोचना तथा पचम प्रकरण मे साहित्य तथा उसके विविध रूपो की आलोचना का विकास दिखाया गया है। इस सन्दर्भ मे सर्वप्रथम सस्कृत तथा पाश्चात्य साहित्यालोचन मे कविता-सबधी विवेचन के विकास का अध्ययन प्रस्तुत करके लछिराम, मुरारिदान, कन्हैयालाल पोद्दार आदि आधुनिक रीतिकारो तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी, भगवानदीन, रामचन्द्र शुक्ल आदि से लेकर डा० नगेन्द्र, 'अज्ञेय' और शिवदानसिह चौहान आदि तक आधुनिक आलोचको पर विचार किया गया है।

षष्ठ प्रकरण मे कथा-साहित्य (कहानी तथा उपन्यास) सम्बन्धी आलोचना के विकास का पर्यालोचन है। इसी प्रकरण मे हिन्दी मे निबन्ध-सम्बधी आलोचना के विकास का विवेचन भी किया गया है। नाटक-सम्बंधी आलोचना का

द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ ।

## १८८. आन्ध्र-हिन्दी-रूपक [हिन्दी और तेलगू का नाटक-साहित्य—तुलनात्मक अध्ययन]

[१९५७ ई०]

श्री पाडुरग राव मुरली को उनके प्रबन्ध 'आन्ध्र-हिन्दी-रूपक (हिन्दी और तेलगू नाटक-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन)' प्रस्तुत करने पर नागपुर विश्वविद्यालय से सन् १९५७ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि मिली ।

इस प्रबन्ध मे सात अध्याय हैं। पहले अध्याय में कला, काव्य और नाटक का शास्त्रीय अध्ययन है । दूसरे अध्याय मे सस्कृत-नाटक-साहित्य का सिंहावलोकन है। तीसरे अध्याय मे काल-विभाजन किया गया है। चौथे अध्याय मे हिन्दी और आन्ध्र रूपको के प्रयोग-युग (१४२०-१८६४ ई०) का अनुशीलन है। पाचवें अध्याय मे दोनो के प्रारम्भ-युग (१८६५-९९ ई०) की समीक्षा है। छठे अध्याय मे दोनो के विकास-युग (१९००-१९३४ ई०) का विवेचन है। सातवें अध्याय मे दोनो के वर्तमान युग (१९३५-५४ ई०) के नाटको का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

## १८९. भारतीय आर्यभाषा-परिवार की मध्यवर्तिनी बोलियां छत्तीसगढ़ी, हलबी, भतरी

[१९५७ ई०]

नागपुर विश्वविद्यालय ने सन् १९५७ ई० मे श्री भालचन्द्र राव तेलग को उनके शोधप्रबन्ध 'भारतीय आर्यभाषा-परिवार की मध्यवर्तिनी बोलिया छत्तीसगढी, हलवी, भतरी' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे हिन्दी, मराठी और उडिया के सगम-स्थल की उपर्युक्त तीन वोलियो (हिन्दी की बोली छत्तीसगढी, मराठी की वोली हलवी और उडिया की वोली भतरी) का भाषावैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। यह ग्रन्थ पाँच

खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड मे छत्तीसगढी के सीमा-विस्तार, नामकरण, उसकी अन्तर्वर्तिनी बोलियो, ध्वनितत्व, शब्दकोष, रूपतत्व और अर्थतत्व पर विचार किया गया है। द्वितीय खण्ड मे हलबी के ध्वनितत्व, रूपतत्व और अर्थतत्व का अनुशीलन है। तृतीय खण्ड मे भतरी के ध्वनितत्व, रूपतत्व और अर्थतत्व की विवेचना की गयी है। चतुर्थ खण्ड मे तीन परिशिष्ट हैं—छत्तीसगढी बोली, हलबी बोली, भतरी बोली। पचम खण्ड मे उक्त तीनो बोलियो के शब्दो की अनुक्रमणिका दी गयी है।

## १९०. प्रेमचन्द : एक अध्ययन [जीवन, चिन्तन और कला]

[१९५७ ई०]

श्री राजेश्वर गुरु का प्रबन्ध 'प्रेमचन्द एक अध्ययन [जीवन, चिन्तन और कला], सन् १९५७ ई० मे नागपुर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ 'प्रेमचन्द एक अध्ययन' के नाम से मध्य प्रदेशीय प्रकाशक समिति, भोपाल, से सन् १९५८ ई० मे प्रकाशित हुआ।

यह प्रबन्ध चार भागो मे विभक्त है। सबसे पहले विषय-प्रवेश के अन्तर्गत प्रेमचन्द के विभिन्न आलोचको के मतो पर विचार करते हुए लेखक ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। पहले भाग मे प्रेमचन्द का जीवन-स्तर दिया गया है। यह तीन काल-खण्डो मे विभक्त है—(१) सन् १८८० से १८९५ ई० (२) सन् १८९५ ई० से १९२१ ई०, (३) सन् १९२१ ई० से १९३६ ई०।

दूसरे भाग का शीर्षक 'कुछ विचार' है। इस भाग मे साहित्य के उद्देश्य, साहित्यकार के कर्त्तव्य, साहित्याभिव्यक्ति के माध्यम—भाषा तथा साहित्याभिव्यक्ति के स्वरूप आदि विशेष महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर विचार किया गया है।

तीसरा भाग 'प्रेमचन्द-साहित्य की भूमिका' है। युग के आर्थिक ढाचे पर विचार करते हुए अनुसन्धाता ने अपना मत व्यक्त किया है कि प्रेमचन्द का युग सामन्ती सभ्यता के ह्रास का युग था। इस प्रसग मे महाजनी सभ्यता के विवेचन के साथ ही गाधीवाद, साम्यवाद आदि का भी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचन्द की समकालीन सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक (उर्दू-हिन्दी) पृष्ठभूमि का भी पर्यालोचन है। अन्त मे प्रेमचन्द की मनोरचना पर प्रकाश डाला गया है।

चौथे भाग का प्रतिपाद्य प्रेमचन्द-साहित्य का विश्लेषण और विकास-क्रम है। इस भाग मे पहले 'सेवासदन' के पूर्व लिखी गयी कृतियो का अनुशीलन है तत्पश्चात् क्रमश सेवासदन, प्रेमाश्रम, प्रतिज्ञा तथा निर्मला, रगभूमि, कायाकल्प, गवन, कर्मभूमि, गोदान और मगलसूत्र का परिशीलन है। इस भाग के अन्त में प्रेमचन्द की कहानियो का अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

अन्त मे प्रवन्ध का उपसहार है। प्रवन्ध मे प्रेमचन्द के साहित्य का विश्लेषण करने के अनन्तर उपसहार मे उनकी कला और जीवन-दर्शन की भी समीक्षा की गयी है। अन्त मे प्रेमचन्द का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है।

## १९१. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द

[१९५७ ई०]

श्री महेन्द्र भटनागर को उनके प्रवन्ध 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द' पर नागपुर विश्वविद्यालय ने सन् १९५७ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। पुस्तकरूप मे, इसी नाम से, इस प्रबन्ध का प्रकाशन हिन्दी-प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, ने किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध १८ अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे 'समस्यामूलक' शब्द की व्याख्या की गयी है। 'समस्या-प्रधान' और 'समस्यामूलक' शब्दो मे विरोध न होते हुए भी शास्त्रीय दृष्टि से उनमे अन्तर है। इसी अन्तर को यहा स्पष्ट किया गया है। लेखक की धारणा है कि प्रेमचन्द वस्तुत समस्यामूलक उपन्यासकार ही थे, यहा तक कि उनके समस्त उपन्यासों का उद्देश्य केवल हिन्दुस्तान की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक आदि समस्याओ को प्रस्तुत करना ही रहा है।

दूसरे अध्याय मे प्रेमचन्द के समय के भारत का चित्राकन किया गया है। इसमे तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का परिचय दिया गया है, यथास्थान प्रामाणिक रिपोर्टों और इतिहासो से सबधित उद्धरण भी दिये गये हैं। तीसरे अध्याय मे प्रेमचन्द-युग मे मध्यवर्ग की स्थिति का चित्रण किया गया है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो मे मध्यवर्ग की समस्याओ को प्रधानता दी है, अत इस वर्ग के अध्ययन की विशेष सार्थकता है।

चौथे अध्याय मे प्रेमचन्द की साहित्य-सम्वन्धी मान्यताओ पर विचार किया गया है। इस अध्याय मे प्रेमचन्द का शास्त्रीय रूप चित्रित किया गया है और साहित्य तथा कला के विषय मे उनके विचारो पर अवधानपूर्वक प्रकाश डाला गया है। पाचवें अध्याय मे प्रेमचन्द के जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया गया है। अनुसन्धाता का मत है कि उनका जीवनदर्शन गाधीवादी अथवा साम्यवादी दर्शन से मुक्त है। उनके उपन्यासो पर किसी 'वाद'-विशेष का लेवल नही चिपकाया जा सकता। वस्तुत प्रेमचन्द न गाधीवादी थे और न साम्यवादी। अधिक समीचीन अर्थ मे उन्हे मानवतावादी कहना चाहिए। लेखक ने छठे अध्याय मे प्रेमचन्द को मानवतावादी सिद्ध किया है।

सातवें से लेकर सत्रहवें अध्याय तक का प्रत्येक अध्याय प्रेमचन्द के उपन्यासो मे वर्णित विभिन्न समस्याओ से सम्वद्ध है। ये समस्याए क्रमश इस प्रकार हैं — भारतीय स्वाधीनता की समस्या, रियासतो और देशी नरेशो की समस्या, साम्प्रदायिक समस्या, शैक्षणिक समस्या, औद्योगिक समस्या, ग्रामीण जीवन (किसान वर्ग की समस्याए), अछूतवर्ग, वेश्या-समस्या, विधवा-समस्या, वैवाहिक समस्या और पारिवारिक जीवन के पहलू।

अठारहवा अध्याय 'समस्यामूलक उपन्यास और प्रेमचन्द' है। प्रस्तुत अध्याय मे समस्यामूलक उपन्यास के रचना-तत्र और प्रेमचन्द के समस्त उपन्यासो की क्रमिक चर्चा है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासो की समस्या-मूलकता इसमे सिद्ध की गयी है।

## १९२. हिन्दी-काव्य में कल्पना-विधान

[१९५७ ई०]

श्री रामयतनसिंह 'भ्रमर' का प्रवन्ध 'हिन्दी-काव्य मे कल्पना-विधान' सन् १९५७ ई० मे नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया। यह प्रवन्ध अप्रकाशित है।

प्रस्तुत प्रवन्ध के दो खडो मे कुल आठ अध्याय हैं। पहले खड का पहला अध्याय कविता के विषय मे है। कविता के उद्गम, स्वरूप, उद्देश्य आदि पर प्राच्य एव पाश्चात्य कवियो एव आचार्यो के मतो का उपस्थापन तथा विवेचन करते हुए निष्कर्ष निकाला गया है कि 'कविता वाह्य जगत् की प्रतिक्रियाओं से

आन्दोलित अन्तर्जगत् के आवेगो का सयत एव आनन्दमय प्रकाशन है'। दूसरे अध्याय मे कविता मे रूप-विधान का स्थान, क्षेत्र एव रूप-विधान तथा कल्पना आदि अनेक विषयो पर विचार करने के अनन्तर कल्पना की विविध श्रेणियो का उपस्थापन है। इसी अध्याय मे रूप-विधान का विस्तृत विवेचन करते हुए उसका वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया गया है। उसके वस्तुपक्ष और कलापक्ष का निरूपण करने वाली विस्तृत तालिका भी दी गयी है।

दूसरे खण्ड मे छ अध्याय हैं। पहले अध्याय का प्रतिपाद्य 'भारतेन्दु-युग' है। भारतेन्दु-युग की सामान्य प्रवृत्तियो का अनुशीलन कर चुकने के अनन्तर लेखक ने तत्कालीन कविता के व्यावहारिक पक्ष पर भी विचार किया है। दूसरे अध्याय मे 'द्विवेदी-युग' का पर्यालोचन किया गया है। खडीबोली की कविता के निर्माण और उत्तरोत्तर विकास मे द्विवेदी जी और उनके अन्य सहयोगी कवियो के योगदान का मूल्याकन किया गया है। अनुसन्धाता का मत है कि इन कवियो ने कविता की स्वतन्त्र परिपाटी का निर्माण किया परन्तु इस आलोच्य काल के कवियो मे उपदेश देने की सामान्य प्रवृत्ति पायी जाती है। द्विवेदी-युग की कविता मे अपेक्षित सरसता एव कलात्मकता का अभाव है।

तीसरे अध्याय का विवेच्य छायावाद-युग है। सर्वप्रथम युगीन पृष्ठभूमि की विशद विवेचना की गयी है। तदनन्तर छायावाद के प्रमुख उपकरणो पर विचार किया गया है। अध्याय के अन्त मे पन्त, प्रसाद, महादेवी, निराला और रामकुमार वर्मा के काव्य के व्यावहारिक पक्ष का पृथक्-पृथक् निरूपण है। चौथे अध्याय मे प्रगतिवाद-युग की सामान्य परिस्थितियो पर प्रकाश डालते हुए इस युग की कविता के रूप-विधान की आलोचना की गयी है। पाचवें अध्याय मे इसी प्रकार प्रयोगवाद-युग की सामान्य प्रवृत्तियो का परिशीलन किया गया है। तदनन्तर आज की नयी कविता की विशेषताओ, कठिनाइयो, आक्षेपो, शिल्प-प्रयोगो आदि की विस्तृत समीक्षा करते हुए उसकी भावभूमि को स्वस्थ एव विशाल बतलाया गया है। अन्त मे उसकी कलात्मक परिणति पर विचार करते हुए उसकी उपलब्धि और अभावो की चर्चा की गयी है।

छठा अध्याय उपसहार है। भारतेन्दु-युग से लेकर आज तक के रूपविधान के क्रमिक विकास का सिंहावलोकन इस अध्याय मे किया गया है। परिशिष्ट में छायावादोत्तर युग के कवियों के काव्य की सामान्य प्रवृत्तियो पर प्रकाश डालते हुए उनके काव्य के व्यावहारिक पक्ष की समीक्षा की गयी है।

## १९३. निमाड़ी और उसका लोकसाहित्य

[१९५७ ई०]

श्री कृष्णलाल का प्रवन्ध 'निमाडी और उसका लोकसाहित्य' मन् १९५७ई० मे नागपुर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रवन्ध अभी प्रकाशित नहीं हुआ।

इस प्रवन्ध मे दो खण्ड हैं। पहले खण्ड मे निमाडी बोली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन है और दूसरे खण्ड मे उसके लोकसाहित्य का अनुशीलन किया गया है। पहले खण्ड मे आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे निमाडी और निमाडी-प्रदेश का परिचय दिया गया है। मालवा के दक्षिण मे निम्नवाड प्रदेश है। वहा की बोली का नाम निमाडी है। अनुसन्धाता की स्थापना है कि निमाडी मराठी, गुजराती या राजस्थानी की बोली न होकर पश्चिमी हिन्दी का ही एक रूप है। दूसरे अध्याय मे भारतीय आर्यभाषाओ मे निमाडी का स्थान बतलाया गया है। तीसरे मे निमाडी के स्वरूप का विवेचन है। चौथे अध्याय मे निमाडी की सीमावर्ती बोलियो (मालवी, व्रज और बुन्देली) के साथ उसकी तुलना की गयी है। पाचवें अध्याय मे निमाडी के ध्वनितत्त्व (स्वर और व्यजन) का अध्ययन है। छठे अध्याय मे प्राकृत और मध्य-भारतीय-आर्यभाषा के स्वर-व्यजनो का निमाडी मे विकास दिखलाया गया है। सातवें अध्याय मे विकारी शब्दो (सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, लिंग, वचन, कारक आदि) के रूपतत्त्व का अध्ययन है। आठवें अध्याय मे अविकारी शब्दो (अव्यय, उपसर्ग, प्रत्यय), समास आदि के रूपतत्त्व का विवेचन किया गया है।

द्वितीय खण्ड मे ग्यारह अध्याय हैं। इस खण्ड के उपोद्घात मे लोकसाहित्य के स्वरूप, इतिहास आदि पर विचार किया गया है। पहले अध्याय मे निमाडी लोकसाहित्य का सामान्य परिचय दिया गया है। दूसरे, तीसरे और चौथे अध्यायो मे क्रमश सस्कारो, ऋतुओ तथा धर्म से सम्बन्धित गीतो का अध्ययन किया गया है। पाचवें अध्याय मे लोकगीतो मे अभिव्यक्त जीवनचित्रो की विवेचना है। छठे अध्याय मे विविध गीतो (शिशुगीत, जागरणगीत आदि), सातवें मे निमाडी की लोकगाथाओ तथा आठवें अध्याय मे निमाडी की लोककथाओं का अनुशीलन है। नवें अध्याय मे निमाडी लोक-कथाओ की विशेषताए बतलायी गयी हैं। दसवें, ग्यारहवें और बारहवें अध्यायो मे क्रमश निमाडी की लोकोक्तियो, मुहावरो और प्रहेलिकाओ का अध्ययन है।

ग्रन्थ के आरम्भ मे निमाडीभाषी प्रदेश का मानचित्र दिया गया है। प्रवन्ध के अन्त मे तीन परिशिष्ट हैं। प्रथम दो मे निमाडी के लोकगीत और लोककथाए उद्धृत की गयी हैं। तीसरे मे निमाडी का सक्षिप्त शब्दकोष प्रस्तुत किया गया है।

## १६४. केशवदास—उनके रीतिकाव्य का विशेष अध्ययन

[१६५७ ई०]

श्री किरणचन्द्र शर्मा को उनके शोध-प्रवन्ध 'केशवदास—उनके रीतिकाव्य का विशेष अध्ययन' पर सन् १६५७ ई० मे पजाब विश्वविद्यालय ने पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रवन्ध दस अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे, केशवदास की पूर्ववर्ती तथा समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एव साहित्यिक परिस्थितियो का दिग्दर्शन कराते हुए केशवदास पर उनका प्रभाव निरूपित किया गया है। लेखक का निष्कर्ष है कि केशवदास इन परिस्थितियो से प्रभावित होने पर भी हिन्दी-काव्यक्षेत्र मे एक विशिष्ट पद्धति के जन्मदाता एव प्रवर्त्तक हैं।

दूसरे अध्याय मे केशव के जीवनचरित पर विस्तार से विचार किया गया है। उनका जन्म सवत् १६१८ वि० और मृत्यु सवत् १६७० वि० के आस-पास सिद्ध किया गया है। केशव के वशधरो से प्राप्त वशवृक्ष का भी विवरण दिया गया है। केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध पर भी विचार किया गया है। केशव के व्यक्तित्व और उनकी जानकारी की विस्तृत चर्चा की गयी है।

तीसरे अध्याय मे (खोज-रिपोर्टों मे) केशवदास, केशव अथवा केशवराइ के नाम से उपलब्ध होने वाले ग्रन्थो की प्रामाणिकता तथा रचनाकाल का विवेचन करते हुए केशव के ग्रन्थो की सख्या एव नाम आदि का निर्धारण किया गया है। अनुसन्धाता ने केशव के दो नये ग्रन्थो 'छन्दमाला' और 'शिखनख' की खोज की है जिन्हे परिशिष्ट मे उद्धृत कर दिया गया है।

चौथे अध्याय मे केशव के प्रवन्धकाव्यो का विवेचन है। प्रवन्ध-सौष्ठव, अलकार-योजना, छन्द-प्रयोग तथा भाषा आदि पर विचार किया गया है। प्रवन्धकाव्य के आवश्यक तत्त्वों के आधार पर केशव की 'रामचन्द्रिका',

'वीरसिंहदेवचरित', 'विज्ञानगीता', 'रतनवावनी' तथा 'जहागीरजसचन्द्रिका' की परीक्षा करते हुए उनका मूल्याकन किया गया है।

पाचवें अध्याय मे केशव की विचारधारा और उनके इतिहास-ज्ञान का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। विचारधारा के अन्तर्गत केशव के दार्शनिक सिद्धान्त, भक्ति, नीति एव धर्म, तत्कालीन जीवन, केशव का नारी-दर्शन, गुरु-महिमा, तथा ब्राह्मणभक्ति का विवेचन किया गया है। इतिहास-ज्ञान के अन्तर्गत 'जहागीरजसचन्द्रिका', 'वीरसिंहदेवचरित' तथा 'रतनवावनी' ग्रन्थो मे निवद्ध इतिहास-सामग्री का व्यौरेवार वर्णन करते हुए ओडछा राज्य से सम्वद्ध अनेक अज्ञात एव अल्पज्ञात घटनाओ का उल्लेख किया गया है। इन ग्रन्थो मे वर्णित ओडछा राज्य के वशवृक्ष का ओडछा गजेटियर आदि के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

छठे अध्याय मे केशव के रीतिकाव्य का विवेचन है। रीतिकाव्य का सक्षिप्त परिचय देते हुए केशवदास की भावव्यजना, वस्तु तथा दृश्य वर्णन, नखशिख-वर्णन, अलकार-योजना, छन्दोयोजना, भाषा आदि पर विस्तार से विचार किया गया है।

सातवें अध्याय मे केशव के आचार्यत्व की विवेचना है। 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' के आधार पर केशव के लक्षण-निरूपण के मूल स्रोतो एव उनकी मौलिक उद्भावनाओ पर प्रकाश डाला गया है।

आठवें अध्याय मे अलकार, रस तथा नायिका-भेद-निरूपण आदि के आधार पर चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र, देव, दास और पद्माकर आदि के साथ आचार्य केशवदास का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

नवें अध्याय मे विहारी, मतिराम, देव, दास और वेनी प्रवीन आदि परवर्ती कवियो पर केशव का प्रभाव दिखलाया गया है। दसवे अध्याय मे रीतिकालीन आचार्यों और शृगारी कवियो से तुलना करके रीतिकवि केशवदास का स्थान निर्धारित किया गया है।

# १६५ अवध के प्रमुख हिन्दी-कवियो का अध्ययन (१७००-१६०० वि०)

## [१६५७ ई०]

श्री ब्रजकिशोर मिश्र का प्रवन्ध 'अवध के प्रमुख हिन्दी-कवियो का अध्ययन (१७००–१६०० वि०)' सन् १६५७ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रवन्व मे पाच अध्याय हैं। पहले अध्याय मे अवध-प्रदेश के नाम, इतिहास और सीमा का परिचय है। आलोच्यकाल (१७००–१६०० वि०) के आश्रयदाताओ तथा कवियो पर विचार किया गया है। इसी अध्याय मे 'सामान्य परिचय' के अन्तर्गत लखनऊ की नवाबी और अवध की प्रमुख रियासतो—बैसवाडा (रायवरेली), अमेठी (सुलतानपुर), अरवर देश (प्रतापगढ) महदीना (अयोध्या), कोटवा (बाराबकी), विलग्राम (हरदोई), विसव (सीतापुर), मुहमदी (हरदोई), दौलतपुर (रायबरेली)—उनके शासको, तथ उनके आश्रित कवियो का व्यापक परिचय दिया गया है। दूसरे अध्याय म अवध के हिन्दी-कवियो के काव्य के पोषक उपादानो की सामाजिक, साहित्यिक तथा धार्मिक दृष्टि से समीक्षा की गयी है।

तीसरे अध्याय मे प्रमुख काव्यधाराओ का दिग्दर्शन है। अनुसधाता ने इ काव्य की छ प्रमुख काव्यधाराए मानी हैं (१) निर्गुण-सन्त-काव्य (२) सूप प्रेमाख्यान (३) प्रशस्ति-काव्य (४) हास्यवृत्ति (५) नीतिकाव्य (६) गीति काव्य। चौथे अध्याय मे इस काव्य की आलोचना की गयी है। यह आलोचन भाव तथा कला दोनो की दृष्टियो से की गयी है। रस, प्रकृतिवर्णन, कल्पन रूपचित्रण, दृश्यचित्रण, भाषा-स्वरूप और लाक्षणिकता, शब्द-चयन, सगी आदि अनेक दृष्टियो से अवध के हिन्दी-काव्य की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है मुक्तक, दोहा, सोरठा, पद, छप्पय, सवैया, घनाक्षरी आदि की दृष्टि से काव्य शैली का विवेचन किया गया है। इसी प्रकार मौलिक तथा अनूदित प्रवन्धो क भी अनुशीलन इसी अध्याय मे है। प्रवन्धकाव्यो के नामकरण, नायक मगलाचरण, रस, वस्तुवर्णन, भाव-व्यजना, कथावस्तु, सवाद, सगीत, छ सर्गवद्धता आदि की समीक्षा है। अन्त मे अवध के हिन्दी-कवियो के गद्य प भी सक्षेप मे विचार किया गया है।

पाचवा अध्याय 'उपसहार' है। राज्य-वश-वर्णन तथा कवि-वश-वर्णन

परिशिष्ट के रूप मे अन्त मे जोड दिये गये हैं।

## १९६. सूरदास की भाषा

[१९५७ ई०]

श्री प्रेमनारायण टडन को लखनऊ विश्वविद्यालय ने उनके 'सूरदास की भाषा' नामक प्रवन्ध पर सन् १९५७ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। उसी वर्ष यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य-भण्डार, गगा प्रसाद रोड, लखनऊ, से प्रकाशित हुआ।

यह प्रवन्ध सात अध्यायो मे विभाजित है। प्रथम अध्याय विपय-प्रवेश के रूप मे है। इसमे व्रजभापा और सूरदास की भापा के अध्ययन के इतिहास की रूपरेखा दी गयी है। इस प्रकार का अध्ययन न किये जाने के कारणो पर सक्षेप मे विचार करने के पश्चात् प्रस्तुत प्रवन्ध का क्षेत्र भी निर्धारित कर दिया गया है। द्वितीय अध्याय से ग्रन्थ का मुख्य भाग आरम्भ होता है। यह अध्याय दो भागो में विभाजित है। प्रथम भाग मे व्रज और व्रजभापा का सक्षिप्त परिचय देकर व्रजभापा के क्षेत्र-विस्तार और व्रजभापा, साहित्य में उसके प्रयोग का आरम्भ आदि विपयो पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे भाग मे सूरदास के पूर्ववर्ती हिन्दी-कवियो की कृतियो मे प्राप्त व्रजभापा-रूप की चर्चा है। इसके पश्चात् सूरदास और व्रजभापा के सम्वन्ध पर विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय भी दो भागो मे विभाजित है। पहले भाग मे व्रजभाषा के ध्वनि-समूह और सूरदास के तत्सम्वन्धी प्रयोग दिये गये हैं। इसके अन्तर्गत स्वरो के सामान्य, अनुच्चरित, सानुनासिक और सयुक्त प्रयोगो पर विस्तार से विचार किया गया है। इसी प्रकार व्यजनो के भी सामान्य और सयुक्त रूपो पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे भाग मे सूरदास के शब्द-समूह का वर्गीकरण करते हुए पूर्ववर्ती भाषाओ, समकालीन वोलियो और विभापाओ एव देशी-विदेशी भापाओ के शब्दो के साथ-साथ देशज और अनुकरणात्मक शब्दो की भी चर्चा की गयी है। चतुर्थ अध्याय मे व्याकरण की दृष्टि से सूरदास की भापा का अध्ययन किया गया है। कवि के सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय प्रयोगो की विशेपताओ के साथ-साथ उसकी वाक्य-विन्यास-पद्धति पर भी इस अध्याय मे विचार किया गया है। पचम अध्याय पुन दो भागो मे विभाजित है। प्रथम

भाग मे सूरदास की भाषा के व्यावहारिक पक्ष और द्वितीय भाग मे शास्त्रीय पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम के अन्तर्गत विषय, पात्र और मनोभावो के अनुसार परिवर्तित भाषा-रूपो तथा विभिन्न स्त्री-पुरुष पात्रो के सवादो और प्रसगो एव सूक्तियो की भाषा की विवेचना की गयी है। द्वितीय भाग मे सूर काव्य मे प्रयुक्त विभिन्न छन्दो, शब्दशक्तियो, अलकारो, गुणो, वृत्तियो, रीतियो और रसभेदो के अनुसार भाषा-रूपो की समीक्षा की गयी है। इस अध्याय के अन्त मे शास्त्रीय और व्यावहारिक दृष्टि से सूरदास की भाषा के खटकने वाले प्रयोगो के भी कुछ उदाहरण दिये गये हैं।

षष्ठ अध्याय मे सास्कृतिक दृष्टि से सूरदास की भाषा का अध्ययन है। इसमे सूर-साहित्य की मुख्यत ऐसी शब्दावली का अध्ययन किया गया है जो तत्कालीन जन-जीवन और सास्कृतिक विचारो का परिचय कराने मे सहायक हो सकती है। भौगोलिक, पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक वातावरण की जानकारी तो इस शब्दावली से होती ही है, तत्कालीन खान-पान, वस्त्राभूषण, व्यवहार की सामान्य वस्तुए, खेल-व्यायाम, वाणिज्य-व्यवसाय आदि का सक्षिप्त परिचय भी इससे मिलता है। साथ-साथ कवि के समकालीन जन-समुदाय के सामाजिक पौराणिक और धार्मिक विश्वासो, पर्वोत्सवो, सस्कारो आदि पर भी इस अध्याय से प्रकाश पडता है। सप्तम अध्याय उपसहार के रूप मे लिखा गया है जिसमे समकालीन और परवर्ती ब्रजभाषा-कवियो की भाषा से सूरदास की भाषा की सक्षेप मे तुलना की गयी है और अन्त मे ब्रजभाषा की समृद्धि मे सूरदास के योगदान का मूल्याकन किया गया है। प्रबन्ध के अन्त मे दो परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट के अन्तर्गत सूरदास के काव्य मे प्रयुक्त शब्दो की सख्या पर विचार किया गया है। द्वितीय परिशिष्ट मे सूर-साहित्य और उसकी सम्पादन-समस्या की चर्चा है।

## १९७. मैथिली के कृष्णभक्त कवियों का अध्ययन

[१९५७ ई०]

श्री ललितेश्वर झा का प्रबन्ध 'मैथिली के कृष्णभक्त कवियो का अध्ययन' सन् १९५७ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाश मे नही आया।

इस प्रवन्ध मे आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे कृष्णविषयक मान्यताओ पर विचार किया गया है। इस अध्याय मे 'कृष्ण' शब्द की व्युत्पत्ति, भक्ति तथा उसके विविध प्रकार, कृष्ण तथा उनकी उपासना के सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वानो के दृष्टिकोण, ईश्वर के पूर्ण अवतार कृष्ण तथा राधा और रासलीला के सिद्धान्त आदि विषयो का विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय मे कृष्ण-भावना (कल्ट) के प्रादुर्भाव, भागवत धर्म आदि पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय मे आलवारो के वैष्णव आन्दोलन, महाराष्ट्र, मिथिला, वगाल और गुजरात मे हुए वैष्णव आन्दोलनो तथा अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय का अध्ययन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे मैथिली के कवियो का विवरण है। इस प्रसग मे मैथिली के विद्यापति, गोविन्ददास, रामदास, देवनन्द झा, उमापति उपाध्याय, नन्दीपति झा, साहेब रामादेस, रमापति उपाध्याय, रथपाणि झा, भानुनाथ झा, श्रीकान्त गनक, शिवदत्त आदि अनेक कवियो के काव्य का परिचय दिया गया है। चौथे अध्याय मे उपर्युक्त कवियो के काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। पाचवें अध्याय मे मैथिली कृष्णकाव्य मे प्रतिपादित प्रेम का विवेचन किया गया है। छठे अध्याय मे सस्कृत के कवियो से विद्यापति की तुलनात्मक समीक्षा की गयी है। इसी अध्याय मे मैथिली कवियो और हिन्दी के कवियो का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है।

सातवें अध्याय मे मैथिली के कवियो के काव्य मे अभिव्यक्त विचारो का उपस्थापन किया गया है। आठवें अध्याय मे विद्यापति के विरुद्ध लगाये गये आक्षेपो का निराकरण किया गया है। अन्त मे ग्रन्थ का उपसहार है।

## १९८. भारतेन्दुयुगीन कवि

### [१९५७ ई०]

श्री अविनाश चन्द्र अग्रवाल का प्रवन्ध 'भारतेन्दुयुगीन कवि' सन् १९५७ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रवन्ध मे छ परिच्छेद हैं। पहले परिच्छेद मे युगपुरुष के महत्त्व और भारतेन्दु के आविर्भाव-काल की परिस्थितियो पर विचार करके युगप्रवर्तक

की मर्यादावादिता, तुलसी की मान्यताए, तुलसी के नारी-सबधी विचार, 'मानस' मे नारी के विविध रूप आदि की सविस्तार समीक्षा करते हुए उनकी सामाजिक विचारधारा पर प्रकाश डाला गया है।

तदनन्तर राजनीतिक विचारधारा का अध्ययन किया गया है। तत्कालीन शासन-व्यवस्था और तुलसी, तुलसी का राजतन्त्र और जनमत, 'मानस' की राज्य-व्यवस्था, तुलसी का राज्याभिषेक-वर्णन, 'मानस' मे तत्कालीन राज्य-व्यवस्था का चित्रण और आदर्श राजा का स्वरूप तथा मानस मे रामराज्य-वर्णन आदि का विवेचन किया गया है।

तदुपरान्त धार्मिक विचारधारा के अन्तर्गत धर्म के अनेक अर्थों का विवेचन करते हुए 'मानस' मे तुलसी के धर्मचक्र का उपस्थापन किया गया है। 'भक्ति' के अर्थ और महत्व तथा सच्चे भक्त के लक्षण आदि का निरूपण किया गया है। तुलसी की कृतियो मे प्रेम की महत्ता और उसके व्यावहारिक रूप की अभिव्यक्ति का निदर्शन किया गया है। भक्ति के स्वरूप और प्रकार आदि का विवेचन करते हुए भरत के भक्तियोग तथा उनके चरित्र मे साधन-चतुष्टय के सन्निवेश का दिग्दर्शन किया गया है।

तत्पश्चात् आध्यात्मिक विचारधारा पर विचार किया गया है। यह तुलसी के विचारकरूप का अध्ययन है। तुलसी पर वेदो, उपनिषदो आदि का प्रभाव बतलाकर अन्य विविध दर्शनो की दृष्टि से भी तुलसी का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तुलसी के राम की वेदो के निर्गुणब्रह्म, श्रीमद्भागवत के राम आदि से तुलना करते हुए 'मानस के राम की विराट् कल्पना पर विचार किया गया है। तुलसी के ग्रन्थो मे त्रिदेव मे अभेद की स्थापना की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। तुलसी के दार्शनिक अभिप्राय पर आलोचको के विचारो की भी विवेचना की गयी है। तुलसी के समन्वय-प्रयास का महत्वाकन किया गया है। परमात्मा, माया, जीव, जगत् आदि विविध विषयो पर तुलसी के विचारो की चर्चा की गयी है।

## २०२. हिन्दी एकांकी : उद्‌भव और विकास

(हिन्दी-साहित्य मे एकाकी नाटको के उदय, विकास तथा बहुमुखी प्रगति का ऐतिहासिक एव अलोचनात्मक अध्ययन)

[१९५७ ई०]

श्री रामचरण महेन्द्र का प्रबन्ध 'हिन्दी एकाकी उद्‌भव और विकास' सन् १९५७ ई० मे राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। इसका प्रकाशन सन् १९५८ ई० मे साहित्य प्रकाशन, माली-वाडा, नई सडक, दिल्ली, द्वारा हुआ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे दस खड हैं जिनमे पूरे विषय का विवेचन इस प्रकार हुआ है —

खड १ हिन्दी एकाकी का विकास —इसमे एकाकी नाटको की सास्कृतिक रम्परा, प्राचीन साहित्य मे एकाकी, हिन्दी-साहित्य मे एकाकी के तत्वो का नकास, आधुनिक एकाकी का रचना-शिल्प, एकाकी का बडे नाटको से सम्बन्ध या भिन्न-भिन्न प्रकार के एकाकियो का विस्तृत विवेचन है।

खड २ भारतेन्दु-युग मे एकाकी की प्रगति —तत्कालीन नाटक-साहित्य ा परिचय कराते हुए लेखक ने उस युग के एकाकियो का चार धाराओ के न्तर्गत विवेचन किया है—१ राष्ट्रीय ऐतिहासिक धारा, २ सामाजिक ाथार्थवादी धारा, ३ धार्मिक-पौराणिक धारा, ४ हास्य-व्यग्य-प्रधान धारा। ्स खड मे उस युग के एकाकी लेखको की कृतियो का विवेचन है। इसमे ेखक ने हिन्दी मे एकाकी की विस्तृत परम्परा का ऐतिहासिक विवेचन केया है।

खड ३ द्विवेदी युग मे एकाकी का विकास —तत्कालीन राजनैतिक और ामाजिक वातावरण का उल्लेख करते हुए लेखक ने हिन्दी-एकाकी के विकास ने वगला, अग्रेजी और मराठी नाटको का प्रभाव चित्रित किया है। इस युग मे एकाकी की तीन धाराओ का विवेचन हुआ है—१ सामाजिक-व्यग्यात्मक धारा, २ राष्ट्रीय-ऐतिहासिक धारा और ३ धार्मिक-पौराणिक धारा तथा मनुवाद।

खड ४ पाश्चात्य विचारधारा मे प्रभावित द्वितीय उत्थान (१९२५–१९३८)—इस वर्ग मे इग्लैण्ड मे एकाकी की प्रगति, अग्रेजी नाट्य-विधान तथा

पश्चिमी शैली का अनुकरण और पाश्चात्य प्रणाली का हिन्दी मे प्रयोग वाले एकाकी नाटककारो का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसमे रामकुमार वर्मा, उदयशकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ " सेठ गोविन्ददास, भुवनेश्वर प्रसाद, जगदीशचन्द्र माथुर, गणेशप्रसाद f हरिकृष्ण प्रेमी, चतुरसेन शास्त्री, सद्गुरुशरण अवस्थी आदि एकाकीका अध्ययन है।

खड ५. द्वितीय महायुद्ध एव परवर्ती हिन्दी-एकाकी का विकास युद्धोत्तरकालीन एकाकी के विकास के अन्तर्गत नवीन धाराओ (सामा राजनैतिक विचारधारा, मानवतावाद, धार्मिक-पौराणिक धारा, यथातथ्य मनोविश्लेषण तथा सेक्स-सम्बन्धी धारा, रेडियो-एकाकी, टेकनीक-सम्बन्धं प्रयोग) का विवेचन किया गया है। नवीन युग की प्रतिभाओ मे लेर श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रोफेसर अर्जुन चौबे काश्यप, प्रो० जयनाथ न डा० लक्ष्मीनारायण लाल, विमला लूथरा, डा० धर्मवीर भारती आदि एकाकी लेखको की कृतियो और उनकी टेकनीक का विस्तृत विवेचन किर

खड ६ हिन्दी मे रेडियो-एकाकी प्रगति और सभावनाए —इस मे रेडियो-टेकनीक, उपलब्ध साहित्य तथा रेडियो-एकाकीकारो की प्रवृ और साहित्य का विवेचन है। रेडियो मे काम करने वाले एकाकीकारो मे ने विशेष रूप से प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर आदि सोलह नाटककार कृतियो पर प्रकाश डाला है। रेडियो-रूपक, प्रहसन, झलकियाँ, मोनोलॉग के अन्तर्गत मिलने वाले साहित्य का विशेष विवेचन किया गया है।

खड ७ हिन्दी-रगमचीय एकाकी —रगमच की आवश्यकताओ के हीं एकाकी का जन्म और विकास हुआ था। अब भी अनेक लेखक रग शिल्प का विशेष प्रयोग कर रहे हैं। इस खड मे उन एकाकीकारो की और टेकनीक का विवेचन है जो रगमच के लिए खास तौर पर अ एकाकियो की रचना कर रहे हैं। इनमें डा० रामकुमार वर्मा, उदयशक उपेन्द्रनाथ 'अश्क', सेठ गोविन्ददास, हरिकृष्ण प्रेमी आदि की रगमचीय कृ का विवेचन है।

खड ८ काव्य एकाकी का विकास इसमे नाटकीयता और का सम्मिश्रण रखने वाले एकाकियो का विवेचन है। काव्य एकाकियो को ने तीन वर्गों मे विभाजित किया है भावनाट्य, २ गीतिनाट्य ३ अतुकान्त पद्यो मे विरचित पद्य-एकाकी। इस खड मे इन तीनो प्रक कृतियों का अध्ययन है।

खड ६ नवीन हिन्दी-एकाकी का अन्तरग-दर्शन —इस खड मे १ सास्कृतिक धारा, २. इतिहास और राष्ट्रीय विचारधारा तथा ३ सामाजिक समस्याए—इन तीन धाराओ के अन्तर्गत लेखक ने कई धाराए मानी हैं, जैसे सामाजिक कुरीतिया, अमीरी-गरीवी, साम्प्रदायिक समस्याए, पारिवारिक जीवन, आधुनिक सभ्यता और यौन जीवन, मजदूर-किसान और पूजीपति का सघर्ष, ग्राम-सुधार, साहित्यिक समस्याए, भाषा-सम्वन्धी एकाकी, जीवन, कला और सगीत, साहित्य-सम्मेलन और गोष्ठिया, कवियो की जीवनिया, हास्यव्यग्यमय प्रहसन और वाल-एकाकी ।

खड १० हिन्दी-एकाकी का भविष्य —इस खड मे एकाकी की भावी प्रगति पर विचार करते हुए लेखक ने एकाकी और फिल्म, एकाकी और टेलीविजन, कालेज तथा एकाकी रगमच, हिन्दी-एकाकी की त्रुटिया और आवश्यकताए आदि विपयो का विवेचन किया है ।

## २०३. जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक
[१९५७ ई०]

राजस्थान विश्वविद्यालय ने सन् १९५७ ई० मे श्री जगदीशचन्द्र जोशी को नके प्रवन्ध 'जयशकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक' पर पी-एच० डी० की पाधि प्रदान की ।

यह प्रवन्ध तीन खडो मे विभक्त है। प्रथम खड के छ अध्यायो मे इतिहास ा स्वरूप, उसके मूल उत्स, ऐतिहासिक नाटको के रचनातन्त्र और वर्गीकरण, ऐतिहासिक नाटक मे सत्य के स्वरूप और कालक्रम-दोप पर विचार किया गया है। द्वितीय खड के छ अध्यायो मे प्रसाद के ऐतिहासिक नाटको का उद्देश्य वतलाकर उनके कथानक, ऐतिहासिक सत्य, कालयोजना और कालक्रम-दोप का अध्ययन किया गया है। तृतीय खड के तीन अध्यायो मे उनके ऐतिहासिक वातावरण का अनुशीलन है। आरम्भ मे भौगोलिक विवरण प्रस्तुत करके सामाजिक परिस्थितियो (सामाजिक ढाचा, धर्म और देवता, लोकविश्वास, प्रणय-विवाह, खान-पान, वस्त्र और आभूपण, उत्सव, क्रीडा-विनोद, युद्ध, शिक्षा और कला, सगीतकला और साहित्य) का अध्ययन किया गया है। अन्त में राज्यशासन और रणनीति का निरूपण है ।

## २०४. मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता

[१९५७ ई०]

श्री उमाकान्त गोयल का प्रवन्ध 'मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारत संस्कृति के आख्याता' सन् १९५७ ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह दो खडो में विभक्त है। पूर्व मे ग्रन्थ-परिचय, भाव-पक्ष, कलापक्ष और गुप्त जी के अनुवाद ग्रन्थ—अध्याय हैं। उत्तरार्द्ध मे भारतीय सस्कृति के आख्याता मैथिलीशरण तथा हिन्दी-काव्य मे गुप्त जी का स्थान—दो अध्याय हैं। इस प्रवन्ध प्रकाशन हिन्दी अनुसधान-परिषद् दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से नेश पब्लिशिंग हाउस, ९६, दरियागज दिल्ली, ने सन् १९५८ ई० मे किया।

'ग्रन्थ-परिचय' मे काल-क्रम से गुप्त जी की मौलिक कृतियो का प दिया गया है। उन सभी के प्रतिपाद्य, मूल स्रोत तथा मूलरूप मे परिवर्तन उनके कारणो पर विचार हुआ है। 'भाव पक्ष' के पाच भाग हैं। प्रथम भा 'भाव' का अभिप्राय और भावो की सख्या का विवेचन है और फिर गुप्त ज काव्य से विभिन्न भावो (रसो), आलम्वनो, उद्दीपनो, सचारियो, रसा भावोदय, भावशान्ति आदि के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। आलम्बन उद्दीपनगत वैविध्य तथा शास्त्र मे अनुल्लिखित सचारियो का भी निरूपण है। द्वितीय भाग मे गुप्त जी के काव्य की प्रवलता, सूक्ष्मता और सवेदन की समीक्षा है और तृतीय मे उनके काव्य के कतिपय मार्मिक प्रसग व्याख्यान है। चतुर्थ भाग मे कवि की कल्पना और भावोत्कर्ष मे उसके तथा पचम मे भावचित्रण के उद्देश्य पर विचार किया गया है।

'कलापक्ष' के चार विभाग हैं। प्रथम मे मैथिलीशरण जी प्रयुक्त विभिन्न काव्यरूपो तथा द्वितीय मे उनके काव्य-शिल्प की पर्याल है। तृतीय विभाग मे गुप्त जी की भाषा के क्रमिक विकास का आख्यान, भाषा के स्वरूप और सौष्ठव का विवेचन तथा खडीवोली के विकास मे योगदान का आलेखन है। चतुर्थ विभाग मे गुप्त जी के काव्य से अनेक छ उदाहरण उपस्थित किये गये हैं। छदो की प्रसगानुकूलता तथा तुक अन्त्यानुप्रास की समीक्षा भी हुई है। प्रस्तुत प्रवन्ध का चौथा अध्य

'मैथिलीशरण गुप्त के अनुवाद-ग्रन्थ'। इस अध्याय मे आलोच्य कवि द्वारा अनूदित छ पुस्तको का परिचय है और मूल से उनकी तुलना की गयी है।

उत्तरार्द्ध के अन्तर्गत 'भारतीय सस्कृति के आख्याता मैथिलीशरण गुप्त' मे सस्कृति (सामान्य) और उसके तत्वो का आलेखन तथा भारतीय सस्कृति के लक्षण का निरूपण और उसके विभिन्न सोपानो का आख्यान है। इसके पश्चात् गुप्त जी द्वारा गृहीत सस्कृति एव उनके काव्य के सास्कृतिक पृष्ठाधार का व्याख्यान है। अन्तिम अध्याय मे हिन्दी-काव्य मे गुप्त जी का स्थान निर्धारित किया गया है। अन्त मे सहायक पुस्तको की सूची दी गयी है।

## २०५. आचार्य शुक्ल के समीक्षा-सिद्धान्त

[१९५७ ई०]

श्री रामलालसिंह को सन् १९५७ ई० मे उनके प्रबन्ध 'आचार्य शुक्ल के समीक्षा-सिद्धान्त' पर सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली। यह ग्रन्थ सन् १९५८ ई० मे कर्मभूमि-प्रकाशन-मदिर, विश्वेश्वरगज, वाराणसी, मे प्रकाशित हुआ।

इस प्रबन्ध मे नौ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे शुक्ल-पूर्व सैद्धान्तिक आलोचना की प्रमुख प्रवृत्तियो का विवेचन है। ये प्रवृत्तिया परम्परावादी, पुनरुत्थानवादी, नवीनतावादी और समन्वयवादी हैं। द्वितीय अध्याय मे आचार्य शुक्ल की समीक्षा-कृतियो का सामान्य परिचय दिया गया है। तृतीय अध्याय मे शुक्ल जी की समीक्षा-कृतियो के आधार पर उनके जीवन-सिद्धान्तो, अगी धर्म और अगधर्मो तथा उन सिद्धान्तो के स्रोतो का विवेचन है। चतुर्थ अध्याय मे शुक्ल जी के समीक्षा-सिद्धान्तो का निरूपण है। उनके अगी सिद्धान्त (रस-सिद्धान्त) और अगसिद्धान्तो (अलकार, रीति, गुण, वक्रोक्ति, औचित्य और ध्वनि) की व्याख्या की गयी है।

पचम अध्याय मे शुक्ल जी के समीक्षा-सिद्धान्तो के विकास का अध्ययन है। षष्ठ अध्याय मे शुक्ल जी के समीक्षा-सिद्धान्तो के विविध आदर्शो (वस्तुवादी आदर्श, प्रबन्धकाव्य का आदर्श, लोकधर्म का आदर्श, रसादर्श, सास्कृतिक आदर्श, राष्ट्रीय आदर्श, हिन्दी-समीक्षा के पुनर्निर्माण का आदर्श) का अनुशीलन है। सप्तम अध्याय मे उनके समीक्षा-सिद्धान्तो के मूल स्रोतो का अनुसधान

किया गया है। अष्टम अध्याय मे भारतीय एव पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्तो की तुलना मे शुक्ल जी के समीक्षा-सिद्धान्तो का अध्ययन करके उनकी चिन्तनशक्ति की मौलिकता का प्रतिपादन किया गया है। प्रवन्ध के उपसहाररूप मे लिखित नवम अध्याय मे सैद्धान्तिक समीक्षा को शुक्ल जी की देन का मूल्याकन करके उनकी प्रमुख विशेषताओ का उपस्थापन किया गया है।

## २०६. गुप्त जी का काव्य-विकास

[१९५७ ई०]

श्री कमलाकान्त पाठक को उनके प्रवन्ध 'गुप्तजी का काव्य-विकास' पर सन् १९५७ ई० मे सागर विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। मेसर्स रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स दिल्ली, द्वारा इसका प्रकाशन हो रहा है।

प्रस्तुत प्रवन्ध चार खडो मे विभक्त है। ये चार खड भी तेरह अध्यायो मे विभाजित किये गये हैं। पहले अध्याय मे मैथिलीशरण गुप्त की जीवनी का विस्तृत विवरण दिया गया है। दूसरे अध्याय मे गुप्त जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया गया है। तीसरा अध्याय 'जीवन-दर्शन' है जिसके अन्तर्गत केन्द्र-विन्दु, परोक्ष तत्व, देवत्व, दनुजत्व और अतिप्राकृत तत्व, साम्प्रदायिक ऐक्य और धार्मिक समन्वय, जातीयता और राष्ट्रीयता, समाज, राजनीति, धारणा, काव्यकला और समन्वयवाद सर्वांगीण दर्शन नामक ग्यारह शीर्षको से विचार करते हुए गुप्त जी के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला गया है।

काव्य-विकास के निरूपक चौथे अध्याय मे पीठिका और परिवेश का विवेचन किया गया है। भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सास्कृतिक तथा साहित्यिक उत्थान का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पाचवें अध्याय मे कवि की काव्य-कृतियों का क्रम-विकास प्रदर्शित किया गया है। कृतियो का विवेचन करते हुए छठे अध्याय मे निवन्ध-काव्य पर विचार किया गया है। लेखक ने निवन्ध-काव्य के निम्नलिखित ५ भेद माने हैं: (१) आख्यानक लघु निवन्ध, (२) निराख्यानक लघु निवन्ध, (३) आख्यानक वृहत् निवन्ध-काव्य, (४) निराख्यानक वृहत् निवन्ध-काव्य, (५) सकलनात्मक निवन्ध-काव्य।

सातवें अध्याय मे गुप्त जी के खडकाव्यो की समीक्षा की गयी है। आठवें अध्याय मे 'जय भारत' को वृहत् प्रवन्ध मानते हुए उसका अनेक दृष्टियो से

ध्ययन किया गया है। नवें अध्याय में 'साकेत' को महाकाव्य मानते हुए उसके
विविध पक्षो का अत्यन्त विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। 'साकेत' के
ाधार ग्रन्थ, नामकरण, प्रबन्ध-शिल्प, वस्तु-विन्यास, नूतन प्रसगोद्भावनाए,
रित्र-चित्रण, सवाद, वस्तु-निरूपण, भाव-व्यजना, आधुनिकता, सास्कृतिक
हत्व तथा 'साकेत' के महाकाव्यत्व आदि का व्यापक प्रतिपादन किया गया
। दसवें अध्याय मे गुप्त जी के गीति-काव्य का अनुशीलन किया गया है।
ीत-कला का विकास प्रदर्शित करते हुए विभिन्न कालों मे रचित गुप्त जी के
ीतो की समीक्षा की गयी है। ग्यारहवें अध्याय मे अन्य काव्यरूपो की चर्चा की
यी है। 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास' आदि नाट्य-कृतिया, गुप्त जी के मुक्तक तथा
द्य-रचनाए इस अध्याय की विवेच्य वस्तु हैं। बारहवें अध्याय मे गुप्त जी द्वारा
ये गये सस्कृत, बगला और अग्रेजी काव्यो तथा नाटको के अनुवादो का
ध्ययन किया गया है। उनकी इस प्रवृत्ति का उनके काव्य-विकास पर क्या
भाव पडा, यह भी निर्दशित किया गया है।

तेरहवा अध्याय क्रिया-कल्प का है। इस अध्याय मे शैली, भाषा, तथा
न्द की दृष्टि से गुप्त जी के काव्य-प्रयास की परीक्षा की गयी है। प्रबन्ध के
न्त मे नौ परिशिष्ट हैं, जिनसे गुप्त जी के विषय मे विशेष जानकारी तो
पलब्ध होती ही है, प्रबन्ध का अनुसधानात्मक मूल्य भी बढ जाता है। ये परि-
ाष्ट इस प्रकार हैं (१) ग्रन्थ-रचना-सूची, (२) मगलाचरण-सूची, (३)
वलिखित भूमिकादि की सूची, (४) अन्यलिखित प्राक्कथन आदि की सूची,
५) समर्पण-सूची, (६) अप्रकाशित स्फुट रचनाए, (७) सन् १९०५ से सन्
९१७ तक 'सरस्वती' मे प्रकाशित गुप्त जी की कविताए, (८) गद्य-रचनाए
९) समीक्षा-साहित्य।

## २०७. भारतेन्दु-युग के नाटककार

[१९५७ ई०]

श्री भानुदेव शुक्ल को उनके प्रबन्ध 'भारतेन्दु-युग के नाटककार' पर सागर
श्वविद्यालय से सन् १९५७ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

## २०८. हिन्दी और मराठी का निर्गुण-सन्त-काव्य (११वीं से १५वी शती : तुलनात्मक अध्ययन)

[१९५८ ई०]

श्री प्रभाकर माचवे का शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी और मराठी का निर्गुण-सन्त-काव्य (११वी से १५वी शती तुलनात्मक अध्ययन)' सन् १९५८ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रवन्ध पाँच खडो मे विभाजित है। प्रथम खड 'विषय-प्रवेश' है। इसमे भारतीय साहित्य के अन्त सूत्र, प्रस्तुत अनुसन्धान के दृष्टिकोण और निर्गुण-सन्त-काव्य के वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता का प्रतिपादन करके रहस्यवाद-विषयक उपलब्ध सामग्री का साहित्यिक एव दार्शनिक दृष्टिकोणो से विवेचन किया गया है। द्वितीय खड मे मराठी के निर्गुण-सन्त साहित्य की विशेषताओ का अध्ययन है। चक्रधर और महानुभाव पथ की, गोरक्षानाथ और वेदान्त की, दाक्षिणात्य शैव उपासना तथा परवर्ती गाणपत्य दत्तात्रय सम्प्रदाय आदि की विस्तार से चर्चा की गयी है। मराठी सन्तकवियो की दार्शनिक मान्यताओ और विश्वासो (जीव, जगत् तथा परमतत्त्व की परिकल्पनाओ) का सोदाहरण स्पष्टीकरण है। तत्पश्चात् ज्ञानेश्वर, नामदेव, महानुभावपथी कवियो तथा एकनाथ आदि का मूल्याकन है। निर्गुण-कवियो द्वारा प्रयुक्त सामान्य प्रतीको और सकेतो तथा उनमे पायी जाने वाली लोकोत्तर अभिव्यजना की प्रवृत्ति का विश्लेषण है। अन्त मे मराठी निर्गुणकवियो के रहस्यवाद और उसके प्रभाव का भी ऐतिहासिक विवेचन है।

तृतीय खड मे हिन्दी के निर्गुण-सन्त-काव्य का उपर्युक्त पद्धति से अध्ययन किया गया है। नाथ-सम्प्रदाय, सहजयान और बौद्ध प्रभाव, सिद्ध-साहित्य तथा सूफीमत की परम्पराओ, दार्शनिक विश्वासो और मान्यताओ (अद्वैतवाद, सत और निरजन, जीव, जगत् और परमतत्त्व के विषय मे परिकल्पना), निर्गुण कवियो के परम्परानुकरण और मौलिकता आदि पर विचार किया गया है। हिन्दी के निर्गुणकाव्य मे प्रयुक्त सामान्य प्रतीको तथा सकेतो, उलटबासियो आदि के रूप मे पायी जाने वाली लोकोत्तर अभिव्यजना की प्रवृत्ति, परवर्ती काव्य पर रहस्यवाद के प्रभाव आदि का अनुशीलन किया गया है। चतुर्थ खड मे तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमे हिन्दी और मराठी के

निर्गुण-सन्त-काव्य की चिन्तनपरक समानता और गुण-दोषो की गवेषणात्मक विवेचना की गयी है। दोनो भाषा-क्षेत्रो की भिन्नता के कारण दोनो भाषाओ के निर्गुण-सन्त-काव्य की अभिव्यजना मे जो अन्तर आया है उसके कारणो की भी छानबीन की गयी है। कबीर और चक्रधर के काव्य-दर्शन, दोनो भाषाओ के रचनाकार नामदेव तथा दोनो भाषाओ के निर्गुण-सन्त-कवियो की स्फुट गीतरचना का अलग-अलग तीन अध्यायो मे विशेष रूप से व्यापक परिशीलन है। खड के अन्त मे दोनो भाषाओ की निर्गुण-कविता मे प्रयुक्त शब्दावली की समानता एव असमानता का भी निदर्शन है।

अन्तिम खड उपसहार है। इसमे रहस्यवाद की तत्कालीन परिभाषा का परीक्षण उपर्युक्त विवेचन के आधार पर किया गया है। रहस्यवाद के एक प्रमुख विषय ससीम आत्मा के एकान्त और विरह-व्यंजना पर नये ढग से प्रकाश डाला गया है। कुछ मौलिक निष्कर्षों की स्थापना की गयी है। परवर्ती भारतीय काव्य पर (दोनो भाषाओ मे) इस रहस्यवाद की परम्परा का क्या प्रभाव पडा इसका तुलनात्मक विवेचन है। आगे चलकर उस प्रकार की कविता के अप्रचलन के कारणो का भी निरूपण किया गया है। इस प्रकार इस शोध-ग्रन्थ मे भारतीय साहित्य की अभेदात्मकता को ध्यान मे रखकर हिन्दी और मराठी सन्त-काव्य की परिस्थितियो, प्रादुर्भाव तथा विकास के अध्ययनपूर्वक दोनो की दार्शनिक मान्यताओ एव साहित्य-कला की तुलनात्मक मीमासा की गयी है।

## २०९. रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय

### [१९५८ ई०]

डा० भगवती प्रसाद सिह का शोध-प्रबन्ध 'रामभक्ति मे रसिक-सम्प्रदाय' सन् १९५८ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की डी० लिट० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ मुद्रित रूप मे ही प्रस्तुत किया गया था। इसका प्रकाशन अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर, से स० २०१४ मे हुआ।

इस ग्रन्थ मे पाच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे प्रतिपाद्य विषय का सक्षिप्त परिचय देकर तत्सबधी विवेचनात्मक साहित्य ('रसिक प्रकाश भक्तमाल' से लेकर 'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रिया' तक) की परीक्षा की गयी है। दूसरे अध्याय मे रामभक्ति मे रसिक-भावना का विकास दिखलाया गया है। आरम्भ मे राम

वना के रूप मे भारतेन्दुयुगीन और द्विवेदीयुगीन हिन्दी-निबन्ध का सक्षिप्त निरूपण करके शुक्ल जी की मौलिकता, बुद्धि और हृदय का योग, गूढ गुम्फित विचार परम्परा, पूर्वपक्ष की योजना, विषय-लग्नता, विवेचन की प्रक्रिया, व्यक्तित्व का प्रक्षेपण, गोचरविधान, व्यग-विनोद, भाषा की समाहारशक्ति एव भाषा स्वरूप—इन शीर्षको के अन्तर्गत शुक्ल जी के निबन्ध-साहित्य का अध्ययन किया गया है। आठवें अध्याय मे उनके जीवनी-साहित्य (राधाकृष्णदास का जीवनचरित्र), नवें अध्याय मे कहानी (ग्यारह वर्ष का समय) और दसवें अध्याय मे काव्य-विशेषताओ की समीक्षा है। ग्यारहवे अध्याय मे उनके इतर-साहित्य (भूमिका, सम्पादन, अनुवाद आदि) का विवेचन है। परिशिष्ट मे शुक्ल जी की जीवनी और व्यक्तित्व का सक्षिप्त परिचय तथा उनकी कृतियो की सूची भी दे दी गयी है।

## २११. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य

[१९५८ ई०]

श्री गोविन्दराम शर्मा का प्रवन्ध 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य' पजाब विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए सन् १९५८ ई० मे स्वीकृत हुआ। यह प्रवन्ध सन् १९५९ ई० मे हिन्दी-साहित्य-ससार, नई सडक, दिल्ली, से प्रकाशित हुआ है।

इसमे कुल बारह अध्याय हैं। पहले अध्याय मे महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन किया गया है। महाकाव्य-विषयक भारतीय और पाश्चात्य आदर्शों की तुलना के अनन्तर महाकाव्य के स्थायी लक्षण निश्चित किये गये हैं। दूसरे अध्याय मे सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश के महाकाव्यो की परम्परा पर प्रकाश डाला गया है और हिन्दी-महाकाव्यो पर उनके प्रभाव की समीक्षा की गयी है। तीसरे अध्याय मे हिन्दी के प्राचीन महाकाव्यो का विवेचन है। हिन्दी के प्राचीन महाकाव्यो मे 'पृथ्वीराजरासो', 'पदमावत' और 'रामचरितमानस' सम्मिलित हैं। चौथे अध्याय मे आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यो की प्रमुख प्रवृत्तियो की तथा उन पर वर्तमान युग की परिस्थितियो के प्रभाव की समीक्षा की गयी है। अध्याय के अन्त मे आधुनिक महाकाव्यो को तीन वर्गों मे विभक्त किया

गया है—(१) प्रमुख महाकाव्य, (२) अन्य महाकाव्य और (३) तथाकथित महाकाव्य ।

पाचवें अध्याय मे महाकाव्य की दृष्टि से 'प्रियप्रवास' का मूल्याकन किया गया है । अन्त मे भागवत, मेघदूत, सूरसागर, नन्ददास के 'भ्रमरगीत', कविरत्न सत्यनारायण के 'भ्रमरगीत' आदि के साथ 'प्रियप्रवास' की तुलना करते हुए 'प्रियप्रवास' पर विविध कृतियो के प्रभाव की समीक्षा की गयी है । छठे अध्याय मे महाकाव्य के रूप मे 'साकेत' की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है । इसी अध्याय मे वाल्मीकि-रामायण, रामचरितमानम और रामचन्द्रिका के साथ 'साकेत' की तुलना करते हुए उस पर पूर्ववर्ती कवियो के प्रभाव का विवेचन भी किया गया है । सातवें अध्याय मे महाकाव्य की दृष्टि से 'कामायनी' का विवेचन तथा मूल्याकन किया गया है । आठवें अध्याय मे कथावस्तु, चरित्रचित्रण, प्रकृति-वर्णन और भाषाशैली आदि (महाकाव्य के) तत्वो के आधार पर 'वैदेही-वनवास' की समीक्षा की गयी है । नवा अध्याय 'कृष्णायन' से सम्बन्ध रखता है । महाकाव्य की दृष्टि से 'कृष्णायन' की ममीक्षा के पश्चात् 'कृष्णायन' पर महाभारत, गीता, सूरसागर, रामचरितमानस और प्रियप्रवास आदि विविध रचनाओ का प्रभाव स्पष्ट किया गया है । दसवें अध्याय मे 'साकेतसन्त' के महाकाव्यत्व की समीक्षा की गयी है । साथ ही 'साकेतसन्त' पर नवयुग के प्रभाव का स्पष्टीकरण और 'साकेत' के साथ उसकी तुलना भी की गयी है ।

ग्यारहवें अध्याय मे अन्य महाकाव्यो की समीक्षा है । अन्य महाकाव्यो मे (१) नूरजहा, (२) सिद्धार्थ, (३) दैत्यवश, (४) अगराज, (५) वर्द्धमान, (६) रावण, (७) जयभारत और (८) पार्वती की गणना की गयी है । बारहवें अध्याय मे तथाकथित महाकाव्यो के महाकाव्यत्व की आलोचना की गयी है । इस श्रेणी मे (१) रामचरितचिन्तामणि, (२) श्री रामचन्द्रोदय काव्य, (३) हल्दीघाटी, (४) कृष्णचरितमानस, (५) कुरुक्षेत्र, (६) आर्यावर्त, (७) जौहर, (८) महामानव (९) विक्रमादित्य, (१०) जननायक, (११) जगदालोक और (१२) देवार्चन—इन कृतियो को स्थान दिया गया है । 'उपसहार' मे प्रबन्ध का साराश दिया गया है । अन्त मे तीन परिशिष्ट हैं, पहले परिशिष्ट मे पाश्चात्य महाकाव्यो का परिचय दिया गया है, जिनमे इलियड, ओडिसी, इनियड, डिवाइन कॉमेडी और पैराडाइज लॉस्ट सम्मिलित हैं । दूसरे परिशिष्ट मे 'साकेत' तथा अन्य विविध कवियो के पद्य तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रस्तुत किये गये हैं । तीसरे परिशिष्ट मे बगला के महाकाव्यो पर प्रकाश डाला गया है । इनमे कृत्तिवास-कृत रामायण, काशी रामदास कृत 'महाभारत', आलावाल

कृत 'पद्मावती', माइकेल मधुसूदन कृत 'मेघनादवध' और हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय कृत 'वृत्रसहार' सम्मिलित हैं।

## २१२. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन एवं आधुनिक साहित्य [१९००-५० ई०]

[१९५८ ई०]

श्री कृष्ण बिहारी मिश्र का प्रबन्ध 'आधुनिक सामाजिक आन्दोलन एव आधुनिक साहित्य (१९००-५० ई०)' सन् १९५८ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है।

इस प्रबन्ध के पाच अध्यायो मे बीसवीं शती ई० के पूर्वार्ध के हिन्दी-साहित्य मे चित्रित सामाजिक आन्दोलनो का विवेचन एव विश्लेषण करके यह स्थापना की गयी है कि हमारे साहित्य-स्रष्टाओ ने सामाजिक परिवर्तन के लिए मार्ग-निर्देशन भी किया है और तदर्थ प्रेरित आन्दोलनो का बौद्धिक नेतृत्व भी। प्रथम अध्याय मे वैदिक युग से लेकर अठारहवी शती ई० तक के सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और हिन्दी साहित्य की परम्परा का सिंहावलोकन करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि साहित्य-धारा समाज का किस प्रकार सिंचन और पोषण करती रही है। द्वितीय अध्याय मे यह प्रतिपादित किया गया है कि उन्नीसवी शताब्दी तक आते-आते भारत मे अत्यन्त महत्वपूर्ण, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन घटित होते हुए दिखायी दिये। भारतेन्दु और उनके सहयोगियो ने सामाजिक सास्कृतिक क्षेत्र मे व्याप्त रूढिवाद, अन्ध परम्परा-पालन और गतानुगतिकता का खडन किया तथा महत्वपूर्ण राजनैतिक एव आर्थिक प्रश्नो पर भी दृष्टि डाली। देश के आर्थिक दासत्व, विदेशी वस्तुओ के आयात से दिनोदिन बढने वाली दरिद्रता और 'आर्म्स ऐक्ट' के मूल मे निहित राजनैतिक अविश्वास तथा कूटनीति आदि पर भी रोष प्रकट किया।

तृतीय अध्याय मे द्विवेदीयुगीन कवियो नाथूराम 'शकर', अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि एव अध्यापक पूर्णसिंह आदि अन्य साहित्यकारों के साहित्य मे अभिव्यक्त कृषको और श्रमिको की शोचनीय अवस्था, हिन्दू जाति-व्यवस्था, सयुक्तपरिवार-प्रणाली, शासको की

साम्प्रदायिकता, अनमेल विवाह, विधवा-प्रथा आदि से सम्बन्ध रखने वाले सामाजिक आन्दोलनो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे राजनैतिक परिस्थिति का विवेचन करके यह बतलाया गया है कि छायावादी युग (१६१८-१६३५ ई०) मे आर्थिक क्षेत्र मे भयकर मन्दी आयी जिससे जनता को अपार कष्ट हुआ। सामाजिक क्षेत्र मे नारी को देश की मुक्ति के प्रयास मे अपनी सकीर्ण सीमाओ से मुक्ति मिली और अस्पृश्यो को गाधी जी के रूप मे अपने अधिकारो का एक बडा समर्थक प्राप्त हुआ। प्रेमचन्द, माखनलाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला,' जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, विशम्भरनाथ शर्मा, महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा आदि की रचनाओ मे इस युग के सामाजिक आन्दोलनो का चित्रण है। पचम अध्याय मे प्रगतिवादी युग (१६३६-१६५० ई०) के हिन्दी-साहित्य मे चित्रित आन्दोलनो की समीक्षा की गयी है। इस युग मे समाजवादी और साम्यवादी आन्दोलन शक्तिशाली हुए तथा पुनरुत्थानवाद की प्रकृति भी स्पष्ट रूप मे लक्षित हुई। यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', रामेश्वर शुक्ल 'अचल', नरेन्द्र शर्मा, शिवमगलसिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, रागेय राघव, उदयशकर भट्ट आदि इस युग के सामाजिक आन्दोलनो के चित्रकार है जिनकी रचनाओ मे प्रमुख सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक एव धार्मिक प्रश्नो को उठाया गया है और उनका सम्यक् विवेचन तथा विश्लेषण किया गया है।

## २१३. रीतिकालीन काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध (संवत् १७००-१६००)

[१६५८ ई०]

कुमारी उमा मिश्र का प्रवन्ध 'रीतिकालीन काव्य और सगीत का पारस्परिक सम्बन्ध' सन् १६५८ ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। प्रवध अभी अप्रकाशित है।

यह अन्वेप-प्रवन्ध दो खडो और नौ परिच्छेदो मे विभक्त है। भूमिका-खड मे तीन परिच्छेद हैं जिनमे से प्रथम परिच्छेद विषय-प्रवेश और उसके क्षेत्र-विस्तार से सम्बद्ध है। इसके 'क' भाग मे सगीत की प्रशस्ति है जिसका

उद्देश्य यह दिखाना है कि सगीत और जीवन का पारस्परिक सम्बन्ध कितना घनिष्ठ है। इस परिच्छेद का 'ख' भाग काव्य और सगीत के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। कविता मे सगीत का समायोग या तो आन्तरिक या फिर आन्तरिक और बाह्य दोनो प्रकार के सगीत के रूप मे रहा करता है। इस अन्वेष-प्रबन्ध की केन्द्रीय स्थापना का यह तत्त्व एक अपरिहार्य अग है।

भारतीय सगीत की प्राय सभी प्रमुख बातो का उल्लेख दूसरे परिच्छेद मे किया गया है। इस परिच्छेद को तीन भागो मे विभक्त किया गया है। 'क' भाग मे सगीत का पारिभाषिक अर्थ और भारतीय सगीत की दो प्रणालियो का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त भारतीय सगीत की परिवर्तनशीलता को भी यही स्पष्ट कर दिया गया है। 'ख' भाग मे भारतीय सगीत का रीतिकाल से पूर्व का सक्षिप्त इतिहास वर्णित है, और 'ग' भाग मे रीतिकाल से पहले की भारतीय सगीत की प्रमुख शैलियो का आलोचनात्मक अध्ययन है। तीसरा परिच्छेद गीति-काव्य से सम्बद्ध है क्योकि विभिन्न काव्य-रूपो मे गीतिकाव्य का सम्बन्ध सगीत से सर्वाधिक होता है। इस परिच्छेद के 'क' भाग मे गीतिकाव्य के स्वरूप का विवेचन तथा 'ख' भाग मे रीतिकाल से पूर्व हिन्दी मे गीतिकाव्य का इतिहास उल्लिखित है।

शोध-खड का आरम्भ चौथे परिच्छेद से होता है। यह परिच्छेद रीति-कालीन परिस्थितियो से सम्बद्ध है जिसमे तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो का उल्लेख करते हुए यह दिखाया गया है कि इन सबसे प्रेरित होकर रीतिकाल की कलागत प्रवृत्तिया किस दिशा मे अग्रसर हो रही थी। इस परिच्छेद मे वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, काव्य और सगीत की कलागत प्रवृत्तियो के पारस्परिक साम्य पर भी प्रकाश डाला गया है।

पाचवें परिच्छेद का प्रतिपाद्य रीतिकालीन सगीत है। इसके 'क' भाग मे इस युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वर्णित है और 'ख' भाग मे रीतिकालीन सगीत की प्रमुख शैलियो का शास्त्रीय अध्ययन उपस्थित किया गया है। छठे परिच्छेद मे रीतिकालीन काव्य-प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए उनका उन तत्कालीन सागीतिक प्रवृत्तियो से पारस्परिक सम्बन्ध दिखाया गया है जिनका उल्लेख पाचवें परिच्छेद मे हुआ है। सातवें परिच्छेद मे रीतिकालीन छद और अलकार योजना का सगीत से पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है।

आठवें परिच्छेद मे रीतिकालीन प्रमुख काव्यरूपो का सगीत से सम्बन्ध बतलाया गया है। इसके 'क' भाग मे रीतिकालीन गीतिकाव्य और सगीत के

ाम्बन्ध का, 'ख' भाग मे रीतिकालीन मुक्तक काव्य और सगीत के सम्बन्ध का ाथा 'ग' भाग में रीतिकालीन प्रबन्ध-काव्य और सगीत के सम्बन्ध का व्याख्यान । नवें परिच्छेद मे ग्रन्थ का उपसहार है जिसमे अध्ययन के परिणामस्वरूप ापलब्ध निष्कर्षों का निरूपण किया गया है ।

## २१४. मतिराम : कवि और आचार्य

[१९५८ ई०]

श्री महेन्द्रकुमार का प्रबन्ध 'मतिराम कवि और आचार्य' सन् १९५८ ई० ा दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ । यह ान्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है ।

इस प्रबन्ध मे ग्यारह अध्याय हैं । प्रथम अध्याय मे मतिराम-विषयक सामग्री ी परीक्षा की गयी है । शिवसिंह सेंगर, गार्सादतासी, मिश्रबन्धु, भगीरथ प्रसाद ोक्षित, याज्ञिक-त्रय, रामनरेश त्रिपाठी, कृष्णविहारी मिश्र तथा विश्वनाथ साद मिश्र द्वारा विवेचित जीवनवृत्त-सम्बन्धी सामग्री, मिश्रबन्धु, कृष्ण विहारी मश्र, रामचन्द्र शुक्ल, डा० 'रसाल', 'हरिऔध', हरदयालसिंह, डा० किरण कुमारी ुप्त तथा प० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत काव्य-विषयक सामग्री एव डा० ागीरथ मिश्र, डा० नगेन्द्र, प्रभुदयाल मीतल, डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ीर डा० ओम् प्रकाश द्वारा प्रस्तुत आचार्यत्व-विषयक सामग्री की समीक्षा की ायी है ।

द्वितीय अध्याय मे मतिराम के जीवनवृत्त और व्यक्तित्व का उपस्थापन । 'मतिराम नामधारी दो व्यक्तियो की कल्पना, जन्म-सवत्, वर्ग, गोत्र आदि, ाता का नाम, वश-परम्परा, जन्म-भूमि, निवास-स्थान, गुरु और सम्प्रदाय, ाश्रयदाता, यात्राओ, किवदन्तियो, मृत्यु-सवत्, वेशभूषा, प्रकृति-स्वभाव, प्रतिभा, ाध्ययन आदि पर विचार किया गया है ।

तृतीय अध्याय मे मतिराम के ग्रन्थो का परिचय है । 'फूल-मजरी', 'रस-राज' ललित-ललाम', 'मतसई', 'अलकार-पचाशिका', 'वृत्त-कौमुदी', 'लक्षण-शृगार', ााहित्य-सार' और 'बरवै नायिका-भेद' की प्रामाणिकता आदि पर पृथक्-पृथक् विचार किया गया है । अन्तिम कृति को अनुसन्धाता ने मतिराम-सपादित नही माना है ।

चतुर्थ अध्याय मे मतिराम की कविता के प्रतिपाद्य विषयो (शृगार, राज प्रशस्ति, धर्म-नीति, प्रकृति और राज-वैभव) का विवेचन है। पचम अध्याय मे मतिराम की शृगारिक कविता (सयोग-शृगार, विप्रलम्भ-शृगार, प्रेम का स्वरूप) की समीक्षा की गयी है। षष्ठ अध्याय का प्रतिपाद्य मतिराम का वीर-काव्य है। आरम्भ मे वीर रस का स्वरूप (स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सचारी) बतला कर मतिराम के वीरकाव्य और राज-विषयक रति का शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन किया गया है। सप्तम अध्याय मे मतिराम के धार्मिक सिद्धान्तो और नैतिक दृष्टि के आधार पर उनकी विचारधारा का अनुशीलन है। अष्टम अध्याय मे मतिराम के प्रकृतिवर्णन और राजवैभव-वर्णन की विवेचना की गयी है।

नवम अध्याय में मतिराम की कला की समीक्षा है। 'कला' शब्द और उसके अगो, काव्य के प्रसाधन, व्रजभाषा के व्याकरण की विशेषताओ आदि का विवेचन करके मतिराम की भाषा के शब्द-समूह, गुण-दोष, सौष्ठव (शब्दालकार, अर्थध्वनन, गुण, रीति-वृत्ति), शब्द-शक्ति (अभिधा, लक्षणा, व्यजना), मुहावरो-कहावतो, उक्ति-वैचित्र्य आदि की आलोचना है। अध्याय के अन्त मे कवित्त, सवैया और दोहा छन्दो का सक्षिप्त इतिहास और विशेषताए बतलाकर मतिराम की कविता में इनके प्रयोग का मूल्याकन है।

दशम अध्याय में मतिराम के आचार्यत्व का आकलन है। उनके शृगार निरूपण, नायक-नायिका-भेद, अलकार और पिंगल सम्बन्धी विचारो का विस्तृत अध्ययन किया गया है। एकादश अध्याय मे मतिराम पर पूर्ववर्ती कवियो तथा परवर्ती कवियो पर मतिराम के प्रभाव का निदर्शन करके हिन्दी-साहित्य में मतिराम का स्थान निर्धारित किया गया है।

## २१५. केशव और उनका साहित्य

[१९५८ ई०]

श्री विजयपाल सिंह का प्रबन्ध 'केशव और उनका साहित्य' सन् १९५८ ई० मे अलीगढ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस शोध-प्रवन्ध को नौ अध्यायो मे विभाजित किया गया है। 'विषय-प्रवेश' प्रथम अध्याय है। इसमें विषय का क्षेत्र, विषय पर शोध की आवश्यकता, उपलब्ध सामग्री का उपयोग, शोध-कार्य का दृष्टिकोण, प्रस्तुत शोध का स्वरूप तथा मौलिकता पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे केशव के जीवन-वृत्त का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमे केशव की जन्मतिथि, जाति, वश, गुरु एव आश्रयदाताओ का विवेचनात्मक परिचय देते हुए केशव और विहारी के सम्वन्ध का विवेचन उपस्थित किया गया है। इसके अनन्तर कुछ विशिष्ट व्यक्तियो के साथ केशव के सम्वन्ध एव उनके शास्त्रीय तथा व्यावहारिक ज्ञान आदि की चर्चा की गयी है।

तृतीय अध्याय मे केशव की रचनाओ का परिचय दिया गया है और उनकी प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे केशवकालीन परिस्थितियो का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एव साहित्यिक परिस्थितियो का निरूपण करके अन्त मे इन सभी परिस्थितियो का केशव पर जो प्रभाव पडा है उसका विवेचन किया गया है। पचम अध्याय मे केशव के जीवन-दर्शन का अध्ययन किया गया है। जिसमे दर्शन, भक्ति एव धर्म का विवेचन है।

छठे अध्याय मे केशव के आचार्यत्व का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। केशव का आचार्य-रूप मे मूल्याकन तीन दृष्टियो से हुआ है—ऐतिहासिक दृष्टि से, अध्ययन की प्रौढता की दृष्टि से तथा मौलिकता की दृष्टि से। अनुसन्धाता का विश्वास है कि समस्त मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य मे केशव के समान कोई प्रौढ एव मौलिक आचार्य नही हुआ। सातवें अध्याय मे केशव के काव्यपक्ष को ध्यान मे रखकर काव्यागो का विवेचन किया गया है, जैसे रस-व्यजना, अलकार-योजना एव प्रकृति-चित्रण। उनकी प्रवन्ध-पटुता, चरित्र-चित्रण, सवाद-योजना, छन्दोविधान एव भाषाधिकार पर भी विचार किया गया है।

अष्टम अध्याय मे केशव के आदान-प्रदान का विवेचन है। आदान मे विशेषकर 'रामचन्द्रिका', 'विज्ञानगीता', 'रसिकप्रिया' एव 'कविप्रिया' से सस्कृत-कवियों एव आचार्यों के ग्रथो से भाव-साम्य दिखलाया गया है। प्रदान मे भी रीतिकाल के कवियो और आचार्यो पर केशव के प्रभाव का निरूपण एव आधुनिक युग पर उनके छायाभासो का वर्णन है।

अन्तिम एव नवम अध्याय मे केशव का हिन्दी-साहित्य में स्थान निर्धारित

किया गया है। केशव हिन्दी-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनः महत्व का कई पक्षो को ध्यान मे रखकर विवेचन किया गया है। कवि के व धरातल हैं—प्रतिभा एव व्युत्पत्ति। दोनो धरातलो पर विभिन्न दृष्टियो केशव का स्थान निर्धारित करते हुए लेखक इस निष्कर्ष पर पहुचा है कि आचार्यत की दृष्टि से केशव का स्थान समस्त मध्यकालीन हिन्दी-कवियो मे सर्वश्रेष्ठ है कवित्व की दृष्टि से उनका स्थान सूर-तुलसी से घटकर नही है।

## २१६. निर्गुण-साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

[१९५८ ई०]

श्री मोतीसिंह को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् १९५८ ई० मे उन प्रबन्ध 'निर्गुण-साहित्य की सास्कृतिक पृष्ठभूमि' पर पी-एच० डी० की उपाि प्राप्त हुई।

इस ग्रन्थ मे नौ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे भारतीय धर्म के मूल स्रोत आर्य और आर्येत्तर तत्त्वो, भारतीय चिन्ता के समन्वयात्मक रूप, सस्कृति सामाजिक और समष्टिमूलक स्वरूप तथा वैदिक काल से सन्तकाल तक प्रवाह-क्रम का दिग्दर्शन कराकर भारतीय सस्कृति और साहित्य की भूमिका निर्गुण-पन्थ का आविर्भाव बतलाया गया है।

द्वितीय अध्याय मे निर्गुण-साहित्य का परिचय है। उसकी खण्डनात्म तथा श्रद्धामूलक सामान्य प्रवृत्तियो एव कुछ विशिष्ट मतो (सहज-सम्प्रदा नाथ-सम्प्रदाय, कबीर-मत, दादूमत, नानक-मत, निरजन-मत और सूफीमत का निरूपण किया गया है।

तृतीय अध्याय मे निर्गुणमत के सहजसम्प्रदाय, नाथसम्प्रदाय और रसेश्व सम्प्रदाय का विवेचन है। चतुर्थ अध्याय मे निर्गुणमत के कबीरपथ, गुरु नान और सिक्खसम्प्रदाय, परब्रह्म-सम्प्रदाय (दादू दयाल) तथा सूफी सम्प्रदाय व विभिन्न दृष्टियो से व्यापक अध्ययन किया गया है।

पचम अध्याय मे निम्नाकित शीर्षको के अन्तर्गत निर्गुण-सम्प्रदाय की दाव निक भूमि स्पष्ट की गयी है—अद्वैतवाद और निर्गुणमत, द्वैताद्वैत-विलक्षणवा आत्मतत्व की उपलब्धि, शाकर अद्वैत और सन्तमत, आत्मज्ञान और आत्म-

, वोध, भावनामूलक अद्वैतवाद, दार्शनिक प्रतीक, निर्गुण ब्रह्म, निर्गुणमत में माया का स्वरूप, निर्गुनी भक्त और माया।

षष्ठ अध्याय मे निर्गुण-सम्प्रदाय की सामाजिक पृष्ठभूमि का निरूपण है। धर्म और समाज, समाज-सगठन और अन्तर्भूत द्वन्द्व, आर्य और आर्येत्तर सस्कृतियो का सगम, भक्ति का मूल उत्स, सगुणभक्ति का विकास, निर्गुणब्रह्म और भक्ति, निर्गुण साहित्य का आविर्भाव और तत्कालीन सामाजिक स्थिति, मध्यकालीन वर्ण और जाति व्यवस्था, ब्राह्मणश्रेष्ठता का प्रतिपादन, शूद्रो की स्थिति, सामाजिक विषमता के पोषक विधान, मुस्लिम आक्रमण और प्रभाव, मध्यकालीन भक्ति का उद्भव और इस्लाम आदि विषयो का इस अध्याय मे विवेचन किया गया है।

'निर्गुण-सम्प्रदाय मे सृष्टि-प्रक्रिया' नामक सप्तम अध्याय मे कवीरपथ मे सृष्टिप्रक्रिया का अध्ययन है। इसमे भागवत पुराण, मनुस्मृति, और साख्य दर्शन मे प्रतिपादित सृष्टि-रचना का भी तुलनात्मक दिग्दर्शन है। अष्टम अध्याय में निर्गुणमत के देवता-मण्डल (निरजन, आदि शक्ति, विष्णु और कूर्म) का अनुशीलन है। नवम अध्याय मे निर्गुणमत की पौराणिक प्रवृत्तियो (अलौकिकत्व का आरोप और अवतारवाद, विभिन्न लोको की कल्पना, अलौकिक कथाओ की उद्भावना, स्वर्ग-नरक की कल्पना तथा कर्मकाड का सन्निवेश) की विवेचना है।

उपसहार मे सत-साहित्य की प्रगतिशीलता (निम्नजन्मा साधको का साहस, सन्तो की सामाजिक और व्यक्तिवादी दृष्टि, नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण, श्रम का महत्व तथा उच्चता का प्रतिमान) का आकलन है।

## २१७. मुक्तककाव्य-परम्परा के अन्तर्गत विहारी का विशेष अध्ययन

[१९५८ ई०]

श्री रामसागर त्रिपाठी का प्रवन्ध 'मुक्तककाव्य-परम्परा के अन्तर्गत विहारी का अध्ययन' सन् १९५८ ई० में आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रबन्ध मे दो खड हैं। प्रथम खड के पहले अध्याय मे 'मुक्तक' और उसके प्रारम्भिक रूप का विवेचन है। 'मुक्तक' के विभिन्न अर्थों और प्रवृत्तियो का अनुसन्धान करके उसके क्षेत्र और भेदोपभेद का निरूपण किया गया है। दूसरे अध्याय मे रसात्मक मुक्तको का अध्ययन है। रसात्मक मुक्तको के विकास के तीन चरण हैं। प्रथम चरण प्रकृतिकाल है। इसके अन्तर्गत वैदिक काव्य, थेर गाथा, थेरी गाथा आदि का विवेचन है। द्वितीय चरण प्राकृत-काल है। इसके अन्तर्गत राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थितियो का विवेचन करके प्राकृत और अपभ्रश भाषा के मुक्तकों की सामान्य विशेषताओ, प्रमुख रचनाओ तथा कवि-कवयित्रियो का अनुशीलन है। तृतीय चरण भक्ति-काल है। आरम्भ मे सामयिक परिस्थितियो का विवेचन करके भक्तिकालीन मुक्तको की सामान्य विशेषताओ और प्रमुख कवियो का अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्याय मे रसेतर मुक्तको का अध्ययन है। वैदिक पृष्ठभूमि का निर्देश करके पौराणिक, बौद्ध और जैन स्तोत्र-साहित्य का सिंहावलोकन किया गया है। तदनन्तर हिन्दी की धार्मिक काव्यपरम्परा, सूक्ति-मुक्तको और प्रशस्ति-मुक्तको की समीक्षा की गयी है।

द्वितीय खड मे सात अध्याय हैं। इनमे बिहारी का विशेष अध्ययन किया गया है। पहले अध्याय मे यह बतलाया गया है कि तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत परिस्थितियो का बिहारी पर क्या प्रभाव पड़ा। दूसरे अध्याय के आरम्भ मे सस्कृत की काव्यशास्त्र-परम्परा का सक्षिप्त निरूपण करके बिहारी का काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् ध्वनिकाव्य की दृष्टि से बिहारी का अध्ययन किया गया है।

तीसरे अध्याय मे असलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि और नायिका-भेद की दृष्टि से बिहारी के काव्य का अध्ययन है। रस, भाव, रसाभास, भावोदय आदि, नायिकाओ के अवस्था-भेद, अलकार, नखशिख आदि तथा नायक-भेद आदि का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। चौथे अध्याय मे बिहारी के अलकारो का अध्ययन है। इस अध्याय के प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार हैं —अलकारों का महत्व, अलकारो के उपभेद रस-व्यजना-मूलक अलकार, वस्तुव्यजनामूलक अलकार, अर्थालकार, स्वभावोक्ति-अतिशयोक्ति, बिहारी के अलकारों का सक्षिप्त परिचय, चमत्कारविधान और बिहारी। पाँचवा अध्याय है 'वस्तुमूलक परम्परा और बिहारी'। इस अध्याय मे बिहारी के रसात्मक, धार्मिक, सूक्ति-परक और प्रशस्तिपरक मुक्तको का अध्ययन किया गया है।

छठे अध्याय मे भाषा का महत्त्व, भाषा की दृष्टि से विहारी का महत्त्व, विहारी की भाषा का व्याकरण, सुवन्त, तिङन्त, कृदन्त, विहारी का शब्दप्रयोग, विहारी का मुहावरा तथा लोकोक्ति प्रयोग, भाषा की रमणीयता के विषय मे अन्य आचार्यों का मत और विहारी मे उनका समन्वय, शब्दालकार तथा विहारी की भाषा का महत्त्व—इन शीर्षकों के अन्तर्गत विहारी की भाषा की विवेचना की गयी है। सातवें अध्याय मे विहारी का समीक्षात्मक अध्ययन है। उनके काव्य के उपजीव्य, उनकी प्रतिभा, अभ्यास और निपुणता, तथा उनके दोषो की आलोचना करके हिन्दी-काव्य-जगत् मे उनका स्थान निर्धारित किया गया है।

## २१८. हिन्दी कथासाहित्य के विकास पर आंग्ल प्रभाव

[१९५८ ई०]

कु० उषा सक्सेना को सन् १९५८ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि प्राप्त हुई। उनके प्रवन्ध का विषय था 'हिन्दी कथासाहित्य के विकास पर आग्ल प्रभाव'। यह प्रवन्ध अग्रेजी विभाग के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया था।

इस अप्रकाशित प्रवन्ध मे नौ अध्याय हैं। उन अध्यायो मे प्रतिपादित विषयो की सूची इस प्रकार है —

पहला अध्याय आग्ल प्रभाव से पूर्व का कथासाहित्य—कथासाहित्य के तीन सस्थान—सस्कृत कथासाहित्य—उर्दू कथासाहित्य—आग्ल प्रभाव।

दूसरा अध्याय आग्ल प्रभाव के अन्तर्गत सामाजिक तथा सास्कृतिक परिवर्तन, शिक्षा का प्रसार—प्रेस—ब्रह्म समाज—आर्य समाज—रामकृष्ण मिशन।

तीसरा अध्याय भारतेन्दु-युग और आग्ल प्रभाव के अन्तर्गत लिखे गये उपन्यास—काव्य पर आग्ल प्रभाव—नाटक और आग्ल प्रभाव—यथार्थवाद का जन्म—हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन—पाठ्यक्रम में निर्धारित अग्रेजी उपन्यास—हिन्दी मे अनूदित उपन्यास—परीक्षागुरु (हिन्दी का प्रथम उपन्यास जो आग्ल प्रभाव के अन्तर्गत लिखा गया)।

**चौथा अध्याय** भारतेन्दु-युग के बाद लिखे गये उपन्यास—देवकीनन्दन खत्री और उन पर रेनोल्ड्स, गाथिक उपन्यासो तथा रोमान्टिसिज्म का प्रभाव—बगाली उपन्यासो का प्रभाव—किशोरीलाल गोस्वामी—गोपालराम गहमरी।

**पाचवा अध्याय** हिन्दी-उपन्यास के स्वरूप पर आग्ल प्रभाव—उपन्यासो के कथानक, कथोपकथन और चरित्रचित्रण पर अग्रेजी का प्रभाव।

**छठा अध्याय** प्रेमचन्द—प्रेमचन्द पर पाश्चात्य प्रभाव—यथार्थवाद—हिन्दी उपन्यास मे यथार्थवाद का प्रवेश—हिन्दी को प्रभावित करने वाले कतिपय अग्रेजी उपन्यासकार—प्रेमचन्द की शिल्पविधि पर अग्रेजी प्रभाव—विश्वम्भर नाथ कौशिक—उन पर थैकरे का प्रभाव।

**सातवा अध्याय** हिन्दी उपन्यास तथा समाज पर नये प्रभाव—नयी मान्यताओ का प्रवेश—नारी चित्रण मे परिवर्तन—रहन-सहन पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव—इन परिवर्तनो का उपन्यास मे समावेश—इस दृष्टिकोण से प्रेमचन्द, प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, उषा देवी मित्रा, राधिकारमण प्रसाद सिह और भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासो का विश्लेषण—प्रकृतवाद—विकृतरूप मे 'उग्र' और चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासो मे उसका प्रवेश।

**आठवा अध्याय** ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यास—ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप—सर वाल्टर स्कॉट और ऐतिहासिक उपन्यास की परम्परा वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासो मे रोमाटिक सूत्र और स्कॉट का प्रभाव—मनोवैज्ञानिक उपन्यास—मनोविश्लेषण—फ्रॉयड, युग, एडलर का योगदान—फ्रॉयड के सिद्धान्त और मनोवैज्ञानिक उपन्यास—जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और 'अज्ञेय'।

**नवा अध्याय** कहानी—कहानी के तत्व—आग्ल और अमरीकन कहानी—हिन्दी मे कहानी-लेखन का प्रारम्भ—'सरस्वती' मे प्रकाशित प्रारम्भिक कहानिया—हिन्दी-कहानी के वस्तुचयन पर आग्ल प्रभाव—हिन्दी-कहानी को प्रभावित करने वाले कुछ अग्रेजी कथाकार—प्रेमचन्द की कहानिया—सुदर्शन—प्रसाद—जैनेन्द्र कुमार—'अज्ञेय'—इलाचन्द्र जोशी—यशपाल—उपेन्द्रनाथ 'अश्क'।

## २१९. प्रसाद का काव्य और दर्शन

[१९५८ ई०]

श्री ज्ञानवती अग्रवाल का प्रवन्ध 'प्रसाद का काव्य और दर्शन' सन् १९५८ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रवन्ध सात अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे प्रसाद-युग की राजनैतिक, धार्मिक, सास्कृतिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करके उनके शास्त्रज्ञान और काव्य-प्रेरणाओ पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय मे प्रसाद की विचार-धारा को प्रभावित करने वाले उपादानो (श्रौत ग्रथ और श्रौत दर्शन, इतिहास-पुराण, बौद्ध-दर्शन, आगम दर्शन और साहित्य, पाश्चात्य दर्शन, वगला-साहित्य, उर्दू-साहित्य) का प्रतिपादन है। तृतीय अध्याय मे प्रसाद की रचनाओ का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे प्रसाद की भावुकता (उनके भावो के विविध रूपो) का अनुशीलन है। पचम अध्याय मे प्रसाद के काव्य मे चित्रित वाह्य-प्रकृति और अन्त प्रकृति के विभिन्न प्रकारो की समीक्षा की गयी है। षष्ठ अध्याय मे प्रसाद के आध्यात्मिक विचारो (ब्रह्म, जीव, जगत्, मोक्ष, माया) की मीमासा है। सप्तम अध्याय मे प्रसाद की शैली की विशेषताए वतलाकर उनकी गद्यशैली, पद्यशैली, भावाभिव्यजन के सौष्ठव और भाषा का विवेचन किया गया है।

## २२०. हिन्दी-पत्रकारिता का इतिहास

[१९५८ ई०]

श्री रामगोपाल चतुर्वेदी का प्रवन्ध 'हिन्दी-पत्रकारिता का इतिहास, सन् १९५८ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रवन्ध मे प्रतिपादित विषय इस प्रकार हैं —प्रारम्भिक काल, भारतेन्दु-पूर्व काल, भारतेन्दु-काल के पत्रो पर एक दृष्टि, भाषा का प्रश्न और भारतेन्दु, भारतेन्दु-काल का विवेचन, उस काल के पत्रो की विशेषताए, द्विवेदी-

युग, दैनिक पत्रो का विकास, सम्पादकाचार्य द्विवेदी जी, हिन्दी-पत्रकार-कला पर द्विवेदी जी का प्रभाव, द्विवेदी-युग—विवेचन, आधुनिक काल, हिन्दी मासिक-पत्रो की परम्परा, आधुनिक काल, विवेचन, प्रमुख पत्रकारो (अमृतलाल चक्रवर्ती, वालमुकुन्द गुप्त, दुर्गाप्रसाद मिश्र, रुद्रदत्त, सम्पादकाचार्य अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, वावूराव विष्णु पराडकर, लक्ष्मीनारायण गर्दे, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल) का जीवन-परिचय, पत्रकारिता के आदर्श, पत्रकार की योग्यता, पत्रकारो की कठिनाइया, अखिलभारतीय पत्रकार-सघ, पत्रकारो को कानूनी सरक्षण, पत्रो की वर्तमान स्थिति, समाचार-सग्रह की व्यवस्था, विदेशो मे हिन्दी-पत्र, हिन्दी-पत्रकारिता और उपसहार ।

## २२१. द्विजदेव और उनका काव्य

### [१९५८ ई०]

श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी को उनके प्रवन्ध 'द्विजदेव और उनका काव्य' पर सन् १९५८ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई ।

इस प्रवन्ध मे वारह अध्याय हैं । पहले अध्याय मे द्विजदेव का जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है । दूसरे अध्याय मे काव्य-प्रतिभा और दरवार की चर्चा की गयी है । तीसरे अध्याय मे द्विजदेव के काव्य-ग्रन्थो और उनके प्रकाशन का विवरण है । चौथे और पाचवें अध्यायो में अलकृतकाव्य-परम्परा एव मुक्तक-काव्य-परम्परा का अध्ययन है । छठे अध्याय मे द्विजदेव के काव्य की समीक्षा है । सातवे अध्याय मे द्विजदेव द्वारा प्रयुक्त छन्दो का विवेचन है । आठवें अध्याय मे द्विजदेव की भाषा और तद्गत विशेषताओं का अनुशीलन है । नवें तथा दसवे अध्यायो मे क्रमश द्विजदेव की विचारधारा तथा भावचित्रो की विवेचना की गयी है । ग्यारहवें अध्याय मे अन्य कवियो के साथ द्विजदेव का तुलनात्मक अध्ययन है । वारहवें अध्याय मे प्रवन्ध का उपसहार है ।

## २२२. हिन्दी-नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव

[१९५८ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५८ ई० मे श्री श्रीपति शर्मा को उनके ग्रन्थ 'हिन्दी-नाटको पर पाश्चात्य प्रभाव' पर पी-एच० डी० की उपाधि दी।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे सस्कृत तथा पाश्चात्य नाटको की उत्पत्ति और विकास, उनकी समानताओ, ट्रेजेडी, कॉमिडी, मेलोड्रामा, फार्स, उदात्तवाद, स्वच्छन्दतावाद, यथार्थवाद, स्वाभाविकतावाद, प्रतीकवाद, अभिव्यजनावाद आदि पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय मे भारतेन्दु और उनके समकालीन तथा परवर्ती नाटककारो पर पाश्चात्य प्रभाव दिखलाते हुए हिन्दी के प्रारभिक नाटको का अध्ययन किया गया है। तृतीय अध्याय मे द्विवेदी-युग के मौलिक एव अनूदित नाटको का अनुशीलन है।

चतुर्थ अध्याय मे जयशकर प्रसाद, हरिकृष्ण 'प्रेमी', गोविन्द वल्लभ पन्त, बेचन शर्मा 'उग्र', जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' और वृन्दावन लाल वर्मा के नाटको का विवेचन करके यह प्रदिपादित किया गया है कि प्रसाद-युग के नाटको में पाश्चात्य परम्परा का अनुसरण हुआ है। इस अध्याय मे प्रहसनो या अनुवादो की भी समीक्षा की गयी है। पचम अध्याय मे प्रसादोत्तर युग के नाटको (विशेपकर लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के समस्या-नाटको) पर पडने वाले पाश्चात्य प्रभावो का अध्ययन किया गया है। षष्ठ अध्याय मे आधुनिक हिन्दी नाटको एव नाटककारो पर पाश्चात्य प्रभाव की व्याख्या की गयी है।

सप्तम अध्याय में यह निरूपित किया गया है कि हिन्दी के एकाकियो तथा ध्वनि-नाटको पर कहा तक पाश्चात्य प्रभाव पडा है। अष्टम अध्याय मे पाश्चात्य प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी के गीतिनाट्यो का अनुशीलन किया गया है। नवम अध्याय के आलोच्य विषय हिन्दी के 'नाट्यरूपक' और प्रतीक-परम्परा के नाटक हैं। दशम अध्याय मे हिन्दी-रगमच पर पडने वाले पाश्चात्य प्रभावो का विवेचन है।

## २२३. हिन्दी उपन्यास मे चरित्रचित्रण का विकास

[१९५८ ई०]

श्री रणवीर चन्द्र राग्रा का प्रवन्घ 'हिन्दी-उपन्यास मे चरित्रचित्रण का विकास' सन् १९५८ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रबन्ध मे छ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे उपन्यास के स्वरूप, उपन्यास मे चरित्र-चित्रण, औपन्यासिक पात्रो के शास्त्रीय रूप और औपन्यासिक चरित्र-चित्रण की विविध (वहिरग, अतरग तथा नाटकीय) प्रणालियो पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे हिन्दी-उपन्यास की राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि स्पष्ट की गयी है। तीसरे अध्याय मे देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी के उपन्यासो मे किये गये अनायास-चरित्रचित्रण का अध्ययन है। चौथे अध्याय मे प्रेमचन्द, प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा और यशपाल के उपन्यासो मे किये गये सोद्देश्य चरित्रचित्रण की विवेचना है। पाचवें अध्याय मे जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के उपन्यासो में किये गये मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण का अनुशीलन किया गया है। 'उपसहार' नामक छठे अध्याय मे हिन्दी-उपन्यास मे चरित्र-चित्रण के विकास-क्रम, औपन्यासिक चरित्र-चित्रण की समस्याओ तथा औपन्यासिक चरित्र-चित्रण के भविष्य पर प्रकाश डाला गया है।

## २२४. रीतिकविता का आधुनिक हिन्दी-कविता पर प्रभाव

[१९५८ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५८ ई० मे श्री रमेश कुमार शर्मा को उनके प्रवन्ध 'रीतिकविता का आधुनिक हिन्दी-कविता पर प्रभाव' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

प्रस्तुत प्रवन्ध तीन खडो मे विभक्त है। प्रथम खड मे भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग तथा प्रसाद-पत-निराला-युग मे रीतिकाल के प्रति वरते गये अन्याय की रूपरेखा स्पष्ट करके भक्तिकालीन रीतिपरिपाटी, रीतिकाल की कविता की

अनेकरूपता, शृंगार-काव्य, भक्तिकाव्य, वीरकाव्य, नीतिकाव्य आदि का विवेचन किया गया है। द्वितीय खंड मे रीतिकाल की कविता का भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग की कविता पर प्रभाव दर्शाया गया है। तृतीय खंड मे प्रसाद-पंत-निराला-युग की कविता पर रीतिकालीन कविता के प्रभाव का आकलन है। व्रजभाषा की कविता, उसके लोकगीतो, खडीबोली की कविता और उनके लोकगीतो पर रीतिकविता के प्रभाव की विवेचना की गयी है।

## २२५. मेरठ-जनपद के लोकगीतो का अध्ययन

[१९५८ ई०]

श्री कृष्णचन्द्र शर्मा का प्रबन्ध 'मेरठ-जनपद के लोकगीतो का अध्ययन' सन् १९५८ ई० में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे लोकगीत के आकर्षण, लोकसाहित्य-सम्बन्धी कार्य, मेरठ-जनपद, उसकी भाषा, लोकगीतो के संग्रह आदि पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे लोकगीत का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उनकी विशेषताओ और महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। तीसरे अध्याय मे जन्म, विवाह और मृत्यु के अवसरो पर गाये जाने वाले विविध प्रकार के गीतो का अध्ययन है। चौथे अध्याय मे पचदेवो (सूर्य, विष्णु, शिव, गणेश, देवी), ग्रामदेवताओ (भुमिया, भैरो, चामड), निम्नस्तरीय देवो (हनुमान, पचपीर आदि), रोग-देवताओं (माता, वाराही, बूढे बाबू), पितृपूजा और प्रकृतिपूजा से सम्बन्ध रखने वाले गीतो का अध्ययन है। पाचवें अध्याय के प्रतिपाद्य हैं—ऋतुगान, चर्यागीत, उत्सव-मेले के गीत और सामयिक गीत। छठे अध्याय मे पुरुषो (कृषको, बोवियो और जोगियो) के व्यवसाय तथा मनोरंजन सम्बन्धी गीतो का अनुशीलन है। सातवें अध्याय मे पथिको, चरवाहो तथा भिखारियो के गीतो की विवेचना की गयी है। आठवें अध्याय मे बालको के (विविध खेलो, त्योहारो और ऋतुओ से सम्बन्ध रखने वाले) गीतो का अध्ययन किया गया है।

## २२६. स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी-साहित्य

[१९५८ ई०]

श्री गोपालदत्त शर्मा का प्रबन्ध 'स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी-साहित्य' सन् १९५८ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रबन्ध में छ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे रसक्षेत्र वृन्दावन, पुराणों के वृन्दावन, वृन्दावन के इतिहास और वृन्दावन के सम्प्रदायो की चर्चा करके रसक्षेत्र वृन्दावन के इतिहास मे स्वामी हरिदास जी का स्थान बतलाया गया है। द्वितीय अ[illegible] विवाद अध्ययन के आधार, सम्प्रदाय के स्थानो, [illegible] के साहित्य, सम्प्रदाय के इतिहास [illegible] की आधारभूत सामग्री, [illegible] की रचनाओ, सूचनाओ के अन्य आधार, सम्प्रदाय के बाह[illegible] की सामग्री आदि पर विचार किया गया है। तृतीय अध्याय मे स्वामी हरिदास जी [illegible] जीवनी और सम्प्रदाय के अन्य प्रमुख आचार्यों एव वाणी-कर्ताओ का विवरण है। चतुर्थ अध्याय मे स्वामी हरिदास जी के दार्शनिक मत और भक्ति-सिद्धात की व्याख्या की गयी है। पचम अध्याय मे उपासनीय भक्ति-शृगार रस, नित्य-विहारिणी राधा के स्वरूप, नित्यविहार आदि का विवेचन है। षष्ठ अध्याय मे भाषा, शब्द-शक्ति, वर्ण-विन्यास, अलकार-योजना, भाव-सौन्दर्य, छन्द, सगीत आदि की दृष्टि से हरिदास जी के काव्य का अनुशीलन किया गया है। ग्रन्थ के परिशिष्ट मे निम्बार्क-सम्प्रदाय का सक्षिप्त निरूपण है।

## २२७. हिन्दी में कृष्ण-काव्य का विकास

[१९५८ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५८ ई० मे श्री बालमुकुन्द गुप्त को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी मे कृष्ण-काव्य का विकास' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

इस प्रवन्ध मे दस अध्याय हैं। पहले अध्याय मे वैदिक साहित्य से लेकर चैतन्य-सम्प्रदाय तक वैष्णवधर्म का इतिहास और विकास दिखलाया गया है। दूसरे अध्याय मे कृष्ण, गोकुल और वृन्दावन, आह्लादिनी शक्ति, राधा, गोप-गोपी, व्यक्त और अव्यक्त लीला, रासलीला, चीरहरण तथा वेणु की प्रतीकात्मकता पर विचार किया गया है। तीसरे अध्याय में कृष्ण-काव्य की सामान्य विशेपताओ एव भक्तिकालीन, रीतिकालीन तथा आधुनिक कृष्ण-काव्य की विशेपताओ का उपस्थापन है। चौथे, पाचवें, छठे, सातवें और आठवें अध्यायो मे क्रमश: निम्वार्क-सम्प्रदाय, वल्लभ-सम्प्रदाय, चैतन्य-सम्प्रदाय, राधावल्लभ-सम्प्रदाय और हरिदासी (सखी)-सम्प्रदाय के कृष्ण-काव्य का अध्ययन है। नवें अध्याय मे विद्यापति, तुलसीदास, मीरा वाई आदि फुटकल कृष्णकवियो के कृष्ण-काव्य की विवेचना की गयी है। दसवें अध्याय मे कृष्ण-काव्य के महत्त्व और प्रभाव का आकलन है।

## २२८. परमानन्द दास : जीवनी और कृतियां
## [१९५८ ई०]

श्री श्यामशकर दीक्षित को राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् १९५८ ई० में पी-एच० डी० की उपाधि मिली। उनके प्रवन्ध का विपय था 'परमानन्ददास : जीवनी और कृतिया'।

## २२९. सत्यं शिवं सुन्दरम्
## [१९५८ ई०]

श्री रामानन्द तिवारी का प्रवन्ध 'सत्य शिव सुन्दरम्' सन् १९५८ ई० में राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

यह प्रवन्ध चार अध्यायो मे विभक्त है। पहले अध्याय मे सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् तथा कविता के स्वरूप का निरूपण करके काव्य के साथ उनके

सम्वन्ध का प्रतिपादन किया गया है। 'काव्य और सत्यम्' नामक दूसरे अध्य के प्रतिपाद्य विषय हैं—काव्य और सत्य, सत्य और कल्पना, सत्य के रूप, स के उपभेद और काव्य मे उनका स्थान, काव्य मे प्राकृतिक सत्य, सामाजि सत्य और काव्य, ऐतिहासिक सत्य और काव्य, वैज्ञानिक सत्य और का कथावृत्त और काव्य, मनोवैज्ञानिक तथ्य और काव्य, अलौकिक तथ्य : काव्य, तार्किक सत्य और काव्य, नैतिक सत्य और काव्य, धार्मिक सत्य : काव्य, धार्मिक सत्य और काव्य तथा सास्कृतिक सत्य और काव्य।

तीसरा अध्याय 'काव्य और शिवम्' है। इस अध्याय में काव्य और शि के सम्बन्ध तथा प्रेय और श्रेय की व्याख्या करके काव्य मे वर्णित नारी, क शृगार, प्रेम आदि का अध्ययन किया गया है। तत्पश्चात् शिवम् की साधन तत्त्वो आलोकदान, शक्ति, सर्जनात्मक परम्परा आदि का विवेचन है। 'का और सुन्दरम्' नामक चौथे अध्याय मे सुन्दरम् के स्वरूप और उसके काव्यस का प्रतिपादन करके सुख, सवेग, रस, श्रेय, सत्य, हास्य, वेदना, उपयोगि जीवन आदि के सम्वन्ध से सौन्दर्य का अनुशीलन किया गया है।

## २३० मीरांबाई

### [१९५८ ई०]

श्री छोटेलाल को उनके प्रवन्ध 'मीराबाई' पर सन् १९५८ ई० मे आग विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली।

इस प्रवन्व मे पाच अध्याय हैं। भूमिका मे मीरा के युग का दिग्दर्शन है पहले अध्याय मे अध्ययन के आधार का विवेचन किया गया है। कवियो, भक्त जनश्रुतियो, इतिहास-ग्रन्थो, इतिहासेतर ग्रन्थो, शिलालेखो, दानपत्रो आदि वहि साक्ष्य एव मीरा के अन्त साक्ष्य की चर्चा की गयी है। दूसरे अध्याय निम्नाकित शीर्षको के अन्तर्गत मीरा का जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है- जन्मतिथि, जन्मस्थान तथा प्रारम्भिक निवासस्थल, मीरा का पितृकुल, पित माता, भाई-वहन, मीरा के परिवार की धार्मिक प्रवृत्ति, मीरा का शैशव, विवा मीरा का श्वसुरकुल, पति तथा देवर, वैधव्य और सघर्ष, वैराग्य और भक्ति तीव्रता, चित्तौड-त्याग, तीर्थयात्रा, गुरु, भक्तो और सन्तो से सम्पर्क, अलौकिक

घटनाए, कुछ अप्रामाणिक उल्लेख, अन्तरग सखिया, मृत्यु—कहा, कब और कैसे ?'

तीसरे अध्याय मे मीरा की रचनाओ (प्रकाशनो तथा हस्तलिखित प्रतियो) एव प्रक्षिप्त अशो की समस्या पर विचार किया गया है । चौथे अध्याय मे मीरा से पूर्व प्रचलित विचारधाराओ तथा भक्ति के उद्भव और विकास का सक्षिप्त निरूपण करके उक्त विचारधारा एव भारतीय भक्तपरम्परा की भूमिका मे मीरा की विचारधारा, भक्तिपद्धति और मीरा-सम्प्रदाय का अध्ययन है । पाचवें अध्याय मे विषय, भाव, भाषा, पदरचना, सगीतशास्त्र, छन्दोविधान, गीतिकाव्य तथा अभिव्यजना-कौशल की दृष्टि से मीरा के काव्य की समीक्षा है । प्रबन्ध मे तीन परिशिष्ट भी हैं—१ मीरा द्वारा सेवित मूर्तिया, २ मीरा के पूर्व हिन्दी-कृष्ण-काव्य, ३ प्राचीन प्रतियो के चार पृष्ठो के चित्र तथा मीरा का प्राचीनतम चित्र ।

## २३१. हिन्दी-साहित्य पर पौराणिकता का प्रभाव

[१९५८ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५८ ई० मे श्री इन्द्रावती सिन्हा को उन के प्रबन्ध 'हिन्दी-साहित्य पर पौराणिकता का प्रभाव' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की ।

इस प्रबन्ध मे सात अध्याय है । पहले अध्याय का प्रतिपाद्य है—विश्व-साहित्य और पुराण । दूसरे अध्याय मे भारतीय पुराणो के मूल आधार, वेदो से पुराणो की भिन्नता तथा पौराणिक शैली की विशेषताए बतलायी गयी हैं । तीसरे अध्याय मे दैविक, भौगोलिक, साहित्यिक (भावगत, विचारगत तथा शैलीगत) एवं अन्य रूपो मे पौराणिकता के प्रभाव की विवेचना की गयी है । चौथे अध्याय मे इस प्रभाव के कारणो की समीक्षा है । पाचवें अध्याय मे इस प्रभाव के परिणाम पर विचार किया गया है। छठे अध्याय मे हिन्दी-साहित्य के वीरगाथा-काल, भक्ति-काल, रीति-काल और आधुनिक काल मे पौराणिक प्रभावो का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है । अन्तिम अध्याय का विवेच्य विषय है—आधुनिक युग और पुराण ।

हिन्दी-प्रदेश, हिन्दी-प्रदेश पर अग्रेजो के अधिकार और शासन, हिन्दी-प्रदेश मे मिशनरियो के प्रवेश, हिन्दी-प्रदेश मे अग्रेजी-शिक्षा के विकास तथा प्रसार, प्रेम और पत्रकारिता के विकास, भापा मे आगत शब्दो एव अ ग्रेजी के आगत शब्दो के पूर्व हिन्दी मे विदेशी भापाओ के शब्दो पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय में वहुशिक्षित व्यक्तियो की भापा, कविता में अग्रेजी के आगत शब्दो तथा विज्ञापन मे प्रयुक्त अ ग्रेजी शब्दो का अध्ययन है। तीसरे अध्याय मे अग्रेजी तथा हिन्दी की ध्वनियो और अग्रेजी की ध्वनियो के हिन्दी-रूपो (स्वर-ध्वनिया, व्यजन-ध्वनिया, विशेष ध्वनि-परिवर्तन, ध्वनियो के गुण) की समीक्षा है। चौथे अध्याय मे ध्वनि-प्रक्रिया, आवृत्ति तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे अग्रेजी के आगत शब्दो का तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

पाचवें अध्याय मे रूप-विचार (सज्ञा, विशेपण, क्रिया, मिश्र शब्द, समस्त-पद, सकर शब्द, अग्रेजी शब्दो से वने मुहावरे) और वाक्य-विन्यास (सर्वनाम और सज्ञा का प्रयोग, सम्वन्धवाचक सर्वनाम का प्रयोग, विशेपण उपवाक्य, निक्षिप्त उपवाक्य, वलप्रदान करने की विधिया, पदरूपात्मक वाक्य, अ ग्रेजी मे सोचना और हिन्दी मे लिखना, विधेय-शृखला, निवेशित उपवाक्य, अनावश्यक शब्दो का प्रयोग, विराम चिह्नो का प्रयोग) का अनुशीलन है। छठे अध्याय का प्रतिपाद्य है—आगत शब्द और अर्थ-विचार (अर्थ-सकोच, अर्थ-विस्तार, अर्थादेश, भेद का भेदीकरण, अर्थापकर्ष, मगलभापित, अगागी अन्तरण, व्यग्यार्थ, विशेपण से विशेष्य के अर्थ मे प्रयोग, सामासिक पदो के एक पद से ही पूरे पद का भाव, अन्य रोचक परिवर्तन, अग्रेजी शब्दो का आलकारिक प्रयोग)। सातवें अध्याय में आगत शब्दो के अनुवाद (शाब्दिक अनुवाद, भावानुवाद, निकटतम पर्यायो के आधार पर अनुवाद, एकरूपता, विभिन्न विधिया, प्रसार, वाक्याशो-मुहावरो का अनुवाद, पारिभापिक शब्दावली, कविता में अनुवाद) की विवेचना की गयी है। आठवा अध्याय ग्रन्थ का उपसहार है। प्रवन्ध मे छ परिशिष्ट भी हैं—भापा मे आगत शब्दो के सम्वन्ध मे विचार, एक रोचक कहानी, कविता मे आगत शब्द, अग्रेजी शब्दो के वोलीगत रूप, कुछ विवादास्पद शब्द, लोक-निरुक्ति पर आधारित शब्द।

## २३५. हिन्दी-साहित्य के आधार पर भारतीय संस्कृति

[१९५८ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने श्री सोमनाथ शुक्ल को उनके प्रवन्ध 'हिन्दी-साहित्य के आधार पर भारतीय सस्कृति' पर सन् १९५८ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

इस प्रवन्ध मे पाच अध्याय है। पहला अध्याय 'भूमिका' है जिसमे सस्कृति, सस्कृति के सूत्र, साहित्य, साहित्य-प्रकार और साहित्य तथा भारत-भूमि पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय के प्रथम खड मे सामाजिक जीवन (विभिन्न वर्ग और सम्प्रदाय—भारतीय समाज की रूपरेखा, राज-समाज, मध्य वर्ग, जन-समाज, अर्थव्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, चतुर्वर्ण, विभिन्न सम्प्रदाय, भक्ति-आरोहण) और द्वितीय खड मे पारिवारिक जीवन का अध्ययन है। तीसरे अध्याय के प्रथम खड मे लोकजीवन, व्रत-पर्व-त्योहार, खान-पान, क्रीडा-विनोद, लोकविश्वास, शिक्षा आदि तथा द्वितीय खड मे, सौंदर्यानुभूति (सौंदर्य, शृगार और प्रसाधन, वस्त्र, आभूषण, काव्य, सगीतकला, चित्रकला, वस्तुकला) का अनुशीलन है। चौथे अध्याय मे धर्म, व्याख्या और विस्तार, निगमागम, पुराण, सदाचार तथा सन्त शीर्षको के अन्तर्गत धर्म का विवेचन है। पाचवे अध्याय के प्रथम खड मे धर्म-साधना (साधना, धर्मसाधना, ज्ञानसाधना, कर्मसाधना, भक्तिसाधना, रहस्यमय साधना और सद्गुरु) एव दर्शन की समीक्षा की गयी है।

## २३६. हिन्दी-उपन्यास मे नारीचित्रण

[१९५८ ई०]

श्रीमती इन्द्रावती ग्रोवर का प्रवन्ध 'हिन्दी-उपन्यास मे नारीचित्रण' सन् १९५८ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रवन्ध मे चौदह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे प्रवन्ध के उद्देश्य और परिधि पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय मे उपन्यास के रूप मे कथा-साहित्य का विकास और उसमे नारी का स्थान वतलाया गया है। तृतीय अध्याय का प्रतिपाद्य है—साहित्य का केन्द्र नारी और उसकी प्रकृति। चतुर्थ

अध्याय मे नारी के प्रति भारतीय सस्कारभावना का दिग्दर्शन है। पचम अध्याय मे उपन्यास-काल से पूर्व हिन्दी-साहित्य मे नारी-भावना और नवीन चेतना का अध्ययन किया गया है। षष्ठ अध्याय मे नारी-चरित-चित्रण के सिद्धान्तो का निरूपण है। सप्तम अध्याय मे हिन्दी-उपन्यासकारो की नारी-भावना एव नारी के विभिन्न रूपो का अनुशीलन है। अष्टम अध्याय मे भारतेन्दु-युग के उपन्यासो मे नारी-चित्रण की पद्धति का विवेचन है। नवम अध्याय के विवेच्य हैं—प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास और उनकी नारिया। दशम अध्याय मे हिन्दी-उपन्यासो मे प्रेमिकाओ के चित्रण की समीक्षा है। एकादश अध्याय मे विवाहित नारी के चित्रण और हिन्दी-उपन्यासकारो की पत्नी-सम्बन्धी धारणाओ की विवेचना है। द्वादश अध्याय मे हिन्दी-उपन्यासो मे अकित नारी के माता, विमाता, पुत्री, भगिनी, सखी, सास, बहू, ननद, जेठानी, देवरानी आदि पारिवारिक रूपो का आलोचन है। त्रयोदश अध्याय मे हिन्दी-उपन्यासो मे वेश्या के चित्रण पर विचार किया गया है। चतुर्दश अध्याय मे नारी के राजनीतिक, आर्थिक और मानवतावादी चित्रण का अनुसन्धान है।

## २३७. हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव
[१९५८ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५८ ई० में श्री० सरलादेवी को पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान की। उनके प्रबन्ध का विषय था 'हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव'।

इस प्रबन्ध मे सात अध्याय है। प्रथम अध्याय मे धर्म के स्वरूप, धर्म और साहित्य के सम्बन्ध, भारत के धार्मिक इतिहास मे बौद्ध धर्म के महत्त्व, बौद्ध धर्म के प्रवर्तन आदि पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय मे बौद्धो के परमार्थ-चिन्तन, शून्यवाद, क्षणिकवाद, सहजवाद, अनात्मवाद, निर्वाण आदि का विवेचन करके मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव बतलाया गया है। तृतीय अध्याय मे बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायो मे उपस्थापित सृष्टि-विज्ञान, प्रतिबिम्बवाद, कामवाद, त्रिकायवाद, द्विकायवाद आदि सिद्धान्तो की व्याख्या करके यह निरूपित किया गया है कि मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य पर उसका क्या प्रभाव पडा।

चतुर्थ अध्याय मे मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य पर पडने वाले बौद्ध नैतिकता एव आचार-शास्त्र सम्बन्धी विचारो का अध्ययन किया गया है। पंचम अध्याय का प्रतिपाद्य बौद्ध धर्म का साधना-पक्ष है। इस अध्याय मे बौद्धो की योग-साधना, भक्तिमार्ग और वैराग्य का स्वरूप-निरूपण करके मध्यकालीन साहित्य पर उसके प्रभाव का अनुशीलन किया गया है। परलोक, इहलोक, शरीर, पाप-पुण्य, शुभाशुभ, मृत्यु और पूजा के विषय मे बौद्ध विश्वासो का मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य पर जो प्रभाव पडा उसकी विवेचना षष्ठ अध्याय मे की गयी है। 'उपसहार' नामक सप्तम अध्याय मे बौद्ध धर्म की कुछ अन्य विशेषताओ तथा मध्यकालीन साहित्य पर पडे हुए बौद्ध प्रभावो का सिंहावलोकन है।

## २३८. अवधी, ब्रज और भोजपुरी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

[१९५८ ई०]

श्री गगाशरण त्रिपाठी का प्रबन्ध 'अवधी, ब्रज और भोजपुरी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' १९५८ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फ़िल० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## २३९. आगरा जिले की बोली का अध्ययन

[१९५८ ई०]

श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी को उनके शोध-प्रबन्ध 'आगरा जिले की बोली का अध्ययन' पर सन् १९५८ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि प्राप्त हुई।

## २४०. सूरसागर की शब्दावली का अध्ययन

[१९५८ ई०]

प्रयाग विश्वविद्यालय ने श्री० निर्मला सक्सेना को सन् १९५८ ई० मे उनके प्रबन्ध 'सूरसागर की शब्दावली का अध्ययन' पर डी० फिल० की उपाधि प्रदान की।

## २४१. हिन्दी सगुणकाव्य की सांस्कृतिक भूमिका

[१९५८ ई०]

श्री रामनरेश वर्मा का प्रबन्ध 'हिन्दी सगुणकाव्य की सास्कृतिक भूमिका' सन् १९५८ मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रबन्ध में नौ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे हिन्दी-साहित्य की समालोचना-पद्धति, साहित्य की सास्कृतिक व्याख्या, सगुणकाव्य की विशेषता, सगुणभक्ति पर इस्लामी प्रभाव, धर्म के चतुर्विध जीवन आदि पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय मे भक्ति-आन्दोलन के प्रवर्तन, स्वरूप और उद्भवस्थान का अध्ययन है। तृतीय अध्याय में मूर्त एव अमूर्त आराधना, देवतातत्व, भक्ति के स्वरूप तथा विभाग, राम-पूजा, रामपचायतन, भक्ति-परम्परा मे अद्वैत आदि का विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे शास्त्रभक्ति, रसभक्ति, राधातत्व निकुजलीला, वृन्दावन आदि का अनुशीलन है।

पचम अध्याय मे चतुर्विध समाज, सामाजिक व्यवस्थाओ के आधार, तीन प्रकार के (मर्यादावादी, शास्त्रीय, रसवादी) भक्तों, आश्रम-व्यवस्था, नारी आदि पर विचार किया गया है। षष्ठ अध्याय मे धार्मिक सम्प्रदायों की विविधता, निर्गुण-सगुण-सघर्ष, मठ-परम्परा के इतिहास, वैरागियो के सगठन, श्रौत-स्मार्त-परम्परा, देवालयीय परम्परा तथा रसवादी परम्परा का अध्ययन है। सप्तम और अष्टम अध्यायो मे साहित्य और कला की दृष्टि से सगुणकाव्य की सास्कृतिक भूमि स्पष्ट की गयी है। नवम अध्याय मे ग्रन्थ का उपसहार है।

## २४२. कृष्णभक्ति में मधुर रस

[१६५८ ई०]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने श्री पूर्णमासी राय को उनके प्रबन्ध 'कृष्णभक्ति र मधुर रस' पर सन् १६५८ ई० में पी-एच डी की उपाधि प्रदान की।

## २४३. मध्यकालीन अलंकृत कविता और मतिराम

[१६५८ ई०]

श्री त्रिभुवन सिंह को १६५८ ई० में उनके शोधप्रबन्ध 'मध्यकालीन अलकृत कविता और मतिराम' पर हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, से पी-एच डी की उपाधि प्राप्त हुई।

## २४४. हिन्दी-उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव

[१६५८ ई०]

श्री गणेशन को १६५८ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पी-एच. डी की उपाधि मिली। उनके शोधप्रबन्ध का विषय था—'हिन्दी-उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव'।

## २४५. कबीर के बीजक की टीकाओं की दार्शनिक व्याख्या

[१६५८ ई०]

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, ने श्री गिरीशचन्द्र तिवारी को सन् १६५८ ई० में उनके शोधप्रबन्ध 'कबीर के बीजक की टीकाओ की दार्शनिक व्याख्या' पर पी-एच. डी. की उपाधि दी।

रासो की हस्तलिखित प्रतियो पर विचार करके यह प्रतिपादित किया गया है कि लघुतम सस्करण प्राचीनतम है। दूसरे अध्याय मे हस्तलिखित प्रतियो के सम्बन्ध और पाठशोध की समस्या पर विचार किया गया है। तीसरे अध्याय मे रासो के कथानक का विवेचन है। चौथे अध्याय मे रासो की ऐतिहासिकता का अध्ययन है। पाचवे अध्याय मे उसका साहित्यिक मूल्याकन किया गया है। छठे अध्याय मे भाषा-विज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से रासो की समीक्षा की गयी है। प्रबन्ध के दूसरे भाग मे सम्पादित पाठ, नामानुक्रणिका और शब्द-कोष हैं।

## २५०. हिन्दी-उपन्यास मे नायक की परिकल्पना

[१९५८ ई०]

पजाव विश्वविद्यालय ने सन् १९५८ ई० मे श्री भीष्म साहनी को उनके प्रबन्ध 'हिन्दी-उपन्यास मे नायक की परिकल्पना' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

## २५१. बीसलदेवरास का सम्पादन

[१९५८ ई०[

श्री तारकनाथ अग्रवाल को कलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् १९५८ ई० मे उनके शोधप्रवन्ध 'वीसलदेवरास का सम्पादन' पर डी० फिल० की उपाधि प्राप्त हुई।

## २५२. पंजाबी और पश्चिमी हिन्दी के वार्ता-साहित्य मे अभिप्राय

[१९५८ ई०]

श्री० मावित्री सरीन का प्रबन्ध 'पजाबी और पश्चिमी हिन्दी के वार्ता-साहित्य मे अभिप्राय' सन् १९५८ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## २५३. भक्तिकालीन कृष्णभक्ति-काव्य पर पौराणिक प्रभाव

[१९५८ ई०]

दिल्ली विश्वविद्यालय ने श्री सदानन्द को सन् १९५८ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि दी। उनके अनुसन्धान का विषय था 'भक्तिकालीन कृष्ण-भक्ति-काव्य पर पौराणिक प्रभाव'। यह प्रबन्ध सस्कृत-विभाग के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया था।

इस प्रबन्ध मे पाच अध्याय हैं। पहले अध्याय मे श्रीमद्भागवत की सास्कृतिक भूमिका, पुराणो के प्रयोजन, भागवत के महत्व, प्रतिपाद्य विषय, दर्शन, धर्म आदि पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे मध्यकालीन हिन्दी-कृष्ण-काव्य की पृष्ठभूमि, चतु सम्प्रदाय, कृष्ण-भक्ति-काव्य की सामान्य विशेषताओ और प्रवृत्तियो, उस काव्य मे अभिव्यक्त भक्तिरस आदि का अध्ययन है। तीसरे अध्याय मे कृष्णभक्ति-शाखा पर सस्कृत-साहित्य, विशेषकर पुराण-साहित्य और उसमे भी विशेषतया भागवत के प्रभाव का सामान्य विवेचन किया गया है। चौथे अध्याय मे कृष्णभक्तिकाव्य की प्रतिपाद्य वस्तु (कृष्ण, राधा, गोपी) पर भागवत के प्रभाव की मीमासा की गयी है। अध्याय के अन्त मे हिन्दी कवियो की मौलिकता पर भी प्रकाश डाला गया है। पाचवें अध्याय मे कृष्णभक्त कवियो द्वारा भागवत से गृहीत भक्तिभावना और उन कवियो के मौलिक योगदान का अनुशीलन किया गया है।

## २५४. हरियाना-प्रदेश का लोक-साहित्य

[१९५८ ई०]

श्री शकरलाल यादव को लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् १९५८ ई० मे उनके प्रवन्ध 'हरियाना प्रदेश का लोक-साहित्य' पर पी-एच० डी० की उपाधि मिली।

## २५५. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो का आलोचनात्मक अध्ययन

[१९५८ ई०]

श्री शशिभूषण सिंहल का प्रवन्ध 'वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो का आलोचनात्मक अध्ययन' सन् १९५८ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## २५६. हिन्दी-उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास

[१९५८ ई०]

लखनऊ विश्वविद्यालय ने सन् १९५८ ई० मे श्री प्रतापनारायण टडन को उनके प्रवन्व 'हिन्दी-उपन्यास मे कथा-शिल्प का विकास' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

## २५७. हिन्दी-काव्य में करुण रस

[१९५८ ई०]

सन् १९५८ ई० मे कु० तारा कपूर को लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली। उनका शोध-विषय था 'हिन्दी-काव्य मे करुण रस।'

## २५८. वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन

[१९५८ ई०]

कु० विद्या मिश्र ने अपना शोध-प्रबन्ध 'वाल्मीकि-रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत करके सन् १९५८ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

## २५९. हिन्दी-सन्तकाव्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

[१९५८ ई०]

श्री सावित्री शुक्ल का प्रबन्ध 'हिन्दी-सन्तकाव्य की सामाजिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि' सन् १९५८ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## २६०. गढ़वाली भाषा और उसका लोक-साहित्य

[१९५८ ई०]

लखनऊ विश्वविद्यालय ने श्री जनार्दन प्रसाद काला का प्रबन्ध सन् १९५८ ई० मे पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत किया। शोध का विषय

था 'गढ़वाली भाषा और उसका लोक-साहित्य'। प्रबन्ध मे प्रतिपादित विषय इस प्रकार हैं--

**प्रथम खड**

**प्रथम अध्याय**—गढवाल की भौगोलिक रूपरेखा, ऐतिहासिक रूपरेखा, प्रागैतिहासिक काल, प्रारभिक काल, कत्यूरी शासन, बहुराजकता, पवार वश, गोरखा-शासन, गोरखा-अगरेज-युद्ध, गणतन्त्र के रूप मे।

**द्वितीय अध्याय**—विषय-प्रवेश, धर्म, जातिभेद, गढवाली लोकजीवन।

**द्वितीय खड**

**गढ़वाली लोकभाषा**—विषय-प्रवेश, गढवाली का विकास, गढवाली के उपभेद और उनकी प्रवृत्तिया, गढवाली भाषा की विशेषताए—ध्वनि-सम्बन्धी, व्याकरण-सम्बन्धी, शब्दतत्व-सम्बन्धी, उपसहार।

**तृतीय खड**

**प्रथम अध्याय**—गढवाली लोकसाहित्य, लोकसाहित्य का क्षेत्र और महत्व, लोकसाहित्य का वर्गीकरण, लोकसाहित्य और लोकजीवन, लोकसाहित्य मे परिवार एव पारिवारिकचरित्र-चित्रण, लोकसाहित्य मे सामाजिक चित्रण।

**द्वितीय अध्याय**—गढ़वाली लोकगीतो का वर्गीकरण, मगलगीत, वार्तागीत, जागर-गीत, तन्त्रमन्त्र-सम्बन्धी गीत, कुलाचार-गीत, पवाडे, झुमैलो, थडया चौफुला, खुदेड, वसन्ती गीत, गढवाली लोकगीतों का महत्व।

**तृतीय अध्याय**—गढ़वाली लोकगीतो का साहित्यिक विवेचन।

**चतुर्थ अध्याय**—गढवाली लोक-कथाए, लोककथाओ का महत्व, वर्गीकरण, धर्म-गाथाए, लोक-गाथाए, लोक-कहानिया।

**पचम अध्याय**—गढवाली लोकोक्तिया, भूमिका, साहित्यिक, महत्व, वर्गीकरण, कहावतें, मुहावरे, पहेलिया, उपसहार।

## २६१. द्विवेदीयुगीन गद्य-शैलियां

[१९५८ ई०]

श्री शकर दयाल चौऋषि को सन् १९५८ ई० मे सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली। उनके प्रवन्ध का विषय था—'द्विवेदीयुगीन गद्य-शैलियां'।

यह प्रवन्ध वारह अध्यायो मे विभाजित है। पहले अध्याय मे शैली के सैद्धान्तिक विकास का प्रतिपादन है। दूसरे अध्याय मे पद्य से गद्य की भिन्नता, गद्योन्नति के कारणो, गद्य-क्षेत्र की विशेषताओ तथा गद्यशैलियो पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे अध्याय मे द्विवेदी-पूर्व गद्य की पृष्ठभूमि स्पष्ट की गयी है। चौथे अध्याय मे महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व, कर्तृत्व, गद्यशैली आदि का अध्ययन किया गया है। पाचवें अध्याय में द्विवेदी-युग के निवन्ध-साहित्य की गद्य-शैलियो का अनुशीलन है। छठे अध्याय मे उस युग के समीक्षा-साहित्य की गद्य-शैलियो की समीक्षा है। सातवें अध्याय मे कथा-साहित्य की, आठवें मे नाट्य-साहित्य की, नवें मे गद्य-काव्य की और दसवें अध्याय में पत्र-पत्रिकाओ की गद्य-शैलियो का विवेचन है। ग्यारहवें अध्याय मे शास्त्रीय विषयो या उपयोगी साहित्य, प्रमुख साहित्यिकारो के पत्रो तथा प्रमुख अनुवाद-कर्ताओ की गद्य-शैलियो पर विचार किया गया है। 'उपसहार' नामक वारहवें अध्याय के प्रतिपाद्य विषय हैं—हिन्दी की दशा एव उत्तरदायित्व, नवीन शैलियो की उद्‌घाटक परिस्थितिया, द्विवेदी जी की शैली का स्थान, अनुवादो का शैली पर प्रभाव, द्विवेदी जी के कठोर शासन की प्रतिक्रिया और विभिन्न काव्यरूपो की शैलिया।

## २६२. हिन्दी-काव्य मे शृंगार-परम्परा और महाकवि विहारी
[१९५८ ई०]

श्री गणपति गुप्त का प्रवन्ध 'हिन्दी-काव्य मे शृगार-परम्परा और महाकवि विहारी' सन् १९५८ ई० मे पजाव विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह प्रवन्ध सम्भवत विनोद पुस्तक मन्दिर, हॉस्पिटल रोड, आगरा, से प्रकाशित हो रहा है।

प्रस्तुत प्रवन्ध चार खण्डो मे विभक्त है। पहले खण्ड मे सैद्धान्तिक विवेचन है। इस खण्ड मे सर्वप्रथम विभिन्न दृष्टिकोणो (मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक) से रस-सिद्धान्त का परीक्षण करते हुए उसकी न्यूनताओ पर विचार किया गया है। तदनन्तर शृगाररस का शास्त्रीय विकास निर्दशित किया गया है। शृङ्गाररस की परिभाषा, स्वरूप, उसके भेद और उसके विभिन्न अवयवो का विवेचन किया गया है। इसके वाद शृङ्गाररस का

विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसी खण्ड मे 'शृङ्गारिक तत्वो का विशेष अध्ययन' शीर्षक से काम-तत्व, सौंदर्य-तत्त्व और प्रेम-तत्व पर विचार किया गया है।

द्वितीय खण्ड 'ऐतिहासिक अनुशीलन' है। इसमे सर्वप्रथम भारतीय शृङ्गार-परम्परा का विश्लेषण किया गया है। तदनन्तर भारतीय शृङ्गार के विभिन्न रूपो का विकास प्रदर्शित किया गया है। अनुसन्धाता ने भारतीय शृङ्गार के ये आठ रूप माने हैं—स्वतन्त्र, मर्यादाप्रधान, शौर्यप्रधान, रसिकताप्रधान, परकीयोन्मुख, सघर्षपूर्ण, धार्मिकता-समन्वित और रुढिवद्ध।

तीसरे खण्ड मे हिन्दी-काव्य मे शृङ्गार-चित्रण पर विचार किया गया है। सर्वप्रथम हिन्दी-साहित्य का सामान्य परिचय है। इस क्रम मे हिन्दी भाषा और साहित्य के उदय, हिन्दी साहित्य के काल-विभाग और उसकी मुख्य काव्य-परम्पराओ का विवेचन किया गया है। तदनन्तर हिन्दी साहित्य की सामान्य परिस्थितियो का विवरण है और तव शृङ्गाररस-प्रधान काव्यपरम्पराओ का अनुशीलन किया गया है। खण्ड के अन्त मे हिन्दी काव्य मे चित्रित शृङ्गार के विभिन्न स्वरूपो पर विचार किया गया है।

चौथा खण्ड 'महाकवि विहारी और शृङ्गाररस' है। सर्वप्रथम विहारी के युग, परिस्थितियो और उनके व्यक्तित्व का परिचय है। तदनन्तर सतसई-रचना के प्रेरणास्रोत, उद्देश्य और प्रवृत्तियो का अनुशीलन है। कवि के प्रेम-सम्वन्धी दृष्टिकोण तथा शृङ्गार-निरूपण पर भी पर्याप्त विस्तार से प्रकाश डाला गया है। आगे चलकर शृङ्गार-वर्णन को दूषित करने वाली प्रवृत्तियो की छानवीन की गयी है। विहारी पर पूर्ववर्ती भारतीय काव्य का प्रभाव दिखलाया गया है। विहारी पर फारसी काव्य के प्रभाव को भी स्पष्ट किया गया है। इसके वाद भारतीय शृङ्गार-परम्परा और विहारी का अध्ययन करते हुए अनुसन्धाता ने पहले तो विहारी के काव्य मे वर्णित शृगार के विभिन्न रूपो पर विचार किया है और इसके वाद बिहारी की तुलना प्रमुख भारतीय शृङ्गारी कवियो—कालिदास, अमरुक, गाथासप्तशतीकार, वव्वर, विद्यापति, सूरदास, देव और विक्रम से की है। अन्त मे बिहारी के महत्व का आकलन किया गया है।

ग्रन्थ के अन्त में चार परिशिष्ट हैं—१ आदिकाल का अस्तित्व कहा है ? २ विहारी और केशव का पिता-पुत्र-सम्वन्ध, ३ विहारी का वश-वृक्ष, ४ केशव के वशज श्री मथुरेश से लेखक का पत्र-व्यवहार।

## २६३. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन

[१९५८ ई०]

श्री गोविन्दप्रसाद शर्मा को नागपुर विश्वविद्यालय से सन् १९५८ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। उनके प्रबन्ध का विषय था—'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो का आलोचनात्मक अध्ययन'।

## २६४. राम-काव्य की परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन

[१९५९ ई०]

श्री० गार्गी गुप्ता का प्रबन्ध 'रामकाव्य की परम्परा मे रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन' सन् १९५९ ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रबन्ध मे पाच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे राम-भावना के विकास पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय मे केशव के पूर्व की रामकाव्य-परम्परा का अध्ययन है। तृतीय अध्याय मे केशव के युग की राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियो और केशव के वैयक्तिक सस्कारो एव अभिरुचि का निरूपण है। चतुर्थ अध्याय मे महाकाव्य की परिभाषा, उसके भेदो एव विशेषताओ का प्रतिपादन करके उनके आधार पर रामचन्द्रिका की समीक्षा की गयी है। पाचवें अध्याय मे परवर्ती राम-साहित्य पर रामचन्द्रिका के प्रभाव का आकलन है।

## २६५ भक्तिकालीन हिन्दी-साहित्य में योग-भावना

[१६५६ ई०]

अलीगढ विश्वविद्यालय ने श्री शिवशकर शर्मा का प्रबन्ध 'भक्तिकालीन हिन्दी-साहित्य मे योग-भावना' सन् १६५६ ई० मे पी-एच डी की उपाधि के लिए स्वीकृत किया।

इस प्रबन्ध मे नौ अध्याय हैं। पहले अध्याय में विषय का स्पष्टीकरण है। दूसरे अध्याय में 'योग' के व्युत्पत्त्यर्थ, लक्षण और प्रस्थान-भेद, पातजल योग-दर्शन तथा योग के मूलतत्त्वो का निरूपण कर के योग-साधना का उद्भव और विकास दिखलाया गया है। तीसरे अध्याय मे भारतीय भक्ति-साधना के विकास का अध्ययन करके भक्ति और योग के सम्बन्ध पर विचार किया गया है। चौथे अध्याय मे नाथ-सम्प्रदाय का परिचय देकर उसके सिद्धान्त-पक्ष एव उसमे अभिव्यक्त योग-साधना के स्वरूप तथा प्रकारो की विवेचना की गयी है। इसी प्रकार पाचवें अध्याय मे निरजनी साहित्य की योग-भावना का अनुशीलन किया गया है।

छठे अध्याय में 'निर्गुण' और 'सत' शब्दो की व्याख्या कर के तथा निर्गुणसत-साहित्य का परिचय देकर उसके सिद्धान्त-पक्ष, योग-भावना और सकेतों का अध्ययन किया गया है। सातवें अध्याय मे प्रेममार्गी सूफी साहित्य, उसके सिद्धान्त-पक्ष और योग-भावना का निरूपण है। आठवें अध्याय में सगुणभक्ति-साहित्य (कृष्णभक्तिशाखा, रामभक्तिशाखा), उसके सिद्धान्त-पक्ष और उसमें पायी जाने वाली योग-भावना की मीमांसा की गयी है। नवे अध्याय मे भक्ति-युग के साहित्य मे उपलब्ध योग के विविध प्रतीको एव पारिभाषिक शब्दो के अर्थ और प्रयोग का अध्ययन किया गया है।

## २६६. अष्टछाप-कवियो के काव्य (विशेषकर सूर-साहित्य) में वर्णित ब्रज-संस्कृति

[१९५९ ई०]

श्री श्यामेन्द्र प्रकाश शर्मा का प्रबन्ध 'अष्टछाप-कवियो के काव्य (विशेषकर सूर-साहित्य) मे वर्णित ब्रज-सस्कृति' सन् १९५९ ई० मे अलीगढ विश्व-विद्यालय की पी-एच. डी उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात अध्यायो मे विभक्त हुआ है। प्रथम अध्याय मे भारतीय सस्कृति के व्यापक रूप का निरूपण करके ब्रज-सस्कृति का व्याख्यान किया गया है। द्वितीय अध्याय मे अष्टछाप-कवियो और उनकी रचनाओ का सक्षिप्त परिचय है। तृतीय अध्याय मे अष्टछाप-काल की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियो पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ अध्याय मे 'ब्रज' के अर्थ और ब्रज-क्षेत्र का स्पष्टीकरण है। पचम अध्याय मे सूरदास द्वारा वर्णित ब्रज-सस्कृति का विशेष अध्ययन किया गया है। षष्ठ अध्याय मे सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवियो द्वारा वर्णित ब्रज-सस्कृति की विवेचना करके अष्टछाप के अन्य कवियो के काव्य मे वर्णित ब्रज-सस्कृति के प्रमुख तत्वो की तुलनात्मक समीक्षा की गयी है। सप्तम अध्याय मे आधुनिक ब्रज-सस्कृति के रूप का प्रतिपादन करके अष्टछापकालीन ब्रज-सस्कृति से उसकी तुलना की गयी है।

## २६७. आधुनिक हिन्दी-काव्य मे परम्परा तथा प्रयोग (१९२०-५० ई०)

[१९५९ ई०]

श्री गोपालदत्त सारस्वत का प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी-काव्य मे परम्परा तथा प्रयोग (सन् १९२०-५०)' सन् १९५९ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

यह प्रबन्ध दो भागो मे विभाजित किया गया है। प्रथम भाग मे परम्पराओ का तथा द्वितीय भाग मे प्रयोगो का अध्ययन है। ग्रन्थ मे कुल मिलाकर दस

अध्याय है। प्रथम अध्याय मे परम्परा तथा प्रयोग के स्वरूप, विषय तथा सीमा का विवेचन है। द्वितीय अध्याय का प्रतिपाद्य है—प्रयोग की परम्परा उद्भव तथा विकास। इसमे काव्य के उदय, अलकार, अलकार-रूढियो, प्रतीक-योजना, छन्द, महाकाव्य, गीत, गीतिकाव्य, लोकगीत आदि की विवेचना की गयी है। तृतीय अध्याय मे आधुनिक काव्य की वस्तु तथा उपादानो की परम्परा का अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे शृगार (सयोग, विप्रलम्भ, ऋतु, बारहमासा, अष्टयाम, सन्देशहर, चन्द्रोपालम्भ, कामदशा), हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त और वात्सल्य रसो की परम्परा का अनुशीलन है। पचम अध्याय मे काव्यरूपो (महाकाव्य, खडकाव्य, मुक्तककाव्य, सतसई काव्य, प्रगीत काव्य) की परम्पराका विवेचन किया गया है। षष्ठ अध्याय मे काव्यशैली के अन्तर्गत शब्दालकारो (अनुप्रास, यमक, श्लेष), अप्रस्तुत-विधान (अन्योक्ति, रूपकातिशयोक्ति, समासोक्ति, विरोधाभास), चित्रकाव्य, प्रतीक (प्रकृतिमूलक, यथार्थतामूलक), छन्द (मात्रिक, वर्णिक, अन्त्यानुप्रास, पादयोजना और कवि-समय की परम्परा का व्याख्यान है। सप्तम अध्याय मे प्रयोग के प्रेरक स्रोतो (वैज्ञानिक उन्नति, सास्कृतिक चेतना, राष्ट्रीय आन्दोलन, स्वच्छन्दतावाद, साम्यवाद, यथार्थवाद, मनोविश्लेषण, यौनभावना, प्रयोगवाद, प्रपद्यवाद), नवीन वस्तुओ तथा उपादानो (प्रकृति, राष्ट्र, मातृभूमि, राष्ट्र के वीर, निम्नवर्ग, सस्कृति, विप्लवगान, दु खवाद) राजनीतिक विषयो (पूंजीवादी वर्ग तथा श्रमिक वर्ग से सम्बद्ध विषय, वैज्ञानिक विषय, अणुवाद, पदार्थ की अनश्वरता, विकासवाद का सिद्धान्त) एव अन्तरराष्ट्रीय विषयो का अध्ययन है।

अष्टम अध्याय मे हास्य, वीर, करुण, रौद्र आदि रसो एव विविध भावो के क्षेत्र मे किये गये प्रयोगो तथा भावक्षेत्र के विस्तार की मीमासा है। नवम-अध्याय मे महाकाव्य, आख्यानकाव्य, मुक्तक, प्रगीति, व्यग्यगीति, शोकगीति, सम्बोधगीति, राष्ट्रीयगीति, विचारात्मकगीति, पत्र-गीति, लोकगीति और चित्रपटगीत—इन काव्यरूपो मे किये गये प्रयोगो का अध्ययन किया गया है। दशम अध्याय मे काव्यशैली (अलकार, मानवीकरण आदि), प्रतीक, भाषा और छन्द सम्बन्धी प्रयोगो का अनुसन्धान किया गया है।

## २६८. हिन्दी-महाकाव्यों मे नारीचित्रण

[१९५९ ई०]

आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९५९ ई० मे श्री श्यामसुन्दर व्यास का प्रवन्ध 'हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण' पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत किया।

प्रस्तुत प्रवन्ध सात अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे नारी की ऐतिहासिक स्थिति, मनोवैज्ञानिक विकास, आध्यात्मिक दृष्टिकोण, सामाजिक स्वरूप एव सस्कृत महाकाव्यो से लेकर हिन्दी-महाकाव्यो तक की साहित्यिक मान्यताओ और उनके अन्तर्गत नारी के मूल्याकन पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय मे नारी-चित्रण की प्रधान प्रवृत्तियो (व्याख्यात्मक, शैलीगत, भावात्मक, वौद्धिक और कलात्मक) का निरूपण है। तृतीय अध्याय मे हिन्दी महाकाव्यो मे अकित विभिन्न नायिकाओ, उपनायिकाओ और अन्य महत्वपूर्ण नारीपात्रो के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया गया है। चतुर्थ अध्याय (हिंदी-महाकाव्यो की भावभूमि) मे भावो के अतर्गत नारी और उसके विविध स्वरूप, विभावो के अतर्गत नारी के विविध आलम्वन-स्वरूप एव उसकी उद्दीपनमयी चेष्टाओ, अनुभावो के अतर्गत नारी के कायिक, मानसिक और सात्विक कार्य-कलाप, सचारी भावो के अतर्गत नारीजीवन की विविध तरगावलियो और अत मे भावभूमि की विशेषताओ का अध्ययन है।

पचम अध्याय (हिंदी-महाकाव्यो की कलाभूमि) मे कला, सौंदर्य एव नारी, नारी-सौंदर्य के वाह्य उपकरणो, रूपवर्णन, उसके उपकरणो तथा विशेषताओ का अध्ययन है। षष्ठ अध्याय (हिंदी-महाकाव्यो की वौद्धिक भूमि) मे महा-काव्यकारो के नारी विषयक उद्गारो, नारी-विषयक दृष्टिकोण, नारी-चित्रण के वौद्धिक पक्ष, उसकी विशेषताओ तथा सीमाओ का विवेचन है। सप्तम अध्याय (हिंदी-महाकाव्यों की तुलनात्मक भूमि) मे नारी-पात्रो का तुलनात्मक विवेचन (विरहिणिया, जीवन-सगिनिया, प्रेमिकाए और माताए) तथा हिंदी-महाकाव्य-कारो के नारी-विषयक विचारो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

## २६६. भक्तिकालीन कृष्ण-काव्य मे राधा का स्वरूप

[१९५९ ई०]

श्री द्वारकाप्रसाद मीतल का प्रबन्ध 'भक्तिकालीन कृष्णकाव्य मे राधा क स्वरूप' सन् १९५९ ई० मे अलीगढ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि वे लिए स्वीकृत हुआ।

इस प्रवन्ध मे सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे भक्ति के स्वरूप, प्रका और विकास का निरूपण करके कृष्ण और राधा के विकास पर विचार किय गया है। द्वितीय अध्याय मे 'राधा' की व्युत्पत्ति, और राधा के आध्यात्मिव दार्शनिक, वैज्ञानिक, ज्योतिष, धार्मिक तथा यौगिक स्वरूप का निरूपण है तृतीय अध्याय मे वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक तथा काव्यात्मक सस्कृत-साहित मे राधा के स्वरूप का विवेचन है।

चतुर्थ अध्याय मे भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायो तथा उनमे प्रतिपादित राध के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। पचम अध्याय मे जयदेव, विद्यापति औ चडीदास द्वारा चित्रित राधा के स्वरूप की विवेचना की गयी है। षष्ठ अध्या मे विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायो के कवियो की रचनाओ मे अकित राधा के स्वरू का अनुशीलन किया गया है। सप्तम अध्याय मे रीतिकालीन तथा आधुनि काव्य मे वर्णित राधा के स्वरूप की समीक्षा की गयी है।

## २७० हिन्दी-कृष्णभक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि

[१९५९ ई०]

श्री गिरधारीलाल शर्मा का प्रवन्ध 'हिन्दी-कृष्णभक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि सन् १९५९ ई० में अलीगढ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लि स्वीकृत हुआ।

यह प्रवन्ध दस अध्यायो मे विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा, स्वरूप और विकास का निरूपण है। द्विती अध्याय का प्रतिपाद्य है—वैदिक साहित्य मे कृष्ण-लीला और भक्ति के स्रोत। तृतीय और चतुर्थ अध्यायो मे क्रमश महाभारत एव पुराणो मे वर्णित कृष्ण-

लीला का अध्ययन किया गया है। पचम और षष्ठ अध्यायो मे क्रमश कृष्ण-भक्ति-काव्य की साहित्यिक एव राजनीतिक पृष्ठभूमि स्पष्ट की गयी है। सप्तम अध्याय मे कृष्णभक्ति-काव्य की सामाजिक परिस्थिति एव भक्ति की विभिन्न धाराओ का अनुशीलन किया गया है।

'धार्मिक पृष्ठभूमि' नामक अष्टम अध्याय मे मध्ययुग की धार्मिक भावना, हिंदू-मुस्लिम सघर्ष, भक्ति-आदोलन की मान्यताओ, आचार्यों के योगदान आदि की विवेचना है। नवम अध्याय मे विभिन्न सम्प्रदायो की दार्शनिक मान्यताओ पर विचार करते हुए कृष्णभक्ति-काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया है। दशम अध्याय मे तत्कालीन सस्कृतियो के सघर्ष और समन्वय, मुगलकालीन साहित्य-सर्जन, कलाओ की स्थिति और कृष्णभक्ति-काव्य मे चित्रित सस्कृति के स्वरूप पर विचार किया गया है।

## २७१. पद्माकर तथा उनके रचित ग्रन्थो का आलोचनात्मक अध्ययन

[१९५९ ई०]

श्री रेवतीसिह का प्रबन्ध 'पद्माकर तथा उनके रचित ग्रन्थो का आलोचनात्मक अध्ययन' सन् १९५९ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## २७२. मैथिली लोकगीतों का अध्ययन

[१९५९ ई०]

श्री तेजनारायण लाल का प्रबन्ध 'मैथिली लोकगीतो का अध्ययन' सन् १९५९ ई० मे नागपुर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## २७३. पद्माकर और उनके समसामयिक

[१९५९ ई०]

श्री व्रजनारायण सिंह का प्रवन्ध 'पद्माकर और उनके समसामयिक' सन् १९५९ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## २७४. हिन्दी मे नीतिकाव्य का विकास (सं० १९०० वि० तक)

[१९५९ ई०]

श्री रामस्वरूप का प्रवन्ध 'हिन्दी मे नीतिकाव्य का विकास' सन् १९५९ ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

यह प्रवन्ध दो खडो मे विभाजित किया गया है। प्रथम खड मे भूमिका है। इस खड मे दो अध्याय हैं। पहले अध्याय मे 'नीति' की परिभाषा और उसके प्रकारो का निरूपण किया गया है। काव्य एवं जीवन के विविध पक्षो की व्याख्या करके यह प्रतिपादित किया गया है कि नीतिकाव्य का सम्बन्ध प्रधानतया बुद्धिपक्ष से है, गौणतया भावपक्ष से, अतएव, नीतिकाव्य सामान्य कोटि का काव्य है। दूसरे अध्याय मे वैदिक, सस्कृत, पालि-प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ के नीतिकाव्य का पर्यालोचन करके भारतीय साहित्य मे नीतिकाव्य की परम्परा का उपस्थापन किया गया है।

द्वितीय खड (शोध-खड) मे छ अध्याय हैं। पहले अध्याय मे आदिकालीन नीतिकाव्य का अध्ययन किया गया है। दूसरे अध्याय मे वीरकाव्य मे पाये जाने वाले नीतितत्व (स० १३७५-१९०० वि०) का विवेचन है। तीसरे एव चौथे अध्याय मे भक्तिकालीन तथा भक्तिकालोत्तर सन्तकवियो, सूफ़ियो, कृष्णभक्त कवियो, रामभक्त कवियो तथा तत्कालीन अन्य नीतिकारो के नीति-काव्य का अनुशीलन है। पाचवे अध्याय मे रीतिकालीन विहारी, मतिराम, कुलपति मिश्र, कालिदास त्रिवेदी, देव, तोषनिधि, शिवसहाय दास, वेनी वदीजन रसिक गोविंद, वृन्द, वेताल, गिरिधर, दीनदयाल गिरि आदि कवियो के नीति-काव्य की विवेचना की गयी है। छठे अध्याय मे हिन्दी नीति-काव्य पर

पूर्ववर्ती नीतिकाव्य का प्रभाव दिखलाया गया है। सातवा अध्याय उपसहार है। परिशिष्ट मे हस्तलिखित ग्रन्थो की सूची भी दे दी गई है।

## २७५. प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास

[१९५९ ई०]

श्री० कैलाश कुलश्रेष्ठ का प्रबन्ध 'प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास' सन् १९५९ ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

## २७६. आधुनिक हिन्दी कवियो के काव्यसिद्धान्त

[१९५९ ई०]

श्री सुरेशचन्द्र गुप्त का शोधप्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी कवियो के काव्यसिद्धान्त' सन् १९५९ ई० में दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य ससार, नई सडक दिल्ली, मे प्रकाशित होने जा रहा है।

प्रबन्ध के 'विषय-प्रवेश' मे 'आधुनिक', 'काव्यसिद्धान्त', उपलब्ध सामग्री, विषय के महत्व आदि का निरूपण है। प्रबन्ध के प्रथम प्रकरण मे भारतेन्दु-युग के कवियो (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनारायण चौधरी, प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास और जगमोहन सिंह) के काव्यसिद्धातो का विवेचन है। द्वितीय प्रकरण मे द्विवेदी-युग के कवियो (महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', मैथिलीशरण गुप्त आदि) के काव्यसिद्धान्तो का अध्ययन किया गया है। तृतीय प्रकरण मे वर्तमान युग के राष्ट्रीय-सास्कृतिक कवियो (माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिह आदि), छायावादी कवियो (प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी), वैयक्तिक कविता के रचयिताओ प्रगतिवादी कवियो के काव्यसिद्धान्तो का अनुशीलन किया गया है।

# परिशिष्ट १

[ क ]

## २७७. अब्दुर्ररहीम खानखाना—भारतीय इतिहास के स्रोत-रूप मे

लखनऊ विश्वविद्यालय ने सन् १९५२ ई० मे श्री समर बहादुर सिंह को पी-एच० डी० को उपाधि प्रदान की। उनके अनुसन्धान का विषय था 'अब्दुर्रहीम खानखाना—भारतीय इतिहास के स्रोत रूप मे'। यह प्रबन्ध इतिहास-विभाग के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया था। इसका हिन्दीरूपान्तर साहित्य-सदन, चिरगाव, झासी, से प्रकाशित हो रहा है।

इस ग्रन्थ मे आठ अध्याय है। प्रथम अध्याय मे अब्दुर्रहीम खानखाना का वश-परिचय देकर उनका प्रारम्भिक जीवन-चरित प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय और तृतीय अध्यायो मे क्रमश उनकी गुजरात-विजय और सिन्ध-विजय का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय मे अकबर के समय मे उनकी दक्षिण-विजय और पचम अध्याय मे जहागीर के काल मे दक्षिण-विजय का निरूपण है। षष्ठ अध्याय का प्रतिपाद्य है—रहीम के जीवन का अन्तिम चरण। सप्तम अध्याय मे रहीम की साहित्यिक उपलब्धियो का अध्ययन किया गया है। अष्टम अध्याय मे रहीम के व्यक्तित्व का मूल्याकन है।

[ ख ]

## २७८. मध्यकालीन छन्द का ऐतिहासिक विकास

[ १९५० ई०—? ]

श्री माहेश्वरी सिंह को सम्भवत १९५० ई० मे लन्दन विश्वविद्यालय से पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। उनके अनुसन्धान का विषय था—'मध्यकालीन छद का ऐतिहासिक विकास'।

[ ग ]

पूर्वोक्त प्रबन्ध (स० १६८) 'मध्ययुगीन हिन्दी-काव्य मे नारी-भावना' हिंदी साहित्य ससार, नई सडक, दिल्ली, से प्रकाशित हो रहा है।

# परिशिष्ट २

## विश्वविद्यालयानुसार स्वीकृत शोध प्रबन्ध सूची

### विदेशी विश्वविद्यालय

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९१८ | जे० एन० कारपेन्टर | १ तुलसीदास का धर्म-दर्शन | डी० डी० (लन्दन) |
| १९३० | मोहिउद्दीन कादरी | २ हिन्दुस्तानी ध्वनियो का अनुसन्धान | पी-एच० डी० (लन्दन) |
| १९३१ | एफ० ई० के० | ३ कबीर तथा उनके अनुयायी | ,, |
| १९३४ | जनार्दन मिश्र | ४ सूरदास का धार्मिक काव्य | पी-एच० डी० (कोनिग्सबर्ग) |
| १९३५ | धीरेन्द्र वर्मा | ५ ब्रजभाषा | डी० लिट० (पेरिस) |
| १९४१ | लक्ष्मीधर | ६ मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का सटिप्पण सम्पादन और अनुवाद [१६वी शताब्दी की हिन्दी भाषा (अवधी) का अध्ययन] | |
| १९४९ | हरिश्चन्द्र राय | ७ हिन्दी साहित्य मे महाकाव्य | पी-एच० डी० (लन्दन) |
| १९५० | विश्वनाथ प्रसाद | ८ भोजपुरी ध्वनियो और ध्वनिप्रक्रिया का अध्ययन | ,, ,, |
| ? | माहेश्वरी सिंह | ९ मध्यकालीन छन्द का ऐतिहासिक विकास | ,, ,, |
| १९५० | कु० सी० वोदवील | १० रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम | ,, ,, |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५५ | शारदा वेदालकार | ११ हिन्दी गद्य का विकास (१८०० से-१८५६ ई० तक) | पी-एच० डी० (लन्दन) |
| | | **प्रयाग विश्वविद्यालय** | |
| १९३१ | बाबूराम सक्सेना | १ अवधी का विकास | डी० लिट्० |
| १९३७ | रामशकर शुक्ल 'रसाल' | २ हिन्दी काव्यशास्त्र का विकास | " |
| १९४० | लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय | ३ आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९०० ई०) | डी० फिल० |
| १९४० | माता प्रसाद गुप्त | ४ तुलसीदास—जीवनी और कृतियो का समालोचनात्मक अध्ययन | डी० लिट्० |
| १९४१ | श्रीकृष्ण लाल | ५ हिन्दी साहित्य का विकास (१९००—१९२५ ई०) | डी० फिल० |
| १९४२ | जानकीनाथ सिंह 'मनोज' | ६ हिन्दी छन्दशास्त्र | " |
| १९४३ | छैल विहारी गुप्त 'राकेश' | ७ मनोविज्ञान के प्रकाश मे रस-सिद्धान्त का समालोचनात्मक अध्ययन | " |
| १९४४ | दीनदयालु गुप्त | ८ हिन्दी के अष्टछाप कवियो का अध्ययन | डी० लिट्० |
| १९४५ | ब्रजेश्वर वर्मा | ९ सूरदास—जीवनी और कृतियो का अध्ययन | डी० फिल० |
| १९४५ | उदयनारायण तिवारी | १० भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति और विकास | डी० लिट्० |
| १९४५ | हरदेव बाहरी | ११ हिन्दी अर्थ-विज्ञान | " |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९४६ | लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय | १२ हिन्दी साहित्य और उसकी सास्कृतिक भूमिका | डी० लिट्० |
| १९४६ | ब्रजमोहन गुप्त | १३ हिन्दी काव्य मे रहस्यवादी प्रवृत्तिया (१९७५ ई० तक) | डी० फिल० |
| १९४७ | पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ | १४ हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य (जायसी का विशेष अध्ययन) | " |
| १९४८ | रघुवश सहाय वर्मा | १५ हिन्दी साहित्य के भक्ति और रीति कालो मे प्रकृति और काव्य | " |
| १९४८ | जयकान्त मिश्र | १६ मैथिली साहित्य का सक्षिप्त इतिहास—आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक और उस पर अगरेजी का प्रभाव (अगरेजी विभाग) | डी० फिल० |
| १९४८ | रामरतन भटनागर | १७ हिन्दी समाचारपत्रो का इतिहास | " |
| १९४८ | शीलवती मिश्र | १८ हिन्दी सन्तो (विशेषतया सूरदास, तुलसीदास और कबीरदास) पर वेदान्त-पद्धतियो का ऋण (दर्शन-विभाग) | " |
| १९४९ | कामिल बुल्के | १९ रामकथा—उत्पत्ति और विकास | " |
| १९४९ | शैलकुमारी माथुर | २० आधुनिक हिन्दी काव्य (१९००-१९४५ ई०) मे नारी-भावना | " |
| १९५० | शिवनाथ मिश्र | २१ अगरेजी का हिन्दी भाषा और साहित्य पर प्रभाव | " |

| सन् | अनुसधाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५१ | ओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ | ८ हिंदी साहित्य मे अलकार | पी-एच० डी० |
| १९५१ | गोविन्द त्रिगुणायत | ९ कबीर की विचारधारा | ,, |
| १९५१ | मुशीराम शर्मा | १० भारतीय साधना और सूर-साहित्य | , |
| १९५१ | उमेशचन्द्र त्रिपाठी | ११ हिंदी निवध के विकास का आलोचनात्मक अध्ययन | ,, |
| १९५१ | भगवतस्वरूप मिश्र | १२ हिंदी-साहित्य मे आलोचना का उद्भव और विकास | ,, |
| १९५२ | विश्वम्भरनाथ भट्ट | १३ रत्नाकर, उनकी प्रतिभा और कला | ,, |
| १९५२ | प्रतिपालसिंह | १४ बीसवी शती के महाकाव्य | ,, |
| १९५२ | राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी | १५. हिन्दी-कविता (१६००-१८५० ई०) मे शृगार रस का अध्ययन | ,, |
| १९५२ | प्रेमनारायण शुक्ल | १६ हिन्दी साहित्य मे विविध वाद | ,, |
| १९५२ | शकर नाथ शुक्ल | १७ उपन्यासकार प्रेमचन्द, उनकी कला, सामाजिक विचार और जीवन-दर्शन | ,, |
| १९५३ | हरवशलाल शर्मा | १८. श्रीमद्भागवत और सूरदास | ,, |
| १९५३ | रामदत्त भारद्वाज | १९. तुलसी-दर्शन (दर्शन-विभाग के अन्तर्गत) | ,, |
| १९५४ | गुणानन्द जुयाल | २० मध्य-पहाडी भाषा (गढवाली कुमाउनी) का अनुशीलन और उसका हिन्दी से सम्बन्ध | ,, |
| १९५४ | मनोहरलाल गौड | २१ घनानन्द और मध्यकाल की स्वस्छन्द काव्य-धारा | ,, |
| १९५४ | ब्रह्मदत्त शर्मा | २२ हिन्दी कहानियो का विवेचनात्मक अध्ययन | ,, |

| सन् | अनुसधाता | विषय | उपाधि |
| --- | --- | --- | --- |
| १९५४ | पद्मसिह् शर्मा 'कमलेश' | २४ हिन्दी गद्यकाव्य का आलोचनात्मक और रूपात्मक अध्ययन | पी-एच० डी० |
| १९५४ | श्याम सुन्दर लाल दीक्षित | २५ कृष्ण-काव्य मे भ्रमरगीत | " |
| १९५५ | बदरीनारायण श्रीवास्तव | २६. रामानद-सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव | " |
| १९५५ | भगवती प्रसाद सिह | २७ उन्नीसवीं शती का रामभक्ति-साहित्य—विशेषत. महात्मा वनादास का अध्ययन | " |
| १९५५ | कपिल देव सिह् | २८. गत सौ वर्षों मे कविता के माध्यम के लिए ब्रजभाषा-खडी-बोली सम्बन्धी विवाद की रूप रेखा | " |
| १९५५ | शम्भुनाथ पाडेय | २९ आधुनिक हिन्दी-काव्य मे निराशावाद | " |
| १९५५ | रामेश्वरलाल खडेलवाल | ३०. आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्रेम और सौन्दर्य | " |
| १९५५ | सीताराम कपूर | ३१ रामचरितमानस के साहित्यिक श्रोत | " |
| १९५६ | ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव | ३२ हिन्दी-काव्य मे करुण रस (१४००-१७०० ई०) | " |
| १९५६ | जयराम मिश्र | ३३ आदि गुरु ग्रन्थ साहब जी के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त | " |
| १९५६ | बरसानेलाल चतुर्वेदी | ३४ हिन्दी साहित्य मे हास्य रस | " |
| १९५६ | आनन्द प्रकाश दीक्षित | ३५ काव्य मे रस | " |
| १९५६ | रामचन्द्र मिश्र | ३६ हिन्दी के आरभिक स्वच्छन्दातावादी काव्य और विशेपतः प० श्रीधर पाठक की कृतियो का अनुशीलन | " |
| १९५६ | हरिहरनाथ टडन | ३७ वार्त्ता-साहित्य का जीवनीमूलक अध्ययन | " |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५६ | अम्बा प्रसाद सुमन | ३८. कृषक-जीवन-सम्बन्धी शब्दावली ( अलीगढ क्षेत्र की बोली के आधार पर ) | पी-एच० डी० |
| १९५६ | गणेशदत्त | ३९. मध्यकालील हिन्दी-साहित्य मे चित्रित समाज | " |
| १९५६ | महेश चन्द्र सिंघल | ४०. सन्त सुन्दरदास | " |
| १९५६ | मुशीराम शर्मा | ४१ वैदिक भक्ति और हिन्दी के मध्यकालीन काव्य मे उसकी अभिव्यक्ति | डी० लिट्० |
| १९५७ | गौरी शकर (सत्येन्द्र) | ४२ मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य के प्रेमगाथा-काव्य और भक्तिकाव्य में लोकवार्ता-तत्व | " |
| १९५७ | गोविन्द त्रिगुणायत | ४३ हिन्दी की निर्गुण-काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि | डी० लिट्० |
| १९५७ | नत्थनसिंह | ४४ वालमुकुन्द गुप्त—उनके जीवन और साहित्य का अध्ययन | पी-एच० डी० |
| १९५७ | राजेन्द्रप्रसाद शर्मा | ४५ प० वालकृष्ण भट्ट—उनका जीवन और साहित्य | " |
| १९५७ | गोपीनाथ तिवारी | ४६. भारतेन्दुकालीन नाटक-साहित्य | " |
| १९५७ | देवेन्द्रकुमार जैन | ४७ अपभ्रश-साहित्य | " |
| १९५७ | वद्रीप्रसाद परमार | ४८ मालव-लोक-साहित्य | " |
| १९५७ | राजकिशोर कक्कड | ४९ आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे आलोचना का विकास (१८६८-१९४३) | " |
| १९५७ | गोविन्दसिंह कन्दारी | ५० गढ़वाली वोली की रावल्टी उपवोली, उसके लोकगीत और [illegible] | " |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५७ | द्वारिकाप्रसाद सक्सेना | ५१ 'कामायनी' मे काव्य, संस्कृति और दर्शन | पी-एच० डी० |
| १९५७ | किशोरीलाल गुप्त | ५२. 'शिवसिंह सरोज' मे दिये कवियो-सम्बन्धी तथ्य एव तिथियो का आलोचनात्मक परीक्षण | " |
| १९५७ | रामनाथ त्रिपाठी | ५३ कृतिवासी बगला रामायण और 'रामचरितमानस' का तुलनात्मक अध्ययन | " |
| १९५८ | भगवतीप्रसाद सिंह | ५४ रामभक्ति मे रसिक-सम्प्रदाय | डी० लिट्० |
| १९५८ | जयचन्दराय | ५५ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—एक अध्ययन | पी-एच० डी० |
| १९५८ | प्रभाकर माचवे | ५६ हिन्दी और मराठी का निर्गुण-काव्य (११वी से १५वी शती)—तुलनात्मक अध्ययन | " |
| १९५८ | रामसागर त्रिपाठी | ५७. मुक्तक-काव्य-परम्परा के अन्तर्गत विहारी का विशेष अध्ययन | " |
| १९५८ | ज्ञानवती अग्रवाल | ५८. प्रसाद का काव्य और दर्शन | " |
| १९५८ | रामगोपाल चतुर्वेदी | ५९. हिंदी-पत्रकारिता का इतिहास | " |
| १९५८ | अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी | ६० द्विजदेव और उनका काव्य | " |
| १९५८ | श्रीपति शर्मा | ६१. हिन्दी-नाटको पर पाश्चात्य प्रभाव | " |
| १९५८ | रणवीरचन्द्र राणा | ६२ हिंदी-उपन्यासो में चरित्र-चित्रण का विकास | " |
| १९५८ | रमेशकुमार शर्मा | ६३ रीति-कविता का आधुनिक हिंदी कविता पर प्रभाव | " |
| १९५८ | कृष्णचन्द्र शर्मा | ६४ मेरठ जनपद के लोकगीतो का अध्ययन | " |
| १९५८ | गोपालदत्त शर्मा | ६५ स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी-साहित्य | " |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९५६ | अम्बा प्रसाद सुमन | ३८ कृषक-जीवन-सम्बन्धी शब्दावली ( अलीगढ क्षेत्र की बोली के आधार पर ) | पी-एच० डी० |
| १९५६ | गरोशदत्त | ३९ मध्यकालील हिन्दी-साहित्य मे चित्रित समाज | " |
| १९५६ | महेश चन्द्र सिंघल | ४० सन्त सुन्दरदास | " |
| १९५६ | मुशीराम शर्मा | ४१ वैदिक भक्ति और हिन्दी के मध्यकालीन काव्य मे उसकी अभिव्यक्ति | डी० लिट्० |
| १९५७ | गौरी शकर (सत्येन्द्र) | ४२ मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य के प्रेमगाथा-काव्य और भक्तिकाव्य में लोकवार्ता-तत्व | " |
| १९५७ | गोविन्द त्रिगुणायत | ४३ हिन्दी की निर्गुण-काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि | डी० लिट्० |
| १९५७ | नत्थनसिंह | ४४ वालमुकुन्द गुप्त—उनके जीवन और साहित्य का अध्ययन | पी-एच० डी० |
| १९५७ | राजेन्द्रप्रसाद शर्मा | ४५ प० वालकृष्ण भट्ट—उनका जीवन और साहित्य | " |
| १९५७ | गोपीनाथ तिवारी | ४६. भारतेन्दुकालीन नाटक-साहित्य | " |
| १९५७ | देवेन्द्रकुमार जैन | ४७. अपभ्रंश-साहित्य | " |
| १९५७ | वद्रीप्रसाद परमार | ४८ मालव-लोक-साहित्य | " |
| १९५७ | राजकिशोर कक्कड | ४९ आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे आलोचना का विकास (१८६८-१९४३) | " |
| १९५७ | गोविन्दसिंह कन्दारी | ५० गढवाली वोली की रावल्टी उपवोली, उसके लोकगीत और उसमे अभिव्यक्त लोकसस्कृति | |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५७ | द्वारिकाप्रसाद सक्सेना | ५१ 'कामायनी' मे काव्य, सस्कृति और दर्शन | पी-एच० डी० |
| १९५७ | किशोरीलाल गुप्त | ५२ 'शिवसिंह सरोज' मे दिये कवियो-सम्बन्धी तथ्य एव तिथियो का आलोचनात्मक परीक्षण | " |
| १९५७ | रामनाथ त्रिपाठी | ५३ कृतिवासी बगला रामायण और 'रामचरितमानस' का तुलनात्मक अध्ययन | " |
| १९५८ | भगवतीप्रसाद सिंह | ५४ रामभक्ति मे रसिक-सम्प्रदाय | डी० लिट्० |
| १९५८ | जयचन्दराय | ५५ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—एक अध्ययन | पी-एच० डी० |
| १९५८ | प्रभाकर माचवे | ५६ हिन्दी और मराठी का निर्गुण-काव्य (११वी से १५वी शती)—तुलनात्मक अध्ययन | " |
| १९५८ | रामसागर त्रिपाठी | ५७ मुक्तक-काव्य-परम्परा के अन्तर्गत विहारी का विशेष अध्ययन | " |
| १९५८ | ज्ञानवती अग्रवाल | ५८ प्रसाद का काव्य और दर्शन | " |
| १९५८ | रामगोपाल चतुर्वेदी | ५९. हिंदी-पत्रकारिता का इतिहास | " |
| १९५८ | अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी | ६०. द्विजदेव और उनका काव्य | " |
| १९५८ | श्रीपति शर्मा | ६१ हिन्दी-नाटको पर पाश्चात्य प्रभाव | " |
| १९५८ | रणवीरचन्द्र राणा | ६२ हिंदी-उपन्यासो में चरित्र-चित्रण का विकास | " |
| १९५८ | रमेशकुमार शर्मा | ६३ रीति-कविता का आधुनिक हिंदी कविता पर प्रभाव | " |
| १९५८ | कृष्णचन्द्र शर्मा | ६४ मेरठ जनपद के लोकगीतो का अध्ययन | " |
| १९५८ | गोपालदत्त शर्मा | ६५ स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी-साहित्य | " |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५८ | वालमुकुन्द गुप्त | ६६ हिंदी मे कृष्ण-काव्य का विकास | पी-एच० डी० |
| १९५८ | इन्द्रावती ग्रोवर | ६७ हिंदी उपन्यास मे नारी-चित्रण | " |
| १९५८ | जगदीशनारायण त्रिपाठी | ६८ आधुनिक हिंदी-काव्य मे अलकार-विधान | " |
| १९५८ | अम्वादत्त पन्त | ६९ अपभ्रंश-काव्य-परम्परा और विद्यापति | " |
| १९५८ | सोमनाथ शुक्ल | ७० हिंदी-साहित्य के आधार पर भारतीय सस्कृति | " |
| १९५८ | इन्द्रावती सिन्हा | ७१. हिंदी साहित्य पर पौराणिकता का प्रभाव | " |
| १९५८ | सरलादेवी | ७२ हिंदी के मध्ययुगीन साहित्य पर वौद्ध धर्म का प्रभाव | " |
| १९५८ | छोटेलाल | ७३. मीरावाई | " |
| १९५८ | कैलाशचन्द्र भाटिया | ७४. हिंदी मे अंग्रेजी के आगत शब्दो का भाषातात्विक अध्ययन | " |
| १९५९ | गोपालदत्त सारस्वत | ७५. आधुनिक हिंदी-काव्य मे परम्परा तथा प्रयोग | " |
| १९५९ | रेवतीसिंह | ७६ पद्माकर तथा उनके रचित ग्रंथो का आलोचनात्मक अध्ययन | " |
| १९५९ | श्यामसुन्दर यादोराम व्यास | ७७. हिंदी-महाकाव्यो मे नारी-चित्रण | " |

## नागपुर विश्वविद्यालय

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९३८ | वलदेव प्रसाद मिश्र | १. तुलसी दर्शन | डी० लिट्० |
| १९४० | रामकुमार वर्मा | २ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास | पी-एच० डी० |
| १९५५ | हरवश लाल शर्मा | ३ सूरदास और उनका साहित्य | डी० लिट्० |
| १९५६ | चिन्तामणि उपाध्याय | ४. मालवी लोकगीत | पी-एच० डी० |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५६ | विनय मोहन शर्मा | ५. हिन्दी को मराठी सन्तो की देन | पी-एच० डी० |
| १९५६ | रामनिरजन पाडेय | ६. भक्तिकालीन हिन्दी-कविता मे दार्शनिक प्रवृत्तिया—रामभक्ति शाखा | " |
| १९५७ | पाडुरग राव 'मुरली' | ७. आन्ध्र-हिन्दी-रूपक ( हिन्दी और तेलगू का नाटक-साहित्य—एक अध्ययन) | " |
| १९५७ | भालचन्द्रराव तेलग | ८. भारतीय आर्यभाषा-परिवार की मध्यवर्तिनी बोलिया—छत्तीसगढी, हलबी, भतरी | " |
| १९५७ | राजेश्वर गुरु | ९. प्रेमचन्द | " |
| १९५७ | महेन्द्र भटनागर | १०. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द | " |
| १९५७ | रामयतन सिह | ११. हिन्दी काव्य मे कल्पना-विधान | " |
| १९५७ | कृष्ण लाल हस | १२. निमाडी और उसका लोक-साहित्य | " |
| १९५८ | गोविन्द प्रसाद शर्मा | १३ हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो का आलोचनात्मक अध्ययन | " |
| १९५९ | तेजनारायण लाल | १४ मैथिली लोकगीतो का अध्ययन | " |
| | | पजाब विश्वविद्यालय | |
| १९३८ | इन्द्रनाथ मदान | १ सामाजिक वातावरण के विशिष्ट सन्दर्भ मे आधुनिक हिन्दी-साहित्य की समालोचना | " |
| १९४५ | लक्ष्मीधर शास्त्री | २ ऋषि वरकत उल्लाह 'पेमी' कृत 'पेम प्रकाश' का अनुसन्धान, सम्पादन और अध्ययन | " |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९४६ | शिवनारायण बोहरा | ३. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र | पी-एच० डी० |
| १९५१ | सरनदास भगोत | ४. आलम का 'स्यामसनेही' | " |
| १९५२ | वेदपाल खन्ना | ५. हिन्दी-नाटक का उद्भव और विकास | " |
| १९५४ | रामधन शर्मा | ६ सूरदास के (कूट पदो के विशिष्ट सन्दर्भ मे) कूट-काव्य का अध्ययन | " |
| १९५७ | किरण चन्द्र शर्मा | ७. केशवदास—उनके रीतिकाव्य का विशेष अध्ययन | " |
| १९५८ | गोविन्द राम शर्मा | ८. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य | " |
| १९५८ | धर्मपाल अष्टा | ९. दशमग्रथ का कवित्व | " |
| १९५८ | ससारचन्द्र महोत्रा | १०. हिन्दी-काव्य मे अन्योक्ति | " |
| १९५८ | वेणी प्रसाद शर्मा | ११. पृथ्वीराजरासो के लघुतम सस्करण का अध्ययन और उसके पाठ का आलोचनात्मक सम्पादन | " |
| १९५८ | भीष्म साहनी | १२. हिन्दी-उपन्यास मे नायक की परिकल्पना | " |
| १९५८ | गणपति गुप्त | १३. हिन्दी-काव्य मे शृगार-परम्परा और महाकवि बिहारी | " |

## कलकत्ता विश्वविद्यालय

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९४३ | नलिनी मोहन सान्याल | १ बिहारी भाषाओ की उत्पत्ति और विकास | डी० फिल० |
| १९४८ | विपिन बिहारी त्रिवेदी | २ चन्दवरदायी और उनका काव्य | . |
| १९५१ | शिवनन्दन पाडेय | ३. भारतीय नाटक का उद्भव और विकास | |
| १९५८ | तारकनाथ अग्रवाल | ४ बीसलदेवरास का सम्पादन | |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५८ | सावित्री सरीन | ५ पजाबी और हिन्दी के वार्ता-साहित्य मे अभिप्राय | डी० फिल० |
| | | **पटना विश्वविद्यालय** | |
| १९४४ | सुभद्र झा | १. मैथिली भाषा का विकास | डी० लिट्० |
| १९४४ | धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी | २ बिहार के सन्तकवि दरिया साहब | पी-एच० डी० |
| १९५३ | रामखेलावनपाडेय | ३ मध्यकालीन सन्त साहित्य | डी० लिट्० |
| १९५७ | राजाराम रस्तोगी | ४. तुलसीदास · जीवनी और विचारधारा | पी-एच०डी० |
| | | **लखनऊ विश्वविद्यालय** | |
| १९४६ | उदयभानु सिंह | १. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग | पी-एच० डी० |
| १९४७ | भगीरथ मिश्र | २ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास | " |
| १९४८ | त्रिलोकी नारायण दीक्षित | ३. सन्तकवि मलूकदास | " |
| १९४९ | सरयू प्रसाद अग्रवाल | ३ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि | " |
| १९५० | हीरालाल दीक्षित | ५. आचार्यकेशवदास—एक अध्ययन | " |
| १९५१ | हरिकान्त श्रीवास्तव | ६. हिन्दू कवियो के प्रेमाख्यान | " |
| १९५१ | कृष्णदेव उपाध्याय | ७. भोजपुरी लोक-साहित्य | " |
| १९५२ | समर बहादुर सिंह | ८ अबदुर्रहीम खानखाना—भारतीय इतिहास के स्रोत-रूप मे (इतिहास-विभाग) | " |
| १९५३ | नारायण दास खन्ना | ९. आचार्य भिखारीदास | " |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५३ | पुत्तूलाल शुक्ल | १० आधुनिक हिन्दी कविता मे छन्द | पी-एच० डी० |
| १९५३ | देवकी नन्दन श्रीवास्तव | ११ तुलसीदास की भाषा | " |
| १९५३ | चन्द्रावती सिंह | १२ हिन्दी-साहित्य मे जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन | " |
| १९५४ | सरला शुक्ल | १३ जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि | " |
| १९५४ | भगवद् व्रत मिश्र | १४ सन्तकवि रविदास और उनका पथ | " |
| १९५५ | इन्द्रपाल सिंह | १५ आदिकालीन हिन्दी-साहित्य की प्रवृत्तिया | " |
| १९५५ | उषा गुप्त | १६ हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण-काव्य मे सगीत | " |
| १९५५ | के० भास्करन नय्यर | १७. हिन्दी और मलयालम के भक्तकवियो का तुलनात्मक अध्ययन | " |
| १९५६ | त्रिलोकी नारायण दीक्षित | १८. चरनदास, सुन्दरदास और मलूकदास के दार्शनिक विचार | डी० लिट्० |
| १९५६ | शकुन्तला वर्मा | १९ आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे गाधीवाद | पी-एच० डी० |
| १९५६ | शान्तिप्रसाद चन्दोला | २०. नाथ-सम्प्रदाय के हिन्दी कवि | " |
| १९५६ | रामचन्द्र तिवारी | २१. शिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका हिन्दी-काव्य | " |
| १९५७ | अविनाशचन्द्र अग्रवाल | २२ भारतेन्दुयुगीन हिन्दी कवि | " |
| १९५७ | पुष्पलता निगम | २३ हिन्दी महाकाव्यो मे नायक | " |
| १९५७ | व्रजकिशोर मिश्र | २४ अवध के प्रमुख हिन्दी-कवियो का अध्ययन (स० १७०० से १९००) | " |
| १९५७ | प्रेमनारायण टडन | २५ सूरदास की भाषा | " |
| १९५७ | ललितेश्वर झा | २६ मैथिली के कृष्णभक्त कवियो का अध्ययन | " |
| १९५७ | लक्ष्मीनारायण गुप्त | २७ हिन्दी-साहित्य को आर्यसमाज की देन | " |

| Year | Researcher | Thesis | Degree |
|---|---|---|---|
| १९५८ | कृष्ण विहारी मिश्र | २८ आधुनिक सामाजिक आन्दोलन एव आधुनिक साहित्य (१९००-१९५० ई०) | पी-एच० डी० |
| १९५८ | शंकरलाल यादव | २९ हरियाना प्रदेश का लोक-साहित्य | " |
| १९५८ | शशिभूषण सिंहल | ३० वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो का आलोचनात्मक अध्ययन | " |
| १९५८ | प्रतापनारायण टंडन | ३१ हिन्दी-उपन्यास मे कथा-शिल्प का विकास | " |
| १९५८ | तारा कपूर | ३२ हिन्दी-काव्य मे करुण रस | " |
| १९५८ | विद्या मिश्र | ३३ वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस का तुलानात्मक अध्ययन | " |
| १९५८ | जनार्दन प्रसाद काला | ३४ गढवाली भाषा और लोक-साहित्य | " |
| १९५८ | सावित्री शुक्ल | ३५ हिन्दी-सन्त-काव्य की सास्कृतिक एव सामाजिक पुष्ठभूमि | " |
| १९५९ | व्रजनारायण सिंह | ३६ पद्माकर और उनके समसामयिक | " |
| | | **राजस्थान विश्वविद्यालय** | |
| १९४९ | सरनामसिंह शर्मा | १. हिन्दी-साहित्य पर सस्कृत का प्रभाव | पी-एच० डी० |
| १९५० | ब्रह्मदत्त मिश्र 'सुधीन्द्र' | २ द्विवेदी-युग मे हिन्दी कविता का पुनरुत्थान (१९०१-२० ई०) | " |
| १९५२ | फैयाज अली खा | ३ नागरी दास की कविता के विकास से सम्वन्धित प्रभावो एव प्रतिक्रियाओ का अध्ययन | |
| १९५२ | भोलाशंकर व्यास | ४ ध्वनि-सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त | " |
| १९५२ | मोतीलाल मेनारिया | ५ व्रजभाषा-साहित्य की राजस्थान की देन (राजस्थान का पिंगल-साहित्य) | " |
| १९५५ | | | " |
| १९५७ | मानुदेव ... | | |
| [illegible] | कमलाकांत पाठक | | |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५४ | चन्द्रकला | ६ आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्रतीकवाद के प्रकार | पी-एच० डी० |
| १९५५ | कन्हैयालाल सहल | ७ राजस्थानी कहावतों की गवेषणा और वैज्ञानिक अध्ययन | " |
| १९५५ | शिवस्वरूप शर्मा | ८ राजस्थानी के गद्य-साहित्य का इतिहास और विकास | " |
| १९५५ | राजकुमारी शिवपुरी | ९ राजस्थान के राजघरानों द्वारा हिन्दी-साहित्य की सेवाए तथा उनका साहित्यिक मूल्याकन | " |
| १९५५ | गायत्री देवी वैश्य | १० आधुनिक हिन्दी-काव्य में समाज (१८५०-१९५० ई०) | " |
| १९५५ | मोतीलाल गुप्त | ११. हिन्दी-साहित्य को मत्स्यप्रदेश की देन | " |
| १९५५ | देवराज उपाध्याय | १२ आधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य और मनोविज्ञान | " |
| १९५७ | जगदीशचन्द्र जोशी | १३ जयशकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक | " |
| १९५७ | रामचरण महेन्द्र | १४ हिन्दी मे एकाकी नाटक | " |
| १९५८ | श्याम शकर दीक्षित | १५ परमानन्द दास  जीवनी और कृतिया | " |
| १९५८ | रामानन्द तिवारी | १६ सत्य शिव सुन्दरम् | " |
| | | दिल्ली विश्वविद्यालय | |
| १९५१ | विमलकुमार जैन | १ सूफी मत और हिंदी साहित्य | पी-एच०डी० |
| १९५१ | सावित्री सिन्हा | २. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रिया | " |
| १९५२ | दशरथ ओझा | ३ हिंदी नाटक का उद्भव और विकास | " |
| १९५२ | हरिवश कोछड | ४ अपभ्रंश-साहित्य | " |

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५६ | मनमोहन गौतम | ६ सूर की काव्य-कला | पी-एच० डी० |
| १९५६ | सत्यदेव चौधरी | ७ रीतिकाल के प्रमुख आचार्य | " |
| १९५६ | विजयेन्द्र स्नातक | ८ राधावल्लभ-सम्प्रदाय के सदर्भ मे हितहरिवश का विशेष अध्ययन | " |
| १९५७ | उमाकात गोयल | ९ मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता | " |
| १९५८ | उमा मिश्र | १०. रीतिकालीन काव्य और सगीत का पारस्परिक सम्बन्ध | " |
| १९५८ | सदानद मवान | ११ भक्तिकालीन कृष्णभक्तिकाव्य पर पौराणिक प्रभाव (सस्कृत-विभाग) | " |
| १९५८ | महेन्द्र कुमार | १२. मतिराम—कवि और आचार्य | " |
| १९५९ | गार्गी गुप्त | १३ रामकाव्य की परम्परा मे रामचन्द्रिका का अध्ययन | " |
| १९५९ | रामस्वरूप | १४. हिंदी मे नीतिकाव्य का विकास (स० १९०० वि० तक) | " |
| १९५९ | कैलाश कुलश्रेष्ठ | १५ प्रेमचन्द-पूर्व हिंदी-उपन्यास | " |
| १९५९ | सुरेशचन्द्र गुप्त | १६. आधुनिक हिन्दी कवियो के काव्यसिद्धांत | " |

## सागर विश्वविद्यालय

| सन् | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५२ | वीरेन्द्रकुमार शुक्ल | १ भारतेन्दु का नाट्य-साहित्य | पी-एच० डी० |
| १९५३ | प्रेमशकर | २ जयशकरप्रसाद के काव्य का विकास | " |
| १९५७ | भानुदेव शुक्ल | ३ भारतेन्दु-युग के नाटककार | " |
| १९५७ | कमलाकात पाठक | ४ गुप्त जी का काव्य-विकास | " |

| सउ | अनुसन्धाता | विषय | उपाधि |
|---|---|---|---|
| १९५७ | रामलालसिंह | ५ आचार्य शुक्ल के समीक्षा-सिद्धात | पी-एच० डी० |
| १९५८ | शकरदयाल चौऋषि | ६ द्विवेदीयुगीन हिंदी-गद्य-शैलिया | " |
| | | अलीगढ विश्वविद्यालय | |
| १९५६ | गोवर्धनलाल शुक्ल | १ कविवर परमानन्द और उनका साहित्य | पी-एच० डी० |
| १९५६ | देवर्षि सनाढ्य | २. हिंदी के पौराणिक नाटको का आलोचनात्मक अध्ययन | " |
| १९५८ | विजयपालसिंह | ३ केशव और उनका साहित्य | " |
| १९५९ | शिवशकर शर्मा | ४ भक्तिकालीन हिंदी-साहित्य मे योग-भावना | " |
| १९५९ | श्यामेन्द्रप्रकाश शर्मा | ५ अष्टछाप-कवियो के काव्य (विशेषकर सूर-साहित्य) मे वर्णित व्रज-सस्कृति | " |
| १९५९ | द्वारकाप्रसाद मीतल | ६ भक्तिकालीन कृष्णकाव्य मे राधा का स्वरूप | " |
| १९५९ | गिरिधारीलाल शास्त्री | ७ हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि | " |